गुरु प्रसाद

श्री साई आध्यात्मिक समिति, पुणे

गुरू प्रसाद

श्री साई आध्यात्मिक समिति, पुणे

(केवल गुरू भक्तों के लिए)

॥ॐ॥

सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते ॥

卐

॥शुभं भवतु॥

Oh goddess Narayani, You are the one who dwells in all beings. You are auspiciousness itself. You most graciously grant security from all tears to those who have surrendered themselves at your feet and who religioulsy Carry out their bounden duties in life.

मुद्रकः
भगवती प्रिन्टर्स प्रा० लि०
बी.233ए नरायणा, फेज़ - I,
नई दिल्ली - 110 028.

कम्पोज़िंग :
कोर्डिनेशन
नई दिल्ली - 110 060.

प्रकाशक :
श्री साई आध्यात्मिक
समिति, पुणे, नई दिल्ली.

प0 पू0 दादा महाराज के हाथों द्वारा लिखा पत्र जो कि पुना प्रकाशित

॥ श्री साईनाथ ॥

श्री सद्गुरु श्री साईनाथ महाराज
श्री जगन्नाथादि विभूती यांच्या
कृपा आशीर्वादाने हे आनंदी नवरात्राचे
कार्य करण्याचे भाग्य लाभले त्या
प.पू. विभूतींचा मी जन्मोजन्मी
ऋणी आहे.

- अशीच सेवा जन्मोजन्मी घडावी
म्हणून त्यांच्या प्रेरणेने लिहिलेला
"गुरुप्रसाद" त्यांच्या चरणी विनम्र
भक्तिभावनेने अर्पण करतो

जन्मोजन्मीचा सेवक
दादा भागवत

गुरूप्रसाद

।। श्री साईनाथ ।।

श्री सद्गुरू साईनाथ महाराज श्री नवनाथादि विभूतियों के कृपाशीर्वाद से मानव कल्याण का कार्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ मैं उन परमपूजनीय विभूतियों का जन्मजन्मान्तर तक ऋणी रहूँगा।

जनमजनम तक इसी तरह की सेवा करने की प्रेरणा से लिखा ''गुरूप्रसाद'' उन्हीं के चरणों में भक्तिभाव से अर्पित करता हूँ।

जनमजनम सेवक

दादा भागवत

--0--

卐

।। पुण्याहवाचन ।।

आजकल संसार में हर मानव में सुख, शांति और समाधान का अभाव दिखाई देता है। भौतिक शोध के कारण हुई प्रगति प्रायः शस्त्रों की है। परन्तु इससे मानव जीवन की प्रगति होने की अपेक्षा वह गतिमान होकर जीवन सुख के अभाव में दुःखमय हुआ है। इसी कारणवश प्रत्येक व्यक्ति सुख और शांति प्राप्त करने के प्रयास में लगा हुआ है। किन्तु केवल इस प्रकार विचार करने से काम नहीं चलेगा। क्योंकि हम मानवों का गणित जन्म से ही गलत बना है। विगत सौ वर्षो से हमारी निष्क्रान्ति चल रही है और हम मानवों का आगे क्या होगा यह जटिल प्रश्न हमारे सामने आज है। वैज्ञानिक चांद पर तो पहुँच गये लेकिन वे स्वयं अपने आप को खोज नहीं पाये हैं। जब हम स्वयं अपने आप को खोज लेंगे तभी जीवन में सुख है या नहीं, यह समझ पायेंगे। क्योंकि सुख के पीछे कौन है? हमारे संस्कार! लेकिन आजकल संसार में संस्कार विधिनुसार नहीं किये जाते। वे एक फैशन-विधि से बन गये हैं। इसलिये हम मानवों का जन्म, बारहवें दिन से, अर्थात नामकरण दिन से उदित न होकर, उसका बारहवां-दिन (मृत्यु के बाद का बारहवां दिन) करने की नौबत आयी है। इस कारण जब सुख की अपेक्षा करने पर भी सुख प्राप्त नहीं होता तब हमारी बुद्धि जागृत होती है और हम अपने आप से कहने लगते हैं ''सबको सुख प्राप्त हुआ लेकिन मुझे नहीं''। तब हम उसकी खोजबीन शुरू कर देते हैं।

अनादिकाल से हमारे पूर्वज भगवान को मानते आये हैं और पूजा-अर्चना में उनकी मूर्तियां और प्रतिमायें भी स्थापित की है। यद्यपि हम इनको भगवान मानते हैं किंतु इन प्रतिमाओं का ''ईश्वरत्व'' नष्ट हुआ है। क्योंकि हमसे मंत्र, तंत्र, और यंत्र का शास्त्रशुद्ध उच्चारण तक नहीं करते बनता है। इसलिये ईश्वर के ''ईश्वरत्व'' की अनुभूति होने में दीर्घ अवधि लगती है। अगर यह त्रिपुटी हमें अवगत हुई तो ही भगवान का ''प्रसाद'' मिलता है। जब हम ईश्वर का नाम-

स्मरण करते हैं तब हमारे मन में उसके प्रति भाव जागने चाहिये। केवल पूजापाठ आदि जो हम लोग करते हैं वह कर्म एक ''उपचार'' के रूप में होता है। उस कर्म से किसी भी इष्ट फल की प्राप्ति होगी ही यह आवश्यक नहीं है। ईश्वर की प्रतिमा और उसकी स्थापना आपके जीवन का क्रम बनाने की आपकी इच्छा हो, तो उसके लिये तपश्चर्या करनी होगी। केवल पैसे देकर दुकान से भगवान की मूर्ति खरीद कर लाने से वह भगवान नहीं बन जाती। वह केवल एक धातु ही कहलायेगी। इसके अलावा उसे अन्य कोई संज्ञा नहीं है, ऐसा मेरा अनुभव है। इसलिये परमपूज्य बाबा से मेंने कार्य के प्रारंभ में ही प्रार्थना की थी कि आने वाले भक्तों के यहां कम से कम एक प्रतिमा का होना आवश्यक है, जिससे उनका जीवन सुखमय हो। लेकिन कार्य के प्रारंभ में स्वयं ''प्रतिमा'' यह शब्द के अर्थ का आकरण पूरी तरह से नहीं हुआ। आज कार्य करते-करते छत्तीस वर्ष बीत चुके। इस बीच जो भी गुरू आज्ञा का पालन किया, उससे आपको तीन प्रतिमायें अर्थात् श्री साईशक प्रतिमा, कारण प्रतिमा और महाकारण दे सका। हर वर्ष चैत मास से फागुन मास तक कौन से कुलधर्म करने चाहिये और कौन से कुलाचार करने चाहिये यह सवाल आज हम सब के सामने है। इन विधियों के लिये हमारे पास पैसा नहीं है, यह बहाना हम सब लोग बनाते हैं, लेकिन मौजमस्ती के लिये हमारे पास पैसा होता है, जिसे हम स्वयं देखते हैं। ब्राह्मण-सुहासिनियों को भोजन कराने की अपेक्षा हमने मित्रों-दोस्तों के साथ अपना आहार-विहार बिगाड़ लिया है, जिसका ध्यान हम नहीं रखते। वैसे ही जिन माता-पिता ने जिस घराने में हमें जन्म दिया है उनका ऋण चुकता करने के लिये तीर्थक्षेत्र जाकर दानधर्म करने के लिये पैसा नहीं है, यह बहाना हम बनाते है। लेकिन हर माह नाटक-सिनेमा आदि पर हम कितना खर्च करते हैं, इसका हम सूझबूझ से विचार नहीं करते।

जन्म लेते समय हमारे जो संस्कार हैं, उनका समाज में पालन करना हम गौण मानते हैं इसलिये उन पर अमल करने में आना-कानी करते हैं और अन्त में उसका फल भोगते हैं। आजकल हमें ईश्वर

नहीं चाहिये। जब विपदा आ पड़ती है, तब हम भगवान को पुकारते हैं। किन्तु जवाब नहीं मिलता। क्योंकि भगवान के अस्तित्व को ही हमने नकारा है। इसीलिये संसार में आज अशान्ति है। यह सब सोच विचार कर, भावी पीढ़ियों का भविष्य परमपूज्य साईनाथ महाराज ने जाना और मुझे आज्ञा देकर मैं जो "काम-काज" करता था वह बंद करवाया और कहा कि ''संसार को व्यावहारिक सुख की अपेक्षा सुख का मार्ग दिखवाओ''। इसलिये उन्हीं की आज्ञा से यह अमूल्य ''गुरूप्रसाद'' लिखा। क्योंकि संसार को आज इसकी असली जरूरत है, इतना ही नहीं बल्कि भावी पीढ़ियों को निश्चित मार्ग समझाना है। इस ग्रंथ के पूवार्ध में बीते काल में हमारे पूर्वज क्या करते थे इसका विवेचन है, उत्तरार्ध में हमें भविष्य में क्या करना इष्ट है, जिस कारण अपने वंश का उद्धार होगा इसका मार्गदर्शन है।

वास्तव में गुरूमार्ग अपनाने के बाद जो मार्गदर्शन गुरू करते हैं, उसके आगे नतमस्तक होकर आचरण करना ही कुलधर्म और कुलाचार है। भक्तों का कल्याण हो यही इच्छा श्रीगुरू की होती है। इसीलिये आसान से आसान सेवा करने के लिये आपसे कहते हैं। लेकिन नीव से हटकर व्यवहार करना ही गुरूमार्ग है ऐसा गुरूमार्ग का अर्थ हम करते हैं और वैसा अन्यों को जताने की कोशिश करते हैं। लेकिन हमारा किया हुआ यह अर्थ भविष्य के अनर्थ की नींव है यह भूलना नहीं चाहिये।

''गुरूप्रसाद'' श्रीगुरू की भेंट है। हर परिवार को श्रीगुरू की इस भेंट को आधुनिक ''गीता'' मानकर स्वीकार करना चाहिये। आने वाले काल में उसे जतन कर, भावी पीढ़ियों को सज्ञान करना, इससे अधिक पुण्य का कौन सा कार्य हो सकता है?

आपका सेवक

दादा भागवत

卐 श्री मंगलाचरण 卐

स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपंकजस्मरणम्।।
वासरमणिरिव तमसां राशिनाशयति विघ्नानाम् ।१।

या, कुन्देदुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रवृता
या वीणावरदण्डमंण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा।२।

मूकं करोति वाचालं पंगु लंघयते गिरिम्।।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्।।३।।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदिरयेत्।४।

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणुरमर्दनम्।।
देवकीपरमानंद कृष्णं वन्दे जगद्गुरूम्।५।

गुरूब्रह्मा गुरूर्विष्णुगुरूर्देवो महेश्वरः।।
गुरूरेव परब्रम्ह तस्मै श्री गुरूवे नमः।६।

श्रोता वक्ता श्रीपांडूरंगः समर्थः।।
पुंडलीकवरदा हरि विठ्ठल ।।
पार्वतीपते हर हर महादेव।।
सीताकांतस्मरण जय जय राम।।
।। सच्चिदानंद सद्गुरू साईनाथ महाराज की जय
श्री गुरूदेव दत्त-सदानंदाचा येळकोट
सच्चिदानंद सद्गुरू श्री पंतमहाराज की जय।।
।।श्री गुरूदेव दत्त।।

।। ॐ श्री साईनाथय नमः ।।

श्री साई आध्यात्मिक समिति,पुणे

आम्ही गुरू-भक्त श्री जगद्‌गुरू साईनाथ महाराज आणी श्रीसद्‌गुरूनाथ दादा यांचे चरणी भक्तिभावनने आज अशी प्रार्थना करीत आहोत की आपण कृपावंत होऊन जगतकल्याणा साठी "गुरू शक्ति पीठाची स्थापना" करून दिली आहे. त्या शक्तिपीठाची सेवा विनम्रभावनने, श्रद्धा, भक्ति,निरपेक्ष, निस्वार्थ बुद्धीनेकरून जे कोणी हया जगतात दुःखी कष्टी आहेत त्यांची सेवा काया वाचा मनाने करू. जगतात आम्हां मानवांना प्राप्त झालेल्या जन्मातील कर्तव्याची जाणीव व्हावी व जगतात सर्व मानवाला सुख, शांति, समाधानाचा लाभ, होऊन जगतात मानवी धर्माचा उदय होऊन मानवी जीवन ईश्वरमय व्हावे अशी आपल्या चरणी प्रार्थना.

।।शुभं भवत्।।

।। ॐ श्री साईनाथाय नमः।।

श्री साई आध्यात्मिक समिति, पूणे

प्रतिदिन उपासना के समय कहने की प्रार्थना

हे भगवान! हमारे परिवार के उद्धार के लिए जो महान विभूतियाँ स्वयं कष्ट सहकर भी हर पल जूझ रही हैं, उनके उपदेशो तथा आदेशानुसार हमारा आचरण पवित्र हो, ऐसी कृपा कीजिए।

अब तक हमारे द्वारा किये गये पापों तथा प्रमादों की पुनरावृती न हो। विकट, आर्थिक तथा अन्य प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण परेशान होकर तथा क्षुद्र मनोविकारों के आधीन होकर, अथवा संकुचित विचारों से वशीभूत होकर हमारे मन में आलस्य अथवा अज्ञानवश उनके प्रति आयोग्य विचार आये हों, अथवा आयोग्य विचार हमारे मुंह से निकले हों, अथवा उनके आदेशों के विपरीत कोई भी कार्य हुआ हो तो उसके लिए,उन सबके प्रति मैं आपका/आपकी तथा उन सब का निस्पृह भाव से क्षमा चाहता/चाहती हूँ।

हमारे परिवार में सदा सुख, शान्ति, सन्तोष तथा एक दूसरे के प्रति ममता और आनन्द हमेशा बना रहें।

उसी प्रकार आपके प्रति अटूट श्रद्धा हम सबके हृदय में सदा जागृत रहे।

उन्होने सोचा हुआ महान कार्य, हम अपने शेष जीवन में पूरा करने में यशस्वी हो सकें, तथा अन्य भी अनेक सत्कृत्य करते रहें। इस प्रकार वह महान, दिव्य आलौकिक विभूतियाँ हम पर सदा खुश रहें तथा हमारे परिवार पर आपकी भी कृपादृष्टि इसी तरह बनी रहें

हे प्रभु !हमारे परिवार के सभी सदस्यों को अपना अपना कर्त्तव्य -कर्म निभाने की बुद्धी दीजिये।

पूर्व जन्मों के सत्कर्मों के अनुसार यद्यपि हममें से कुछ व्यक्ति आज सुखमय जीवन व्यतीत कर रहें है, फिर भी "अगले जन्मों की चिन्ता मनुष्य को इसी जन्म में करनी चाहिए" अपने इस पवित्र वचन से आपने संसार को जो पाठ पढ़ाया है, उसके अनुसार व उपकारों का बदला अपकारों से न हो ऐसी बुद्धी,हे दया-निधान, परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को आप दीजिए, केवल इतनी ही दुआ, आपके चरणों में अत्यन्त दीन भाव से मांग रहा/रही हूँ।

।। शुभं भवतु ।।

निवेदन

'गुरूप्रसाद' का हिन्दी में अनुवाद करने का अवसर मुझे मिला यह मेरा परम सौभाग्य है। मेरे आदरणीय गुरू सर्वश्रेष्ठ वंदनीय श्री दादा साहब भागवत के कृपाशीर्वाद तथा परमपूज्य श्री साईनाथ महाराज की असीम कृपा के बिना यह काम कदापि संभव नहीं था। उनकी इस कृपादृष्टि का कृतज्ञतापूर्वक निर्देश मानना मेरा कर्त्तव्य है।

'गुरूप्रसाद' एक दैवी उपहार है। उसे गुरूवर दादाजी ने परमपूज्य श्री साईनाथ महाराज के आज्ञानुसार मानव कल्याण के लिये शब्दों में ग्रंथित किया।

दैवी कार्यप्रणाली अगाध और अगम्य होती है। अन्यथा गुरूवर दादाजी तथा परमपूज्य श्री साईनाथ समकालीन न होते हुये भी उनका गुरू शिष्य का रिश्ता प्रस्थापित होना कैसे संभव था?

परमपूज्य श्री साईनाथ महाराज ने अपने जीवनकाल में उनके विभूति से जिसे वे "उदी" कहा करते थे, भरा हुआ पात्र उनके प्रिय भक्त अबदुल्ला बाबा को दिया और कहा कि, "भविष्य में मै एक प्रिय पुत्र तुम्हारे पास भेजूँगा उस वक्त यह पात्र उसे देना। तब तक तुम इसे जतन कर रखना"। यह घटना प. पू. श्री साईबाबा समाधिस्थ होने के करीब दो साल पहले तथा गुरूवर्य दादाजी के जन्म करीब पाँच साल पहले हुई। श्री साईनाथ महाराज 1918 में समाधिस्थ हुये तथा गुरूवर्य दादाजी का जन्म 1921 में हुआ। गुरूवर्य दादाजी 1952 में शिरडी गये। वहाँ जब अबदुल्ला बाबा से मिलने और आशीर्वाद पाने के लिये वे गये तो कुटीया का दरवाजा बंद था और बाहर बैठे सेवक ने बतलाया कि इस वक्त अबदुल्ला बाबा का विश्राम का समय होने के कारण आप उन्हें नहीं मिल सकेगें। ऐसा वह सेवक कह ही रहा था कि कुटीया का दरवाजा अचानक खुला और स्वयं अबदुल्ला बाबा ही गुरूवर्य दादाजी का स्वागत करने बाहर आये। उन्होने तुरंत ही पहचान लिया कि यही वह श्री साईनाथ महाराज का सुपुत्र हैं जिस

का निर्देश श्री साईनाथ महाराज ने पूर्व में किया था। अबदुल्ला बाबा ने विभूति से भरा पात्र गुरूवर्य दादाजी को देकर कहा कि "तुम्हारे यहाँ आने की राह में मैने इसे गत पैंतीस सालों से संभाल कर रखा है, अब तुम अपनी इस अमानत को संभालो"।

इस तरह "गुरूप्रसाद" हरेक के लिये दिव्य संदेश है, चाहे वो किसी भी धर्म या जाति का क्यों न हो। क्योंकि गुरूतत्व के मूलभूत सिद्धान्त एक ही साथ अंतरयामी तथा भावातीत और गुढ़ होते हैं "गुरूप्रसाद" यह ग्रंथ गुरूवर दादाजी का विस्तृत अनुभव, उनकी असामान्य प्रज्ञा तथा विलक्षण बुद्धिमत्ता से प्रसृत हुए अमूल्य विचारों का निचोड़ है। इस ग्रंथ में उन्होंने धर्म, ईश्वर, ज्ञान, भक्ति, जीवन, गुरूमार्ग आदि विषयों के संबंध में अपने विचार वाचकों के तथा भक्तों के हित के लिये ग्रथिंत किये हैं। एक सार्थक जीवन का वह सारसर्वस्व है। इसीलिये पहिले के दो प्रकरणों का विषय, "श्री साई अध्यात्मक समिति की भूमिका, कार्य तथा योगदान है। क्योंकि श्री साई अध्यात्मिक समिति यह गुरूवर दादाजी के जीवनलक्ष का तथा सेवाव्रत का मूल स्त्रोत है।" आगे के कुछ प्रकरणों में हिन्दु परंपरा तथा धर्म ग्रंथो के अनुसार धार्मिक विधियों का स्पष्टीकरण है। यह स्पष्टीकरण केवल पारिभाषिक तथा वर्णनात्मक नहीं है। इसकी रूपरेखा एक अनोखी चौखट में सजाई है, क्योंकि इस स्पष्टीकरण में पूजा विधि में "उपचार" पर अधिक बल दिया गया है, न कि औपचार पर। कारण कि जिस पूज्य भाव से भगवान की पूजा में "औपचार" किया जाता है वही याने उपचार अपना महत्व रखता है। उपचार भक्त के भक्तिभाव का मूल स्त्रोत होता है। किसी भी धर्म में बतलाए हुए विधियो में उन्हें करते समय पूजक की भगवान के प्रति पूज्य भावना यह उन विधियों का सार है। उस पूज्यभाव के बिना किया हुआ पूजन उन विधियों को बार-बार यंत्रवत दोहराने के समान होगा। इस तरह पूज्यभाव से किया पूजन ही पूजक की गुरू के हाथों होने वाली अध्यात्मिक उन्नति की पार्श्वभूमि तैयार करता है।

गुरूमार्ग से अपरिचित ऐसा वाचक जब ''गुरूप्रसाद'' प्रथमबार पढ़ेगा तब उसे यह महसूस होगा कि उसके जीवन को एक नया अर्थ प्राप्त हुआ है। प्रथम वाचन पूर्ण करने पर उसके अपने विचारों का पूर्णतया परिवर्तन हुआ है ऐसा उसे अनुभव होगा, और हो सकता है कि उसे इस बात का दुख होगा कि ''हम अपने जीवन में इसके पहले गुरूवर दादाजी के संपर्क में नही आ पाये यह मेंरा दुर्भाग्य है'' किन्तु उसे इस प्रकार विवश होने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि इस संसार से विदाई लेते समय गुरूवर दादाजी ने जो कार्य पीछे रख छोड़ा है वह एक शाशवत तथा चिरस्थायी खजाना है जिसमें से वाचक मुक्त रूप से चाहे जितना ले सकते हैं। परमपूज्य दादाजी अवतारी पुरूष थे। उनका दिया कृपाशीर्वाद निरंतर शाश्वत रूप से सभी ओर व्याप्त है और कृपाशीर्वाद पाने के लिये जो इच्छुक हैं उन्हें वह प्रदान करने में वे सदैव उत्सुक हैं। कृपाशीर्वाद का यह आनंद अपने आप में अनुपम अमृत है।

गुरूमार्गी हुये भक्त तथा जिन्हे पूर्व से गुरूवर दादाजी के सहवास का लाभ हुआ है उनके लिये तो ''गुरूप्रसाद'' बाइबल या गीता समान है। वह उनका अमूल्य ऐसा संदर्भ ग्रंथ है। उसे बारंबार पढकर गुरूमार्गी भक्तों को गुरूवर्य दादाजी के दर्शाये मार्ग में कहाँ तक प्रगति हुई है इसका शोध बोध लेना आसान होगा। ''गुरूप्रसाद'' के प्रत्येक आवर्तन में ऐसे गुरूमार्गी भक्तों को गुरूतत्व की अधिकाधिक अभिव्यक्ति होगी। भारतीय तत्वज्ञान के विचारो के सूक्ष्म भेद तथा उनका एक नये रूप में आविष्कार भक्तों को ''गुरूप्रसाद'' के प्रत्येक आवर्तन में होगा। अर्थात ऐसे सूक्ष्म भेदों का निचोड़ ''गुरूप्रसाद'' का सूझबूझ से पठन करने पर ही विदित होगा। जितना उसे हम पढ़ेगे उतना ही अर्थ की गंहनता का अनुभव हमें मिलता रहेगा।

चिकित्सक तथा जिज्ञासु बुद्धिवादियों को ''गुरूप्रसाद'' पढ़ने पर यह प्रतीत होगा कि परंपरागत धार्मिक विधियों को एक नया अर्थ देकर नये रूप में उनका विवेचन किया गया है। प्रचलित समाज तथा उसकी विचार धारा से यह नया अर्थ सुसंगत है। ''गुरूप्रसाद'' में

लिखा कथन केवल तात्विक शब्दछल नही है बल्कि वह एक नया मार्ग बतलाता है जिसमें धार्मिक तथा नैतिक संस्कारों को समाज के सामूहिक एवं व्यक्तिगत जीवन में उनका यथोचित स्थान दिया हुआ है। वह व्यक्ति को परंपरागत धार्मिक विधियो के बंधनो में जकड़ता नहीं क्योंकि सिद्ध गुरू के कृपाशीर्वाद बिना परंपरागत धार्मिक विधियों के पुनः-पुनः करना यह एक निष्फल साधना होती है।

समाज में स्थित मूलभूत रचनात्मक असन्तुलन दूर करने में धार्मिक तथा नैतिक संस्कारों का निश्चित रूप से महत्वपूर्ण योगदान है। यही श्री साई अध्यात्मिक समिति का कार्य है। किसी व्यक्ति के कर्म तथा वंश में निहित दोषों का निराकरण द्वारा निवारण तथा व्यक्ति के पारिवारिक जीवन में आने वाले दुःख और संकटों के निवारण के लिये किया जाने वाला मार्गदर्शन, लेखक का तथा उनसे प्रतिपादित किये हुये गुरूमार्ग का दृष्टिकोण कितना व्यवहारपूर्ण और प्रायोगिक है इसकी साक्ष है। लेकिन ये निराकरण तथा मार्गदर्शन एक अंतिम ध्येय साध्य करने के उद्देश्य से अपनाए हुये केवल साधन मात्र है। व्यक्ति के विचारप्रक्रिया में परिवर्तन संपादित करने में उठाया हुआ वह पहला कदम है। इस परिवर्त्तन से व्यक्ति को जिस समाज का वह एक क्रियाशील घटक है उस समाज के प्रति उस व्यक्ति का स्वयं का जो कार्यभाग है उसके बारे में सचेत करना यह समिति के कार्य का अंतिम ध्येय है। ऐसी जागृति के फलस्वरूप समाज के भौतिक, नैतिक तथा अध्यात्मिक स्तर ऊँचे होकर समाज कल्याण वर्धिष्णु होगा जिसके कारण अधिकतर लोग गुरूमार्ग की ओर आकर्षित होंगे।

नाथपंथ तथा दत्तपंथ की ओर यहाँ नामनिर्देश करना उपयुक्त नही होगा। श्री गोरखनाथ ने सिद्धसिद्धान्त पद्धति को समाजोपयोगी बनाने हेतु एक नया अविष्कार दिया। उनके काल में यह आवश्यक था क्योंकि उस समय समाज के लिये विघातक ऐसे हानिकारक रीति-रिवाज़ शाक्तों द्वारा रूढ किये गये थे जिनके कारण समाज में एक खलबली सी मची थी। कुछ हदतक धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों के बारे में आज का भारतीय समाज भी इसी सदृश परिस्थिति से गुजर

रहा है यह कहना अतिशयोक्ति नही होगा। इस परिस्थिति में श्री गोरखनाथ जैसा ही कोई सुधारक आज के समाज को इस दलदल से तारने के लिये आवश्यक है। गुरूवर्य दादाजी ने ''गुरूप्रसाद'' द्वारा यह कार्य सजाया है।

समाज में अत्याधिक लोग अंध श्रद्धालु तथा दैववादी बनकर अपना बहुमूल्य जीवन निराशामय बना बैठे हैं। जिस कारण उनके जीवन में भविष्य में अंधकार ही छाया हुआ है इससे बचने के लिये वे अनेक अच्छे बुरे दैवी उपायों का अवलम्बन बिना समझे अंधश्रद्धा से करते हैं। किन्तु अंत में इन परंपरागत धार्मिक विधियों को करने पर भी जब अपेक्षित फलप्राप्ति नहीं होती तो वे अधिक ही निराश हो जाते हैं। इसलिये एक ओर इस अंधश्रद्धा तथा दैववाद को दूर करना होगा और दूसरी ओर उसी के साथ जीवन में आशावाद पैदा कर सार्थ जीवन जीने का सही मार्ग दर्शाना होगा। सार्थ जीवन जीने का ऐसा तरीका दर्शाना होगा जिसमें अपने पारिवारिक कर्तव्य तथा जिम्मेंदारियों को निभाते हुये समाज के प्रति अपना जो कर्तव्य है उसे भी यथायोग्य निभाना है। ऐसी सूझबूझ से अपनाई श्रद्धा और भक्ति यही सच्चे रूप में जीवन साफल्य हैं। ऐसे मार्ग को अपनाने में ही मानव का ऐहिक एवं परमार्थिक विकास इसी जन्म में प्राप्त होकर उसका जीवन सफल होगा। श्री साई अध्यात्मिक समिति का यही सेवाव्रत है।

नाथपंथ और दत्तपंथ की अपनी एक विशेषता है, वह यह है कि शिष्य सिद्ध अवस्था में परिपूर्ण रूप से तैयार हुआ है यह जानकारी गुरू को होने पर गुरू उसे गुरूमार्ग में आगे बढ़कर, गुरू ने अपनाए कार्य को, स्वयंप्रज्ञा से करने की अनुज्ञा देते हैं। ऐसी आज्ञा होने पर शिष्य को स्वतंत्र विचार से गुरू कार्य को आगे बढ़ाना होता है। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि बुद्धिवादी जैसा समझते हैं कि गुरूमार्गी होने पर भक्त पूर्ण रूप से गुरू पर ही निर्भर रहता है और उसकी स्वयं निर्णय की और कार्य करने की क्षमता कुंठित हो जाती है यह धारणा गलत है। किन्तु इसके विपरित गुरूमार्ग में सिद्ध गुरू की यह धारणा और अपेक्षा होती है कि शिष्य की सिद्धावस्था में प्रज्ञावस्था

पूर्णरूप से विकसित होने पर मानव कल्याण का कार्य वह स्वतंत्र रूप से करे।

गुरूमार्ग एक ऐसा मार्ग होता है जिसमें सत्यनिष्ठ और सिद्ध गुरू एकमेंव पथ प्रदर्शक, मित्र तत्ववेत्ता तथा तारक होते हैं। अपने स्वयं निर्णय से हमारे जीवन के लिये जीवन यात्रा में कौन सा मोड़ हमारे लिये उद्धारक होगा यह निश्चित करना कठिन है। किन्तु सिद्ध गुरू अपनी स्वयं प्रज्ञा से यह जानकारी प्राप्त कर लेते हैं कि जीवन में कौन से मार्ग का अवलम्बन शिष्य के लिये हितकर होगा। इतना ही नहीं बल्कि दर्शाये मार्ग पर शिष्य को लाने का कार्य भी गुरू करते हैं। गुरू मार्गदर्शन के बिना गुरूमार्ग दुष्प्राप्य है। परन्तु गुरू से मार्गदर्शन प्राप्त होने पर अपने प्रिय शिष्य की जीवन यात्रा गुरू सुसहय तथा सुरक्षित कर देते हैं। गुरू ही एकमेव ऐसे तारक हैं जो शिष्य की जीवनयात्रा को ज्ञानप्रद तथा प्रबोधक कर देते हैं। जीवनयात्रा में गुरूमार्गदर्शन का हर चौराहे पर प्रकाश देकर तथा शिष्य गुमराह न हो, इसका निश्चय गुरू स्वयं करते हैं। मानव के इस धरती पर हुए मानव जन्म का सच्चा अर्थ क्या है? तथा इस स्थूलदेह में स्थित आत्मा का अंतिम तथा उदात्त ध्येय क्या है यह विदित करने में केवल गुरू ही समर्थ होते हैं। गुरूमार्ग में किये भिन्नाभिन्न विमोचन तथा उनके उपरान्त दी गई दीक्षाओं का विस्तृत विवेचन इस ग्रंथ में किया गया है। वह मानव के इस जन्म के अंतिम ध्येय की ओर होने वाले लम्बे सफर में एक स्थलचिन्ह हैं। गुरूमार्ग में इन गतिविधियो से दीक्षित होने पर ओंकार साधना एवं दैनिक प्रार्थना यह शिष्य के अत्यंत प्रभावी साधन होते हैं, जिनके नित्य प्रयोग से वह जीवन का अंतिम ध्येय याने सार्थकता प्राप्त कर लेता है और श्री साई अध्यात्मिक समिति के कार्य में सहभागी हो सकता है। इतना प्रयत्न निष्ठा, श्रद्धा तथा प्रमाणिकता से करने पर उसके अन्य सभी बिना कोई कष्ट उठाये गुरूकृपासे सहज प्राप्त होते हैं और इनकी ओर विशेष ध्यान देने की उसे आवश्यकता भी नही होती है। इन साधनों का महत्व विस्तृत रूप से इस ग्रंथ में किया है।

गुरू के प्रति दृढ़ तथा असीम श्रद्धा यही गुरूमार्ग का सर्वस्व सार है। गुरू सर्वज्ञानी है। दिव्य रूप है। अवतार रूप है। उन्हें पहचानने के लिये शिष्य को अपना संपूर्ण जीवन उनके चरणों में समर्पण करना होता है। गुरू रूप में तादात्म्य होना होता है। अन्य कोई भी प्रभाव जो उसे इस मार्ग से पथभ्रष्ट करे तो शिष्य की गुरू के प्रति श्रद्धा विचलित होती है और उसका जीवन दुबारा एक ध्येयहीन भ्रमण हो जाता है। अध्यात्मिक मार्ग में अपने अधिपति या स्वामी के रूप में एकमात्र गुरू की ही आराधना तथा अर्चना करना शिष्य के लिये आदर्श होता है।

गुरू एक तत्व है। इस गुरूतत्व की अर्चना करना है ना कि व्यक्तिरूप गुरू की। क्योंकि गुरू का व्यक्तिरूप देह आवाहनित की हुई दिव्यशक्ति के वास्तव्य का एक अस्थायी स्थान या माध्यम है। आवाहनित किया हुआ दैवी कृपाशीर्वाद जो उनके व्यक्तिरूप स्थूल देह में प्रदर्शित होता है उस शक्ति की आराधना करनी चाहिये क्योंकि यह शक्ति ही शाशवत होती है। जिन्होंने इस रहस्य को जान लिया वे ही गुरू में स्थित सत्यं शिवम् सुंदरम् को देख सकते हैं।

इसीलिये गुरूवर दादाजी भक्तों से कहा करते थे कि गुरूतत्व की पूजा आराधना करो ना कि व्यक्तिरूप गुरू की जिनके माध्यम से वह तत्व प्रदर्शित होता है।

गुरूवर दादाजी ने अपना संपूर्ण जीवन तन-मन-धन से सिद्ध सिद्धान्त पद्धति के साधन प्राप्त कर उन्हें जन-जागरण तथा कल्याण के लिये सिद्ध करने में व्यतीत किया। उनके द्वारा किये हुए स्वार्थत्याग का वर्णन करने में शब्द असमर्थ है। गोवा में शक्तिपीठ की स्थापना करने के पूर्व उन्होंने दिव्य तपश्चर्या किया तथा उसके लिये उठाये काया कष्ट उनके जीवन के गौरवगाथा की अत्युच्च शिखा है। साथ ही उनके किया यह स्वार्थत्याग उनके स्वयं के मुक्ति के लिये न कर केवल जनकल्याण के एकमेंव हेतु से प्रेरित हुआ था। यह शक्तिपीठ भविष्य में निरंतर रूप से दिव्य शक्ति की किरण शलाकाएं विक्षेपित

करते रहेगा और भक्तगण उनसे असीमित रूप में दिव्य प्रकाश का लाभ उठाते रहेंगे। गुरूवर दादाजी जैसे दिव्य सत्पुरूष ही मानव कल्याण के भविष्य के लिये ऐसी चिरस्मरणीय तथा निरंतर धरोहर पीछे छोड़ सकते हैं।

''गुरूप्रसाद'' गुरूवर दादाजी ने मराठी भाषा में लिखा। गुरूप्रसाद की भाषा प्राचीन अध्यात्मिक ग्रंथो जैसी है। वह गुरूवाणी है। ''गुरूप्रसाद'' का अन्य भाषाओं में पाठभेद न होने देने की सावधानी रखकर शब्दशः भाषांतर करना प्रायः असंभव है। इसीलिये भाषांतर करते समय कई स्थानों पर मुक्त रूप से अनुवाद करने का सहारा मुझे लेना पड़ा। यह दीर्घ प्रस्तावना के लिये मैं वाचकों से क्षमा याचना करता हूँ। इस हिन्दी अनुवाद के वाचकों के लिये यह प्रस्तावना एक उपयुक्त पृष्ठभूमि होगी ऐसी मेंरी धारणा है।

अनुवाद का अपना यह प्रयत्न मैं विनम्रता से अपने गुरूवर आदरणीय श्री दादाजी के सदचरणों में समर्पित करता हूँ। उनका दिव्य लेख हिन्दी में रूपांतरित करने की स्फूर्त्ति मुझे केवल उनके ही कृपाशीर्वाद से हुई इसमें संदेह नहीं।

यह रूपांतर वाचक की उत्सुकता बढ़ाकर गुरूवर्य दादाजी की दिव्यवाणी से निकले हुये शब्दों पर ध्यान रखकर तथा उनके मनन चिंतन करने में और वाचकों के जीवनचर्या में उनके अपने विचारों में परिवर्तन लाने में साहाय्यभूत हो ऐसी सद्गुरू चरणों में मेरी प्रार्थना है। इस कार्य के पूर्ण करने में मेरे सहयोगी श्री दीपक भाई, डा0 बाल साहब तथा आरती सुखवंतकर का भी में ऋणी हूँ !

ए-38 कैलाश कॅलानी
नई दिल्ली 110048

विजय वर्मा

अनुक्रमाण

कार्य और कार्य की भूमिका	1 – 8
भक्तभाविको की कार्य के प्रति भूमिका	9 – 25
खानदान का कुलधर्म	26 – 46
पूजनादि विधि और उसका महत्व	47 – 68
आसन	50
लेप	52
फूल	53
इत्र	60
हल्दी और कुंकुम	62
फल समर्पण	63
आरती उतारना	64
अक्षतांए	66
पंचउपचार विधि	68
कुलाचार, कुलोपासना	69 – 100
अन्नशुद्धि	69
वास्तु पूजन	73
लक्ष्मी सरस्वती पूजन	77
आहार मीमांसा	87
धरातील सस्कारं	95
जन्मउत्पत्ति मीमांसा	95

उपास्य देव और उनकी उपासना 101–120
फल प्राप्ति के लिए उपासना और उसका थाल 101
उद्यापन 105
श्री गणपति पूजन 106
संचार अवस्था 113
प्रसाद 114

कार्य की निराकरण पद्वति 121–182
वंश विमोचन 123
जन्मकर्म ऋटणानुबंध 134
जन्मजन्मान्तर ऋटणानुबंध 134
इतरेजन ऋटणानुबंध 136
मातृपितृ ऋटणानुबंध 136
देवादिक ऋटणानुबंध 137
कर्मविमोचन 157
ऋटणविमोचन 157
दीज्ञाविधि 160
शक्तिपीठ 173
कारण, महाकारण, श्री साईशके प्रतिमा 177
प्रार्थना का महत्व 179

प्रार्थना–साधना और उसमें वेदवेदांत 183 –199
प्रार्थना और सिद्धसिद्धांत पद्धति 183
हिरण्यशर्म अवस्था 189
सेवक अवस्था 190

ॐकार साधना 200–239
हृदय 213
श्वसन संस्था 213
रक्ताभिसरण 214
संस्था पद्धति से नामस्मरण और गुरूशक्ति का रक्त में अविष्कार 214
साधक अवस्था 221
पंच प्राणकोश 223
गुरूकृपाशीर्वाद द्वारा प्राप्त जीवन में विकसित अवस्था 233
गुरूतत्व और उसका जीवन में महत्वपूर्ण कार्य 240
गुरूमार्ग की दीक्षा 242
साधक, सिद्ध साध्य अवस्था 247
सत्पुरूषों के कार्य 270
पंचमी, एकादशी, पूर्णीमा, अमावस्या का महत्व 273
अवधान अवस्था 283
ध्यान अवस्था 284
चिंतन अवस्था 285
श्री महाकारण दीज्ञा (दिशा) 287
श्री साई स्वाध्याय मंडल 294
श्री गुरूपूर्णीमाका महत्व 306
उपसंहार 317–369

卐

कार्य और कार्य की भूमिका

संसार की उत्पत्ति होते ही हम भक्तों के सुख-शान्ति-समाधान के लिये भगवान ने प्रत्येक युग में विभिन्न स्तरों पर अवतार धारण कर भक्तों के कल्याण की योजना बनाई थी और उसके अनुसार हर युग में अवतीर्ण हुये अवतारी पुरूषों ने अपना अवतार कार्य निःस्वार्थ, निरपेक्ष बुद्धि से कर, इस ईश्वर कृपा की अमूल्य धरोहर को हम मानवों के कल्याण के लिये अवतार परंपरा का व्रत अखंड रूप से जारी रखकर आज तक अविरत रूप से जतन किया है। इस तरह परंपरा से जतन की हुई ईश्वरकृपा की धरोहर गत तीस वर्षो से अधिक समय में आप भक्तभाविकों के सुख-शान्ति-समाधान दिलाने का कार्य करता आ रहा हूँ, तो भी युगों-युगों से जतन की हुई ईश्वर की अमूल्य धरोहर के संदर्भ में और उसे प्राप्त करने के लिये मिले आप जैसे भक्तभाविकों को इसका आकलन नहीं हुआ है कि हम मानवों के कल्याण के लिए ईश्वर के सद्हेतु की विशाल भूमिका क्या है?

इस कार्य का लाभ गत तीस वर्षो से भी अधिक समय से आप उठाते आ रहे हैं, लेकिन जिस कार्य की मूलभूत योजना मानव कल्याण की है, उस कार्य की अपनी भूमिका क्या है? और कार्य के प्रति आपकी अपनी भूमिका क्या है? इसका सोच विचार भूल से भी आपने नहीं किया है। इस निवेदन में आज प्रायः जिन तीन भूमिकाओं के संबंध में स्पष्टीकरण कर रहा हूं, यह भविष्य में आपके और आपके परिवार के कल्याण के लिये है।

प्रथम भूमिका का स्पष्टीकरण यह है कि इस कार्य की स्थापना मैंने ऐच्छिक व ऐहिक विषयों को लेकर नहीं की है। किन्तु मेरे माध्यम से इतरेजनों के कल्याण के लिये मेरे प्राप्त जन्म का सदुपयोग हो, तथा मेरा प्राप्त जन्म केवल ऐहिक विषयों के अधीन न होकर खान-पान, वस्त्र-आभूषण, ऐशोआराम में व्यतीत न हो इस सद्भावना

से ईश्वरी आज्ञानुसार मैंने यह सेवा कार्य लगभग गत तीस वर्षो से अधिक समय तक प्रमाणिकता से अखंड रूप से जारी रखा है। आज आप जैसा मैं भी एक पारिवारिक व्यक्ति हूँ, जीवन संबंधी आपकी जो भी अपेक्षाएं, एवं न्यूनतम आवश्यकतायें तथा जीवन में जो कमियाँ हमें महसूस होती हैं उसी तरह वे मुझे भी होती हैं, मुझ में भी होना स्वाभाविक और आम बात है। यह मानते हुये भी आज लगभग गत तीस वर्षो से अधिक साल तक गुरूकृपा के साथ निरन्तर रूप से एकनिष्ठ रहकर जीवन के अनेक ऐहिक विषयों से दूर रहकर मैंने इस गुरूकृपा की धरोहर को मानव कल्याण के लिये निरन्तर जतन किया है और उसका लाभ आप उठा रहे हैं। लेकिन खेद से कहना पड़ता है इस जन्म में प्राप्त कृपाशीर्वाद के प्रति अपना भी कर्त्तव्य है, इसका आपने एक क्षणभर के लिये भी सोचविचार नहीं किया है। तो भी इस अज्ञानवश गलती को ध्यान में न लेते हुये मै आज भी आपके कल्याण के लिये गुरूकृपा आशीर्वाद के किन-किन विभिन्न साधनों की आवश्यकता है, इसका विचार कर उन्हें प्राप्त करने के लिये गुरूआज्ञा से गुरूचिंतन में व्यस्त हूँ और तीर्थक्षेत्रों में सेवारत रहकर उसे प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इसके पीछे का सद्हेतु केवल मेरे परिवार का कल्याण निरंतर रूप से चलता रहे और मुझे प्राप्त हुये जन्म को गुरू के चरणो में निरंतर मुक्ति मिले, यह न होकर, भविष्य में आपको प्राप्त होने वाले अनेक जन्मों में आपके तथा भावी पीढ़ियों में सुख-शांति-संपत्ति-संतति-दीर्घायुष्य आदि की व्यवस्था हो यह है। आज मैं आप भक्तभाविकों को व्यक्तिशः मार्गदर्शन का लाभ नहीं दे रहा हूँ इसका अर्थ यह नहीं कि मेंरा स्वास्थ्य ठीक नहीं हैं या आप भक्तों की सेवा करने में मैं थक गया हूँ। गत कुछ वर्षो से आप अपने पारिवारिक जीवन की अड़चनों का गुरूकृपा से निवारण करवाते आ रहे हैं। केवल ऐहिक विषय आसानी से प्राप्त कर उसके उपभोग में ही अपने जीवन की सार्थकता है, यह जो आपकी गलत भूमिका रही है उस गलत भूमिका को सुधारने के लिये गुरू आज्ञानुसार मुझे आजतक प्राप्त हुये आपके स्नेहभरे सहवास से अलग रहकर भक्तों को उनके इस जन्म में ही पारलौकिक तत्व का लाभ किस प्रकार

दिया जाये, इसकी खोज यही साधना का उद्देश्य रहा है और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मुझे आपसे आज तक दूर रहना पड़ा। यद्यपि गुरूआज्ञानुसार मेरा आप भक्तों से मिलना संभव नहीं था, फिर भी इसका अर्थ यह नहीं था कि जिस कृपाशीर्वाद का लाभ आपने उठाया, उससे आपको वंचित किया है। फिर भी आप लोगों की यह गलतफहमी है कि, आपको वं. दादासाहब से मिलने का मौका प्राप्त नहीं हो रहा है। आपकी इस धारणा का मुझे खेद है। गुरूमार्ग में व्यक्तिपूजा की जो आपकी भूमिका है वह गलत है। गुरूकृपाशीर्वाद एक महान शक्ति है और वह पूरे संसार को व्याप्त कर कार्य करती है। वह किसी भी गुरूभक्त के माध्यम से स्वयंस्फूर्त कार्यप्रेरणा देती है। परंतु आपकी भूमिका व्यक्ति पूजा की होने से, इस कार्य के लिये गुरूआज्ञा से नियुक्त सेवक आपकी सेवा करने में या आपकी अड़चनो का निवारण करने के लिये मार्गदर्शन करने में असमर्थ है, इस प्रकार की भूमिका निर्माण कर जो अनंत रूप सर्वव्यापी नारायण, चित्स्वरूप में सद्गुरू में निवास करता है और मानव रूप में प्रकट होता है, उस गुरूकृपाशीर्वाद से आप केवल अपने अज्ञान से वंचित हो रहे हैं। भविष्य में मुझे अपना जीवन आप भक्तों के कल्याण के लिये और आपके परिवार को निरंतर सुख-शांति प्राप्त कराने में तथा आपको प्राप्त जन्म की सार्थकता जिन साधन पध्दति से प्राप्त हो, उन साधनों को प्राप्त करने के लिये बिताना है। इसका अर्थ यह नहीं कि मै आपसे दूर हूँ। यह दूरी की भावना आप अपने अज्ञान के कारण निर्माण कर रहे हैं। इसकी अपेक्षा मुझे गुरूआज्ञा का जो मूलभूत इष्ट फल आपके कल्याण के लिये प्राप्त करना है, उसे प्राप्त करने के लिये आप मेरी भूमिका से एकरूप होकर जो कोई नियुक्त सेवक प्रत्येक केन्द्र पर कार्य कर रहे हैं, उनको सहयोग देना उचित होगा। नियुक्त सेवकों को जिस भूमिका के लिये नियुक्त किया गया है उसे निभाने में कार्य करने का मौका यदि आप उन्हें देगें तो वह सेवक भी पर्याप्त अनुभव के उपरान्त मेरे समान सिद्धावस्था प्राप्त कर ''माध्यम'' के रूप में यह कार्य अनंतकाल तक संसार के कल्याण के लिये अव्याहत रूप से करते रहेगें।

कार्य के प्रति मेरी व्यक्तिशः जो भूमिका है उसका स्पष्टीकरण मैने अपने यथाज्ञान से किया है। जिस कार्य को गुरूआज्ञा से मैने स्वीकार किया है उस कार्य की भूमिका और उसकी उचित पहचान आपको हो, इसलिये गुरू-आज्ञानुसार यह कार्य कई युगों से अविरत रूप से होता आ रहा है इस कार्य में मानव जीवन की सार्थकता के लिये जो अभिनत मार्गदर्शन पद्धति सूचित की गयी है, वह इसलिये कि आज के युग में साधारण मनुष्य को आचार-विचार से ईश्वर कृपा प्राप्त करने में जीवन का दीर्घ काल व्यतीत करना सम्भव नहीं है। एक सरल तथा आसान निराकरण पद्धति से ही प्राप्त जीवन के इष्ट कर्तव्य की पूर्ति कर प्राप्त जीवन की सार्थकता हो, यह सद्हेतु इस कार्य की भूमिका के पीछे है।

पूर्वकाल के कार्यपद्धति में हम मानवों के कल्याण के लिये जो निराकरण पद्धतियाँ अपनाई गयी थी उनमें ऋषिजनों के युग में जप-जाप, यज्ञयाग आदि सूचित किये गये थे। किन्तु ये साधन बहुत प्रखर होने के कारण साधारण मानव उसका लाभ प्राप्त नहीं कर सका। उसके बाद का काल देव और देवताओं का था। उस काल में देवदेवताओं की आराधना अस्तित्व में आयी, और उनकी कृपाप्राप्ति के लिये कुलधर्म, कुलाचार, कुलोपासना, पंचोपचार, षोड़षोपचार, व्रत, मन्नत आदि मार्ग सूचित किये गये। परंतु ये निराकरण पद्धतियां यद्यपि अधि कारिक और सूज्ञ साधकों के माध्यम से सूचित की गयी थीं, फिर भी कालानुसार मनुष्य को उन निराकरणों को स्वीकार कर अपने प्राप्त जीवन के इष्टकर्तव्य साध्य करना कठिन हो गया। इस प्रकार इन जटिल आचार विचारों की जीवन पद्धति को अलग ढंग से मोड़कर एक नये शक्तिपंथ का उदय उस काल में हुआ। उस पंथ ने एक नयी निराकरण पद्धति सूचित करने का कार्य किया इस पंथ के कार्य पद्धति में यद्यपि देव और देवताओं का समावेश किया जाता था फिर भी शक्ति का कार्य जिस प्रधान माध्यम से किया जाता था, वह

शक्ति देव और देवताओं की संतुष्टि के लिये बलि दिये जाने वाले प्राणिमात्रों के रूप में सूचित की जाती थी। इस प्रकार इन प्राणिमात्र बलिदान से जो शक्ति पैदा होती थी वह मंत्र-तंत्र-यंत्र पद्धति से धारण कर उसका उपयोग अन्य व्यक्तियों के कल्याण के लिये न होकर उस शक्ति का उपयोग जारण-मारण, भूतवाधा वशीकरण आदि कार्यपद्धति के लिये किया गया। उस काल में जो भी साधारण मनुष्य सुख-शांति और समाधान से जीवन व्यतीत करते थे उनको इस कार्य पद्धति से अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ा। कारणवश जिनको मंत्र-तंत्र-यंत्र पद्धति साधन के रूप में प्राप्त हो सकी उनको दूसरों का प्राप्त सुख सुहाता नहीं था। ''उन्होंने इन साधनों का उपयोग समाज में वैरभाव और आपस में दुःख निर्माण करने के लिये किया।'' इस साधन पद्धति का दुरूपयोग देखकर भगवान ने उसे नष्ट कर इस जगत में मानवी जीवन के योग्य कार्य पद्धति का आविष्कार प्रतीत हो, और इस लोक और परलोक इन दोनों अवस्थाओ का सुलभता से लाभ हो, इसलिये भगवान को नाथपंथ की स्थापना करनी पड़ी।

इस प्रकार यह सुपरिचित नाथ संप्रदाय का निर्माण हुआ। इसके लिये नवनारायणों ने इस भूमि पर अवतार धारण कर अपने कार्य को आरंभ किया। इस कार्य में प्रथमतः "उन्होंने देवयुग में जिन देव-देवताओं के बलिदान आदि दुष्कृत्यों से शाक्तपंथ ने दूषित किया था, उनकी पुनर्स्थापना की तथा शाक्तपंथ के प्रभावी साधन मंत्र-तंत्र-यंत्र, जारण-मारण आदि जो उस काल में अस्तित्व में थे'' उनका प्रयोग आसानी से न हो, इसलिये ''शाबरी-विद्या'' की स्थापना कर शाक्तविद्या का प्रभाव नष्ट कर दिया। इस नाथपंथ की कार्यपद्धति का आविष्कार भारत भूमि पर होकर सब को समान सुख शान्ति तथा परलौकिक तत्व का लाभ की प्राप्ति हो इसलिये नाथपंथियों को श्री शंकर प्रभू ने दीक्षा दी और श्री दत्तात्रेय जी ने अनुगृहीत किया। इन दो देवताओं की दीक्षा और अनुग्रह पद्धति से पुनश्च इहलोक और परलोक दोनों एकरूप होकर मनुष्य को प्राप्त जन्म के अनुसार जन्मजन्मांतर और

जन्मकर्म दोनों ऋणानुबंधों का लाभ प्राप्त करने में एक सुयोग्य साधन प्राप्त हुआ। प्राप्त जन्म केवल कुमार्ग के कारण प्राप्त नहीं हुआ है, अपितु मातृपितृ ऋणानुबंध यह प्राप्त जन्म का एक हिस्सा है तथा देवादिक, इतरेजन, जन्मजन्मांतर और जन्मकर्म इन सभी ऋणानुबंधों से संबंधित दूसरा हिस्सा है। इन सभी ऋणानुबंधों का हितसबंध प्राप्तजन्म से है। केवल पूर्वजन्म के कर्मानुसार हमें यह जन्म प्राप्त हुआ है, ऐसे संकुचित विचार से जीवन की ओर देखने से हम कभी सुखी नहीं हो सकते। प्राप्त जन्म में जिस सुख-शांति संपत्ति-संतति आदि की अपेक्षा आप भक्तगण करते हैं, वह आपकी इष्ट अपेक्षा फलीभूत न होने में मातृपितृ घराने में गत सात पीढ़ियों में जिन व्यक्तियों का स्वर्गवास हुआ है उनकी अपूरित ऐहिक इच्छायें और वासनायें आपको प्राप्त जन्म में अड़चने पैदा करती हैं। इस प्रकार का दोष ''वंशविमोचन'' कर दूर किया जा सकता है। यह वंशविमोचन पद्धति जिसकी कार्यपद्धति से गुरूमार्गी हुए भक्तगण परिचित हैं, उस पद्धति की कार्य योजना नवनाथों के युग से ही शुरू हुई है। इस कार्य पद्धति का लाभ गुरूकृपाशीर्वाद से हमारी कार्यपद्धति को हुआ है और यह लाभ आपके सभी परिवारजनो को बिना किसी प्रखर साधन से आसानी से मिल रहा है। इस जन्म में इससे बढ़कर और कोई सौभाग्य नहीं है।

अब आप भक्तगणों के सुख और शांति के लिये दूसरा प्रखर साधन ''ऋणमोचन'' है। इस साधन के नाम का उच्चारण करना बड़ा ही आसान है। फिर भी साधक अवस्था में स्थित मनुष्य को यह साध्य प्राप्त करने के लिये पूरा जन्म भी अधूरा पड़ेगा इतना यह साधन प्रखर है। क्योंकि पूर्व के कर्मानुसार जब इहलोक में आप फिर से जन्म लेते हैं तब आत्मा देहाधीन होकर मनुष्य इस देह को ऊपर निर्दिष्ट ऋणानुबंध भुगतने पड़ते हैं। ऐसे समय वंशदोषान्तरगत ऋणानुबंध मानव के ईर्दगिर्द अदृश्य रूप में कार्य करते रहते हैं। किन्तु देवादिक, मातृपितृ, इतरेजन, जन्मजन्मांतर और जन्मकर्म ये पांच ऋणानुबंध देह के अंतर्गत वास करते रहते हैं। इन पांच ऋणानुबधों की अनुकूलता

और प्रतिकूलता के कारण हम मानवों को विद्या, संपत्ति, संतति आदि महत्वपूर्ण विषयों का कर्तव्य आसानी से पूर्णवस्था तक ले जाना संभव नही है। जन्म प्राप्ति के उपरांत देह के साथ जुड़े हुये ये दोष केवल गुरूकृपाशीर्वाद से विमोचित हो सकते हैं, अन्यथा इहजन्म में अनुकूलता और प्रतिकूलता के कारण जो दुःख सहना पड़ता है उसे भुगत कर ही अगले जन्म में योग्य और अनुकूल ऋणानुबंधो को प्राप्त करना यही एक पर्याय रह जाता है। इन प्रखर दोषो के कारण आज संसार में आपके आसपास के कई परिवार अज्ञानवश दुख के द्वार पर खड़े हैं। किन्तु हम मानवों के कल्याण के लिये परमेश्वर ने अवतार लेने में तनिक भी गौणत्व न मानकर अवतार धारण किया है। इस अवतार धारण करने में परमेश्वर का उदेश्य न तो नाम कमाना है, और न ही अपने नाम को प्रतिष्ठा प्राप्त कराना है। इस दीनदयालु परमेश्वर ने तो इस गौणत्व को हम मानवों के कल्याण और जीवन रक्षा के लिये अवतार धारण करना स्वीकार किया है। फिर भी हम मानव आज अपने आपको भौतिक युग के इस घिसे-पिटे मार्ग से आत्मनाश की ओर ले जा रहे हैं। हमें प्राप्त इस अमूल्य जीवन का दुरूपयोग हम अपने अज्ञान से कर रहे हैं। इसका थोड़ा भी ख्याल हमें नहीं हो रहा है। आज हमारी विचार-धारा इस भौतिक युग के अनुसार इस प्रकार हो गई है कि गुरूमार्ग स्वीकारना या गुरू माध्यम को पूजनीय मानना यह हमारी अज्ञानता है और इस प्राप्त जन्म में इस प्रकार के मार्ग की पहचान करा लेना समाज की दृष्टि में एक गौणत्व है। इस विचार से हम लोग अपने जीवन का निरर्थक दुरूपयोग कर रहे हैं। इस प्राप्त जन्म में कर्तव्य के रूप में बाल-बच्चों की जिम्मेदारी हमारे ऊपर है। अपितु केवल आपकी अपनी इच्छाएं और अपेक्षाएं अनके भावी जीवन को पूर्णावस्था तक ले जाने में असमर्थ है। क्योंकि यद्यपि इच्छाओं और अपेक्षाओं का होना मानव का स्वाभाविक धर्म है, फिर भी आपकी इच्छाओं और अपेक्षाओं की नींव देवनिष्ठा में न होकर ऐहिक विषय में है और ऐहिक विषय कभी भी इच्छा और अपेक्षा को साकार करने

में समर्थ नहीं हो सकते। क्योंकि इन विभिन्न विषयों की निर्मिती और उनकी आशक्ति हम मानवों ने ही आपस में पैदा की है। जहाँ इच्छाएं एवं अपेक्षाएं विद्यमान हैं और उनकी पूर्ति के लिए साधनों का गठन ईश्वर के अधिष्ठान पर निर्भर हों, ऐसी इच्छाओं और अपेक्षाओं की पूर्ति केवल इसी जन्म से सीमित नहीं होती है बल्कि आने वाले अनेक जन्मों में और पीढ़ियों में भी सम्मिलित होती है। किन्तु हम अपने भविष्य का गहन सोचविचार कर अपना जीवन व्यतीत नहीं करते हैं, यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण अवस्था हमारे जीवन में आयी है। जो भगवान हमारी इच्छाएं और अपेक्षाएं अनेक जन्मकाल तक पूरी करने में समर्थ है, उस परमेश्वर की प्राप्ति के लिये इतना आसान और सरल मार्ग इस संसार में है, उसको अनदेखा कर कठिन भौतिक मार्गो का अवलंब कर भगवान के अस्तित्व को नकारना ही हम गौरव मानते हैं। यद्यपि इससे समाज में भले ही आपकी प्रतिष्ठा बढ़ती हो लेकिन कर्म से प्राप्त यह जीवन इस सामाजिक प्रतिष्ठा के बड़प्पन को नगण्य बना देता है।

भक्तभाविकों की कार्य के प्रति भूमिका

इस कार्यपद्धति का लाभ प्राप्त करने के लिये आप भक्त जब कार्यकेंद्र पर उपस्थित होते हैं तब इस कार्य के संबंध में जानकारी आपको वहाँ के भक्त, जिन्होंने वहाँ के निराकरण पद्धति का लाभ प्राप्त किया उन के द्वारा होती है। कार्य की इससे अधिक पहचान आप को नहीं होती है। हर मानव की जीवन से यह अपेक्षा होती है कि प्राप्त जीवन में उसको सुख-शांति-समाधान, विद्या-संपत्ति दीर्घायु आदि का लाभ हो। जीवन की स्वाभाविक जरूरतें और उनकी उचित रूप से प्राप्ति न होने के कारणों का पता लगाना और उनका निराकरण करना यह इस कार्य का सद्हेतु है। यह सद्हेतु सद्गुरूकृपाशीर्वाद से और नाथ परंपरा के सिद्ध सिद्धांत पद्धति से मनुष्य को ऐहिक और परमार्थिक दोनों सुखों का लाभ दिलाने में यद्यपि समर्थ है, फिर भी उसका लाभ प्राप्त करने में विलंब होता है।

तब ऐच्छिक सुख प्राप्त करने में विलंब क्यों हुआ? इसका समुचित विचार न कर, अन्य और कोई साधक आपको अपेक्षित सुख की प्राप्ति जल्दी करा देगा यह सोचकर आप अपने मार्गदर्शन की दिशा अज्ञानवश बदलते हैं। ऐसे समय आप स्वयं अपनी जिम्मेदारी न समझ कर अन्यत्र मार्गदर्शन के लिये जाते हैं। इस प्रकार जाने से आपकी दृष्टि में कोई खास फर्क नहीं पड़ता। परंतु गुरूमार्ग की दृष्टि में आपकी यह कृति आपके जीवन के लिये हानिकारक होती है क्योंकि अड़चनों के निवारण के लिये किया गया निराकरण गुरूकृपाशीर्वाद की धरोहर तथा देन है। उसे स्वीकारते ही उसकी कार्यान्विति शुरू हो जाती है। उस कृपाशीर्वाद को कार्य के लिये स्वीकारने के बाद आपके जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियां जिनकी तीव्रता आपके जीवन में चक्र रूप से दु:ख और अशांति पैदा करने के लिये जिम्मेदार होती है। उन आवर्ती दोषों की तीव्रता कम कर उनको अनुकूल बनाने का काम गुरूकृपाशीर्वाद करता रहता है। दु:ख निवाकरण के लिये कृपाशीर्वाद

के प्रतीक के रूप में जो श्रीफल आप भक्त स्वीकारते हैं वह आपके लिये गुरूकृपाशीर्वाद का संरक्षक चक्र ही होता है। किन्तु कृपाशीर्वाद का चक्र देह माध्यम में धारण करने में आप असमर्थ होने के कारण कृपाशीर्वाद के रूप में श्रीफल के माध्यम का उपयोग करना पड़ता है। अब इस कृपाशीर्वाद के कार्य की शुरूआत होने के बाद जो समय लगता है वह आपके जीवन के अनुकूल-प्रतिकूल दोष कितने सौम्य है या तीव्र है इस अनुपात पर निर्भर होता है। किन्तु यह बात मानना कि गुरूकृपाशीर्वाद में ही कोई न्यूनता है, और यही इच्छापूर्ति में विलंब होने का कारण है इस विचार से अपने दु:ख को और बढ़ाने में आप स्वयं ही जिम्मेदार होते हैं।

आज आप भक्तों के वांछित सुख-शांति की प्राप्ति के लिये जिस कार्य की स्थापना गुरू आज्ञानुसार की गयी है, इस कार्य के लिये आवश्यक सभी सिद्धसाधन पद्धतियाँ जिस साधक के माध्यम के रूप में करवानी है उस साधक को वे पद्धतियाँ पूर्ण रूप से प्राप्त हुई हैं या नहीं इसकी उचित पड़ताल समय - समय पर श्रीसद्गुरू द्वारा किये जाने के बाद ही उस माध्यम को इस कार्य के लिये नियुक्त किया गया है। इसका ज्ञान न होने के कारण आप भी भिन्न प्रकार से या विचार से साधक को प्राप्त हुआ गुरूप्रसाद, जिसके आशीर्वाद की धरोहर मानव जन्म से परे है, उस कृपाशीर्वाद की परीक्षा केवल ऐहिक विषयाधीन होकर करते हैं, उसे न कर सीधे सरल मार्ग का अवलंबन करना चाहिये। अर्थात् व्यवधानों के निवारणार्थ दिये गये प्रसाद की प्राप्ति हेतु ''हम अब तक कभी विनम्र भाव से ईश्वर की शरण में नहीं पहुँचे'' इस बात का एहसास करके दिये गये इस कृपाशीर्वाद को, भक्ति भावना पूर्वक मार्गदर्शन के अनुसार पूजनादि विधि सम्पन्न कर, उससे एकरूप होना चाहिये। परन्तु इसके विपरीत, आपकी अपनी भूमिका को स्वयं आपके विचारों के माध्यमों को, आप व्यवधानो में उलझाकर रखते हैं। इसलिये ''कृपाशीर्वाद मन:पूर्वक धारण किये बिना आपकी अड़चने दूर नही होगी'' यह बात समझ में न आने के कारण,

विवश होकर ही आप गुरूप्रसाद को स्वीकार करते हैं, और ''उलझने क्यों नहीं दूर होती? इस पर पूरी तरह सूझबूझ से विचार न कर'' अपनी मनोवांछना इस कार्य से पूरी नहीं होगी यही सोचकर अपनी समस्याओं का हल खोजने के लिये आप अन्यत्र दौड़ते हैं। पर्यायत: यह कार्य आपके अनेक जन्मों की सुख-शान्ति, संतोष की व्यवस्था करने में सक्षम होने पर भी केवल आपके अज्ञानी विचारों एवं आचरणों के कारण इस कार्य में न्यूनता लाने का कार्य आप करते हैं। वास्तविकत: आपकी सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति-गुरू सामर्थ्य के परे नहीं है। फिर भी जब तक जीवन में गुरू कृपाशीर्वाद को आप प्रधान विषय के रूप में स्वीकार नहीं करते तब तक दुनियाँ के अनेक साधकों के साधक मार्ग का या निराकरण का लाभ प्राप्त करने पर भी आपके जीवन को केवल क्षणिक सुख से अधिक कुछ प्राप्त नहीं होगा। पर्यायत: आपके जीवन में निर्भय तथा निरंतर ऐसी छाया प्राप्त होना असंभव है। आप भक्तगण मार्ग-दर्शनार्थ आने के पश्चात् अपने जीवन का गुरू-कृपाशीर्वाद द्वारा जब निरीक्षण किया जाता है, उस समय प्राप्त जीवन माध्यम में पूर्णता परिलक्षित न होकर वह असंख्य आचार-विचारों के निरर्थक कारणों से भग्नप्राय दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि आज प्राप्त जन्म का यथोचित ज्ञान प्राप्त कर योग्य समय पर उस जीवन पर संस्कारादि की आवश्यकताओं को आप अनदेखा करते आ रहे हैं। ये महत्वपूर्ण विधियां जीवन के प्रारंभ वाल्यावस्था से ही दैहिक एवं आत्मिक, इन दोनों माध्यमों के विकास हेतु संभाव्य रूप से विकसित होने का मार्ग खोलते हैं। किन्तु देवचिंतन, धर्माचरण आदि बातें वृद्धावस्था में ही प्राप्त की जाती है इस अज्ञानमूलक धारणा को मूल रूप में धारण कर, जीवन का विकास बाल्यावस्था से ही होने से भावी जीवन विकसित होकर ईष्ट कर्तव्यों की पूर्ति की सक्षमता जिन विधियों से या संस्कारों से प्राप्त होती है उन संस्कारों को निजी एवं पारिवारिक जीवन से अलिप्त रखकर, आज आप अपने दु:खों का निवारण कराना चाहते हैं। जीवनारंभ से ही यह महत्वपूर्ण, जीवन विकसित करने का कार्य- कारणभाव अनादिकालीन शास्त्र परंपरानुसार

एवं साधन पद्धती के अनुसार मानव कल्याणार्थ आज भी कार्यरत है। इसका प्रमाण ही यह कार्य है।

आज जीवन से संबंधित सुख शान्ति समाधान की जो हमारी अवास्तविक कल्पनाएं हैं उन्हे लेकर ही हम सद्गुरू चरणों में लीन होना चाहते हैं। किन्तु आपके ढहते जीवन की ओर देखकर श्रीसद्गुरू को परमदुख होता है। इसकी कल्पना आप भक्तगणों को कदापि नहीं हो सकती। आज आप भक्तगणों के बिगड़े हुये जीवन का कारण यह है कि जिस धर्म में आपने जन्म लिया है उस धर्म का मतलब क्या है? तथा उस धर्म के प्रति आपका कर्तव्य क्या है? इसे आपने कभी जानना नहीं चाहा। और जिस घराने में आपने जन्म लिया है उसकी कुल देवी, देवता और इनके लिये जो कुलधर्म, कुलाचार और कुलोपासना होती है उन विधियों से आपके जीवन के लिये पोषक कृपाशीर्वाद प्राप्त कराने का कर्तव्य आपने आजतक श्रद्धा और भक्ति से अपनाया नहीं है। जिन जन्मदाता माता-पिता ने आपको इस जन्म में जन्म दिया उन माता-पिता के ऋणानुबंधों की पूर्ति करना यह जीवन में आपका कर्तव्य है। यह कर्तव्य भी आप भूल चुके हैं। प्राप्त जन्म में आपको मिला हुआ सुख और वह भी जरूरत से ज्यादा होते हुये भी अधिक सुख के प्राप्ति का लालच लेकर आप सुख की छाया के पीछे भागते रहे। किन्तु इस प्राप्त जीवन में अन्य लोगों को भी तनिक सुख और समाधान देकर अपनी ताकत के अनुसार दानधर्म, परोपकार आदि करना यह कर्तव्य इस जन्म का उद्दिष्ट है, इसको आपने कभी जाना नहीं। इसके अलावा आपको एक महत्वपूर्ण जिम्मेंदारी को स्वीकार करना था। वह यह है कि आज प्राप्त जन्म, जो व्यतीत करने में खर्च हो रहा है, उस जन्म की प्राप्ति आपको जन्मजन्मांतर ऋणानुबंध और जन्मकर्म-ऋणानुबंध के अनुसार हुई है। इन दोनों ऋणानुबधों को ''दैहिक'' जीवन कहते हैं। इस दैहिक माध्यम को जो दो अवस्थायें याने जन्मजन्मांतर और जन्मकर्म - इनके सहयोग से कार्य करना है, उस माध्यम पर बाल्यावस्था से ही संस्कार विधि कर भावी जीवन के कर्तव्य की जिम्मेदारी निभाने का सामर्थ्य आप भक्तभाविक दे नहीं

सकते। इसके विपरीत आज जीवन व्यतीत करते समय आपके जीवन के आसपास जो अनावश्यक विषय है उन विषयों की प्राप्ति कितनी जल्दी से होगी इस आकांक्षा में आप व्यस्त है। इसलिये जन्मकर्म याने देहातीत अवस्था को अपने आपके आसपास जो ऐहिक विषय है उनके अधीन किया है। इस प्रकार इस देह की अधिक विषयाधीन होने की क्रिया होने के कारण जन्मजन्मांतर और जन्मकर्म दोनों अवस्थाएं परस्पर एकरूप होकर सहयोग करने के बजाय प्रधान माध्यम के रूप में केवल देहिक जीवन व्यतीत कर रहा है। इससे जीवन व्यतीत करने की जो मूलभूत नींव है और जो शास्त्रीय दृष्टि से जीवनोत्पत्ति मीमांसा में बतायी है, उसके विपरीत आप अपना जीवन व्यतीत करने पर आपकी इच्छायें और अपेक्षायें पूरी कैसे होगी? अब जिन अपेक्षाओं को लेकर आप आये, वे अन्य व्यक्तियो को प्राप्त हुये सुखों का विषय है। इस विचार को लेकर आप मार्गदर्शन के लिये आये! किन्तु जिन अपेक्षाओं को विचार के रूप में आप देह के माध्यम से व्यक्त करते हैं, वह माध्यम इन अपेक्षाओं को पूरा करने में आपके अज्ञान के कारण, कितना असमर्थ है, इस पर विचार आप नहीं करते इसका कारण देह माध्यम की व्यक्त क्रिया ''कर्म'' के रूप में आप अनुभव करते हैं। किन्तु देह माध्यम का अव्यक्त कार्य याने आपकी ''इष्ट फलप्राप्ति'' अव्यक्त होती है और वह जानने के लिये गुरूमार्ग को निष्ठा से स्वीकार किये बगैर उसकी अनुभूति नहीं होती है।

आपकी दैहिक स्थिति और उसके कारण जीवन की ढलती अवस्था से आपका जीवन अविकसित अवस्था में होता है इसलिये आपकी अधूरी इच्छायें और आकांक्षाओं से भरा हुआ अधूरा जीवन जब सद्‌गुरूचरणों में आता है तब आपके अज्ञान के बारे में श्री सदगुरू ने किसी भक्त का अनादार या तिरस्कार कतई नहीं किया है। इसके विपरीत आपके अज्ञान के कारण आपका अपमान कभी भी नहीं किया, इतना ही नहीं अपितु आपके भविष्य की पूर्ति करने के लिये साधक अवस्था में जो माध्यम है उसे आपके कार्य के लिये तैयार किया है। यह गुरू की विशाल गुरूकृपा इस जन्म में आपको बिना किसी प्रयास

के हुई है, उसको आत्मीयता से जतन कर उस कृपा के चिंतन में अपना बचा हुआ जीवन बिताना यही आपके इस जन्म की सार्थकता है। जीवन के अनेक ऐहिक विषयों की प्राप्ति के लिये हम जिंदगी भर कष्ट, मान-अपमान, मिन्नते, घूस, सच-झूठ आदि का सहारा लेते रहे हैं फिर भी इन विषयों की पर्याप्त प्राप्ति नहीं होती। इसके विपरीत आपके पास श्रद्धा, भक्ति, सबूरी, परोपकर, दूसरों का हितचिंतन, ईश्वर और धर्म आदि का अभाव होते हुये भी श्रीसद्‌गुरू कभी भी आपकी ओर पीठ न कर आपके आगमन की आतुरता से प्रतीक्षा कर आपको अपने पास बिठाने का महाभाग्य प्राप्त कराते हैं। इस प्रकार निरंतर सुख का लाभ होने के बाद ऐहिक सुख की इच्छा और वासना से स्वाभाविकता से मुंह मोड़ लेना चाहिये तभी आपको इस जन्म में गुरूप्राप्ति हुई याने निश्चित रूप से क्या हुआ इसका हर कदम पर अनुभव होगा। इस अवस्था को भक्त ने प्राप्त करने को ही ''गुरूसाक्षात्कार'' कहते हैं।

आप भक्तों का जीवन ढलने का या आपका देह माध्यम अपेक्षित सुख और शांति पाने में असमर्थ क्यों हुआ इसका विवरण उपर किया गया है। अब इस प्रकार ढले और सुख और शांति प्राप्त करने में असमर्थ हुये आपके दैहिक जीवन को वास्तव में कुदरती नियम के अनुसार आप स्वयं ही पूर्ववत् और शक्तिमान बनाकर इच्छित सुख-शांति-समाधान को सुलभता से प्राप्त करने का मार्ग परमेश्वर ने बनाया है। किन्तु इसका अनुभव या लाभ आपको तब प्राप्त होगा जब श्रद्धा और निष्ठा से आप अपना जीवन भगवान को समर्पित करेगें। इसका मतलब यह है कि परमेंश्वर की कृपा से जब आप इस संसार में जन्म लेते हैं तब पूर्वजन्म में आपका किया हुआ, धर्माचरण, पुण्यसंचितयश परोपकार और दूसरों के हित के लिये सद्‌विचार आदि का समावेश ''पुण्यकर्म'' इस संज्ञा में से होता है। यह सब पुण्य आपका जन्म होने के बाद आपके नश्वर देह के साथ अर्थात् पंचभौतिक देह के साथ एकरूप नहीं हुआ होता है। इस पुण्य के कुछ भाग की आवश्यकता जीवन असमर्थ और दुर्बल होने के बाद उसे फिर से उभारने

के लिये आपको होती है। यह परमेश्वर को ज्ञात है। इसलिये उस ईश्वर ने यह पुण्यसंचय सुरक्षित रखकर भविष्य में आपको जब इसकी जरूरत होती है, तब उसके सदुपयोग के लिये कार्यान्वित करने का स्वाभाविक कुदरती धर्म इस संसार में निर्माण किया है, नश्वर देह जिसके माध्यम से इस संसार में जन्म लेने के बाद आपको ईष्ट कर्तव्यों की पूर्ति करने का महान कर्तव्य करना है, उस नश्वर देह की कुदरती रचना कुदरत याने ईश्वर ने किस प्रकार की है? क्या इतना तक आपने कभी जानना चाहा है? आप आइने के सामने खड़े रहेंगे तो आपको जिस नश्वर देह का प्रतिबिंब दिखायी देता है उस देह में और दो देहों का भी अंतभाव होता है। इससे आप प्रायः परिचित नही हैं। इसके कारण जीवन के कर्तव्य पूर्ति के लिये कौन से कर्म आवश्यक हैं और कौन से आवश्यक सुविचार करना अपने हित में हैं यह आप नहीं जानते। आम एक फल है। आप जब उसको हाथ में लेते हो तब उसकी तीन अवस्थायें दिखायी देती है - फल का ऊपर का छिलका, अंदर की गरी और इस फल की निर्मिती जिस तत्व से हुई है वह बीज। इस फल के निर्मिती के समान ही हम मानवों की भी निर्मिती भगवान ने की है। वह इस तरह है कि जिसे हम देख पाते है वह ''नश्वर देह'' तथा उसके अंदर ''सूक्ष्म देह'' और ''कारण देह'' यह तीन अवस्थाएं एक में ही होने वाला जो माध्यम है, वह हमारा दैहिक जीवन। और इस जीवन को निरंतर सुख-शांति का लाभ होने की आपकी जो इच्छा है, उसके पूर्ति के लिये इन तीनों ही देहों का संपूर्ण विकास, योग्य मार्ग और योग्य आचार-विचार से होना आवश्यक है। यदि आपको आम खाने की इच्छा हुई तो वह इच्छा कब पूरी होगी? प्रथम अवस्था में यह फल ''कच्चे आम'' की अवस्था में होता है। दूसरी अवस्था में वह गदराया हुआ होता है और तीसरी अवस्था में वह पका आम कहलाता है। इन तीनों ही अवस्थाओं की परिपूर्ति के फलस्वरूप इस फल का पूर्ण विकास होता है। आपको जो फल सेवन की इच्छा हुई है उसके पूर्ति के लिये केवल इच्छा हुई है इसलिये यदि आप कच्चा आम खाओगे तो वह खट्टा लगता है। यद्यपि खट्टापन का अनुभव देना यह आम का मूलभूत गुण नही है,

फिर भी जो फल पूर्णतया परिपक्व नही हुआ है उसे आप केवल अपने इच्छानुसार सेवन करोगे तो आम का जो मूलभूत गुणधर्म नहीं है, उसका आपको अनुभव मिला याने खट्टा लगा तो वह दोष आपका होगा या आप स्वयं का? इसी प्रकार आपका इहजन्म यह आपके अनादि जन्मों का एक परमपवित्र फल इस रूप में भगवान ने आपकी गोद में रखा है। परंतु इस फल की संभाव्य कार्यदिशा अज्ञान के कारण न समझने से वह पवित्र फल हम अपनी गोद से निकालकर खुलेआम रखते हैं और इसमें हमारा हेतु यह है कि ''में दुःखी हूँ'' यह बात हमारे अड़ोस-पड़ोस में हमारे बराबरी के और हमारे जैसे ही जो अज्ञानी होते हैं उन्हें जाहिर हो। लेकिन क्या वे आपके दुःख में शरीक हो सकते हैं? नहीं। क्योंकि उन्होनें भी अपने जीवन का यह पवित्र फल खुलेआम रखा है। इसकी अपेक्षा जो परमपवित्र फलस्वरूप जीवन आपके हिस्से में आया है उसका ज्ञान गुरूजनों के पास जाकर, भक्तिभावना और विनम्रता से पाकर इस फल को जब आप पहचानोगे, तब आपको भगवान की अगाधलीला पर गर्व होगा और जिस वाणी से कई ऐहिक सुखों की मांग आप करते हैं उसी वाणी से आप उस सर्वव्यापी और सर्वज्ञ परमेंश्वर को कहेगें कि ''मेंरी मांग अब एक ही है कि तुम अपने चरणो में मुझे निरंतर स्थान दो''।

अब यह परम पवित्र फल याने आपका आज का यह जीवन जो आपको महत्प्रयास से प्राप्त हुआ है, उसका परिचय आप को कराने का मैं अपने ज्ञान के अनुसार और यथाशक्ति प्रयास करता हूँ। यह प्राप्त देह और उसमें समाये हुये दो देह, ऐसे तीन देह अर्थात नश्वर, सूक्ष्म और कारण - इन तीनों देहिक माध्यमों को पूर्व के अनेक जन्मों में जो कार्य अधूरा रहा है उसे पुनश्च इह जन्म में प्राप्त करना है। इसलिये जन्म प्राप्ति के बाद जो पांच ऋणानुबंध मनुष्य को सुख-शांति और समाधान आदि दिलाते हैं, उन ऋणानुबधों का कार्य यथोचित रूप से उन माध्यमों को सौंप कर भगवान ने इस देह की रचना योग्य कार्य के अनुसार की है। नश्वर देह को ''जन्म कर्म'' ऋणानुबंध, सूक्ष्म देह को ''जन्मजन्मांतर'' ऋणानुबंध और कारण देह

को ''देवादिक'' ऋणानुबंध इस प्रकार समावेश कर इन तत्वों की जानकारी होने के लिये नश्वर देह को ''बुद्धि'' माध्यम, सूक्ष्म देह को ''मन'' और कारण देह को ''चित्त'' माध्यम इस प्रकार देह रचना की है। शेष दो ऋणानुबंध ''मातृपितृ'' और ''इतरेजन'' ये नश्वर देह के बाहर चक्र रूप से अस्तित्व में है। अब हमें अपने सुख-शांति और समाधान से जीवन जीने के लिये जिन अत्यावश्यक माध्यमों की जरूरत है उन माध्यमों को ईश्वर ने आपको आस्था पूर्वक और विचारपूर्वक आपके न माँगने पर भी भेंट की है। तो फिर उस भगवान का भक्त होने में आप भक्तगणों को हीनता की भावना क्यों महसूस होती है? इसे मैं पिछले अनेक वर्षो से समझ नहीं पा रहा हूँ।

असमर्थ और ढले हुए इस जीवन को फिर से उबारना आपको आसान और स्वाभाविक हो इसलिये भगवान ने आपके पिछले जन्म के पुण्यकर्मों का कुछ हिस्सा बचा रखा है, यह ऊपर निर्दिष्ट किया है। इसका अर्थ वह पुण्य कारणदेह, अर्थात देवादिकों के माध्यम में समाविष्ट है। जब नया जन्म लेने पर और पुनश्च निश्चित रूप से ईश्वर भक्ति को स्वीकार करके वह कर्तव्यबुद्धि से निभाने का प्रयत्न आप करोगे, तब यह भक्ति देवादिको तक याने कारण देह तक पहुँच कर आपके हिस्से आयी हुई और भगवान ने आपके भावी आयुष्य की व्यवस्था करने के लिये जो धरोहर रखी है, वह इस जन्म में ढले व असमर्थ जीवन को पुनश्च चैतन्य प्राप्त कराने के लिये उपयोग में लाई जा सकती है।

इस प्रकार यह नियति और स्वाभाविक कार्य रचना कर देने के बाद भी हम उसका लाभ न लेते हुये नीरस तथा कृत्रिम मार्गो का अवलंबन कर इस पुण्य को असमर्थ जीवन को समर्थ बनाने के लिये अवसर नहीं देते। क्योंकि यह कार्य रचना स्वाभाविक रूप में प्राप्त होने के लिये आपके आचार-विचार, ईश्वर श्रद्धा, निष्ठा एवं आपकी भगवान के प्रति भक्ति निरपेक्ष और निःस्वार्थ होनी चाहिये। तभी यह पुण्य कार्यान्वित होकर तथा तीनों देह एकरूप होकर जो सामर्थ्य आप में निर्माण होगा वह इस संसार को समेट लेने के समान सामर्थ्यवान

होगा। इतना सामर्थ्य पैदा करने की क्षमता भगवान ने इस जीवन में दी है, तो फिर किसी प्रतिकूल कर्म के कारण पैदा हुई परिस्थिति को भुगतना आपके सामर्थ्य के परे थोड़े ही होगा? किन्तु जीवन के बारे में इतना गहन विचार करने के लिये कुछ देर तो लगेगी ही। इस कार्य रचना की कार्यपद्धति के अनुसार आप कार्यकेंद्र पर जब आते हैं तब आपको जो कृपाशीर्वाद दिया जाता है, वह सहायता व मदद इसलिये है कि ऊपर निर्दिष्ट तीनों ही अवस्था एकरूप कर आपका प्राप्त जीवन सामर्थ्यवान बनाना, यह काम सामान्य व्यक्ति कर नहीं सकता, इसलिए भगवान ने गुरू के रूप में अवतार धारण कर आपकी यह व्यवस्था की है। आप भक्तों की यह भावना है कि आपके पूछे हुये ऐहिक प्रश्न के संबंध में जो दुख तथा अशांति पैदा हुई है उसके निवारण के लिये यह प्रसाद है। किन्तु यह हमारी जो उपरिनिर्दिष्ट भूमिका है उससे आप आजतक परिचित नहीं हैं। एक बार सामर्थ्यवान बनने पर जिन सुखों की आप को माँग करनी पड़ती है, वे ऐहिक सुख आपके कदम चूमने लगेंगे। ऐसी गुरूकृपाशीर्वाद की महति है। यह महति गाते-गाते वेदवेदांत और अन्य धर्मशास्त्र भी थक चुके हैं।

जीवन के लिये की गई वह कार्यरचना और उस संबंध का ज्ञान प्राप्त न कर आप कृत्रिम और नीरस मार्गों के पीछे भागकर जिंदगी का भूत और भविष्य पूछते रहते हैं। आजकल समाज में जो साधक लोककल्याण कार्य का आभास पैदा करते है, उनके पास जाकर विभिन्न देवदेवताएं उपास्य तथा देवाताओं की उपासना, जपजाप, दीक्षा, अनुग्रह आदि लेकर आपके जीवन के लिये जो पोषक नहीं है, उसका अनुभव पाने के लिये समय बरबाद करते हैं, और इस कारण आपके देह परिसर में अशुद्ध चक्रों का निर्माण होता है। ये चक्र आपके देह को स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि इन चक्रों का निर्माण कृत्रिम अवस्था से हुआ होता है। जो चक्र स्वाभाविक रूप में और सजीव है केवल वही आपका देह धारण कर सकते हैं। इस प्रकार की अकारण मुश्किल समस्याएं जो कृपाशीर्वाद के लिये पोषक नहीं हैं, पैदा कर जब आप मार्गदर्शन के लिये आते हैं, तब आपको दिये हुये कृपाशीर्वाद की

अवस्था को, जो चक्र, आपके देह परिसर में होना पोषक नहीं है, उनका विमोचन प्रथमत: करना पड़ता है इसलिये आपकी जो इच्छायें और अपेक्षायें सुख शांति के लिये तीव्रतर होती हैं उनकी प्राप्ति में विलंब होता है। यह ठीक तरीके से जानकर भक्तभाविको ने मार्गदर्शन के लिये आने के बाद दिये गये प्रसाद की अवहेलना न कर, या दिये गये समय में काम न होने से उसकी पूछताछ न कर, जो श्रीफल आशीर्वाद के रूप में दिया गया है वह नित्य पूजा में रख कर उसकी भक्तिभावना से पूजा करने पर इस कार्य का सद्‌हेतु मानव कल्याण के लिये कितना गहरा, तात्विक, अनुभवसिद्ध तथा सिद्धसिद्धांत पद्धति पर आधारित है, इसकी अनुभूति होगी। इसके विपरीत आप सुख-शांति, दु:ख तथा अशांति का अन्वयार्थ न जानने से देह के विकसित अवस्था को प्राप्त करने का अवसर न देनेवाले आचार और विचार यही जीवन है ऐसा निर्णय करते हैं। अर्थात मानव जीवन के मार्गदर्शन के लिये भगवान के द्वारा निर्माण किये हुए जिन-जिन शास्त्रों को हम सुनते हैं और अनुभव लेने का प्रयास करते हैं, उन मूल शास्त्रों की भूमिका मानव जीवन के कल्याण के लिये क्या है ''इसका ज्ञान न होने से मानव ने ज्योतिषशास्त्रों से लेकर परमाणुशास्त्रों तक सभी शास्त्रों का दुरूपयोग किया है"। उदाहरण के लिये ज्योतिषशास्त्र लीजिये। ज्योतिषशास्त्र मार्गदर्शन के लिये है। किन्तु इस शास्त्र का उपयोग ''भविष्य में क्या होगा'' यह विवरण पूछने के लिये होता है। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य को अपना भविष्य बनाना होता है। किन्तु ऐसा नहीं होता है। भविष्य में आने वाली अड़चनें व संकटों की जानकारी करा देने के लिये और इनसे आपका बचाव किस तरीके से हो सकता है इसकी पूर्व सूचना प्राप्त कराने के लिये और उन अड़चनों और संकटों के साथ मुकाबला करने के लिये आपको पूर्व तैयारी किस प्रकार करनी है, इसको जानना यह भविष्य शास्त्र का मुख्य उद्‌देश्य है। लेकिन आजकल जो ज्येतिषशास्त्र के ज्ञानी हैं वे जरूरतमंद आदमी को गलत दिशा की ओर मार्गदर्शन करते हैं। उसके कारण जीवन में जो सुख, संपत्ति प्राप्त हुई है उसका नाश होकर, उसकी पुनश्च प्राप्ति के लिये इस शास्त्र का उपयोग रेस सटटा, शेयर बाजार,

जुआँ आदि के लिये इस शास्त्र का उपयोग कर तथा लक्ष्मी का गलत इस्तेमाल कर उस लक्ष्मी के कृपाशीर्वाद के लिये आप अपात्र बनते हैं। वास्तव में जो व्यक्ति जीवन कष्ट से उपार्जित करता है और प्रामाणिकता से लक्ष्मी प्राप्त करता है साथ ही रात-दिन कर्त्तव्य करता है उस व्यक्ति के साथ रहने के लिये लक्ष्मी हमेशा तैयार रहती है। लेकिन अपने भाग्यानुसार जो मिला है उससे अधिक भाग्यवान होने का मार्ग आदमी अपनाता है। किन्तु यह बात मनुष्य के बस में नहीं है। आपको भाग्यवान बनाने की उदार भूमिका केवल लक्ष्मी की ही होती है। इस लक्ष्मी का गलत उपयोग करने से आप ऋणी बनकर स्वयं के लिये शारीरिक और मानसिक दुःख अज्ञानवश पैदा करते हैं। शारीरिक दुःख मिटाने के लिये जुआँ सट्टा आदि मार्गों को आप अपनाते हैं तथा अपनाने पर मनः शांति प्राप्त करने का आसान मार्ग याने हर रोज सुबह-शाम कम से कम पंद्रह मिनट तक ईश्वर चिंतन में बिताना, इसकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है। इसके विपरीत आप लोग व्यसनों का शमन करने के लिये शाम होने के समय का आतुरता से इन्तजार करते रहते हैं। इसका अर्थ स्पष्ट है कि अपने स्वयं में तथा परिवार में अशांति होने का कारण पैसों का अभाव न होकर ऊपर दर्शाये गये दुर्गुणों का परिणाम है। लेकिन ऐसे समय में आपके घर के लोगों के साथ सुख और दुःख का विचार न कर शाम को आप अपने दोस्तों के साथ क्लब में जाकर ताश और वह भी मन बहलाने के लिये नहीं तो पैसे लगाकर खेलते हैं। इसके उपरान्त आपकी ढली हुई मनः शान्ति को पुनः प्राप्त करने के लिये भगवान के चिंतन का जो सुलभ मार्ग है, उसे छोड़कर ऐसे व्यक्ति मद्यपान, धूम्रपान और मादक पदार्थों का सेवन करते हैं। इतना ही नही ऐसे व्यक्तियों के अन्य परिवारजन जो गुरू मार्ग की ओर मार्गदर्शन के लिए आना चाहते हैं उनके लिए एक नयी समस्या खड़ी हो जाती है पारिवारिक जिम्मेदारी वास्तव में पति को निभानी होती है वह अपने सारे आचार और विचार को काबू में रखने में असमर्थ होने से उसे पत्नी पर डालकर अपना पीछा छुड़ा लेते है। नतीजा यह होता है कि जिस अपयश, दुःख और अशांति के लिये आप स्वयं जिम्मेदार हैं उसका ख्याल न कर, अपनी

धर्मपत्नी, जिसके साथ आपने धर्मशास्त्र के अनुसार शादी की है, उसकी वजह से हम भिखारी बने हैं, इस प्रकार का सुख संवाद सुबह से शाम तक ऐसे व्यक्ति के परिवार में होता रहता है। और इस प्रकार के दु:ख और अशांति के कारणों को आस्थापूर्वक तथा सुविचार से ध्यान में न लेते हुये शाम को आपके पैर आपको पुन: इसी प्रकार के अपयश के द्वार तक ले जाते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को ऐसे अन्य व्यक्तियों के साथ स्नेह और मित्रता करनी चाहिये जो उसे पोषक हो और उसका दुर्व्यवहार सुधारकर उसे पुनश्च उसके मानव जन्म के शुद्ध, सात्विक और मौलिक जीवन की ओर ले जाये।

इस प्रकार ज्ञान और अज्ञानवश जो दोष निर्माण होते हैं उनके दुष्ट परिणामों का मानव को जब अनुभव होता है तब इन दुष्कृत्यों से मुक्त होने की सद्भावना से, अपने धर्म के अनुसार प्रायश्चित आदि विधि करने के लिये वे गुरूजनों के पास जाकर प्रायश्चित आदि विधि कराते हैं। इस प्रायश्चित विधि में होमहवन, अन्नदान, वस्त्रदान, द्रव्यदान इत्यादि का अंतर्भाव होता है। किन्तु यह विधि करते समय जैसे हम मानवों के हाथों से यह दुष्कृत अनजाने में होते हैं, उसी तरह यह प्रायश्चित भी अनजाने में लेना चाहिये। इन प्रायश्चित विधि कराने वाले गुरूजन जो विधि या पवित्र मंत्रों का उच्चारण करने के लिये आप से कहते हैं, उस समय आपका मन इन पवित्र मंत्रों और इष्टविधि के साथ एकाग्र होना चाहिये। केवल किये गये दुष्कृत्य के लिये आपको मन:ताप हो रहा है इसलिये यह दैहिक विधि करने से उनका फल नहीं मिलेगा। इस संसार के हर धर्म में किये गये दृष्कृत्यों या पाप विमोचन के लिये जो प्रायश्चित दिया जाता है या लिया जाता है, यह विधि शास्त्रशुद्ध तरीके से समझ लेनी चाहिये, क्योंकि शास्त्र के अनुसार प्रायश्चित करवाना इतना ही अधिकार धर्म के अनुसार गुरूजनों का है। पाप मुक्त करने का अधिकार उनका नहीं है, वह केवल ईश्वर का है। प्रायश्चित लेने के लिये इष्ट और अनिष्ट कर्तव्य जिस व्यक्ति

के हाथों हुये हैं उसे ये विधि आस्थापूर्वक भावी जीवन में आचार और विचार में लाने का कर्तव्य निभाना चाहिये।

प्रायश्चित जिदंगी में एक ही बार किया जा सकता है। किन्तु जिस धर्म में हम जन्म लेते हैं, उस धर्म में जो प्रायश्चित बताये गये हैं, उसका अर्थ हम अपने स्वार्थ के अनुसार ऐसा करते हैं कि हमेशा दुष्कृत्यों और दुष्कर्मों को करते रहिये और बारबार उनके लिये प्रायश्चित करते रहिये। इस प्रकार आपने अनेक प्रायश्चित किये तो भी आपको किसी दुष्कृत्य से दोष मुक्ति नहीं मिलेगी। यह दुष्कृत्य या तो भावी जन्म में आपके हिस्से में आयेंगे, या कर्म के अनुसार इसका दुःख आपके भावी पीढ़ियों को भुगतना पड़ेगा। प्रायश्चित करने का सरल और सुगम मार्ग तो यही है कि धर्मशास्त्र द्वारा बताये गये प्रायश्चित विधि को करने के बजाये हमारे काया-वाचा-मन में ओतप्रोत भरी हुई जिन दुष्ट प्रवृत्तियों के कारण हम दुष्कृत्य करने के लिये प्रवृत्त हुए और जिन्हें हम अपने सदविवेक बुद्धि से दूर नहीं कर सके हमारी इस असमर्थता के लिये हमें भगवान के सामने बैठकर प्रार्थनापूर्वक प्रायश्चित करना चाहिये और ज्ञान-अज्ञानवश जो दुष्कृत्य हमारे हाथों हुए उनके लिये दुःख व्यक्त कर अपना काया-वाचा-मन शुद्ध करना चाहिये। ऐसा करने पर जब गुरूजन धर्मशास्त्रों के अनुसार आपको प्रायश्चित विधि बतायेंगे तब यह कृपाशीर्वाद पाने के लिये आपकी काया, आपका मन और आपकी वाचा आपके जन्म के समय जितने शुद्ध थे, उतनी ही शुद्धता उनमें निर्माण कर आप प्रायश्चित करेंगे तो ही जिस धर्म में आपने जन्म लिया है और जिस धर्म ने आपके उद्धार के लिये शास्त्र की निर्मिती की वह शास्त्र कितना शक्तिमान है इसका आप अनुभव करेंगे। इसका लाभ आपको इसी जन्म में अनुभूत होगा, इतना ही नहीं अपितु भविष्य में अपने अनेक जन्म और अपनी पीढ़ियों के उद्धार का मार्ग आप आसान करेंगे।

मार्गदर्शन के लिये आनेवाले भक्त भाविकों का यह प्रश्न होता है कि कष्टार्जित पैसा पूरा नहीं होता है इसलिये हमेंशा जीवन में खींचतान होती रहती है और उसके कारण बिना किसी वजह पारिवारिक

जीवन में अशांति पैदा होती है। वास्तव में इस प्रश्न का हल पूछने से पहले यह स्थिति पैदा होने के लिये क्या कारण है और उस स्थिति के लिये कौन जिम्मेदार है इसका कोई भी भक्त विचार नहीं करता। इस संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक मनुष्य जब ईश्वर कृपा से इस संसार में आता है, उससे पहले ही भगवान ने उसके अन्न, वस्त्र, मकान, देवधर्म, दानधर्म और परोपकार का इंतजाम, दो पीढ़ियों के लिये किया हुआ होता है, फिर आप भक्तों को आपके सांप्रत पीढ़ी में ही पारिवारिक कर्तव्यों का आधा हिस्सा भी पूरा करने में कमी क्यों महसूस होती है। आज आपके आसपास की दुनिया अपना रूप हर क्षण बदलती रहती है किन्तु इस बदलते रूप के अनुसार अपने जीवन की भूमिका निश्चित न करने से, बार-बार यह सुनने को मिलता है, ''इस बढ़ती महंगाई का बकासुर कब नष्ट होगा"? लेकिन आज की यह स्थिति जिसे हम अपने पारिवारिक जीवन से लेकर राष्ट्र के जीवन तक देख रहे हैं, उसके लिये हम सब ही जिम्मेदार हैं, इसे प्रामाणिकता से कोई भी कबूल नहीं करता है। आज की सामाजिक स्थिति और पिछले जमाने की सामाजिक स्थिति का सिंहावलोकन करने से यह अनुभव होता है कि पहले संगठित रूप से या संयुक्त पारिवारिक पद्धति से लोग रहते थे तो भी लोग सुख और समाधान से अपने कर्तव्य को निभाते थे और भावी पीढ़ियों के लिये, घरबार, जमीन और अलंकार आदि की व्यवस्था कर सकते थे। यहॉ सूज्ञ भक्तगण यह पूछेंगे कि ''उस समय समृद्धि थी और आज महंगाई का जमाना है, इसकी वजह से हम लोगों को आज की स्थिति का मुकाबला करना मुश्किल हो रहा है'' किन्तु इसका जवाब यह है कि बढ़ती महंगाई के साथ हमारी आय भी पहले की अपेक्षा बढ़ी है। याने बढ़ती हुई महंगाई का निमित्त कर, जीवनपोषण के लिये जो भूमिका सुविचार से निश्चित करनी चाहिये उसे न कर, उसका दोष हम बढ़ती हुई महंगाई को दे रहे हैं। दूसरा प्रश्न यह है कि, ''जब ईश्वर ने हमें दो पीढ़ियों का इन्तजाम कर के जन्म दिया है, तब जो प्राप्ति है उसमें आज की पीढ़ी का भी निर्वाह नहीं हो रहा है, इसके लिये कौन जिम्मेदार है"? पहले जैसी संयुक्त परिवार की पद्धति अब नहीं रही है। हर परिवार

का व्यक्ति प्रौढ़ता प्राप्त करने पर स्वतंत्र रूप से रहना चाहता है। ऐसी स्थिति में पारिवारिक जीवन में अन्य व्यक्तियों की जिम्मेंदारी पहले की अपेक्षा कम है। इसलिये आवश्यक समस्याओं का पूरा समाधान न होने का जो कारण है : याने जीवन सुख-शांति और समाधान से बिताना इस भूमिका की नीव हमारे पास नहीं है। भगवान ने आपके अन्न, वस्त्र, मकान, देवधर्म, दानधर्म और परोपकार आदि का इन्तजाम कर रखा है, उसमें से देवधर्म, दानधर्म, परोपकार यह जीवन के आद्य कर्तव्यों के लिये साल में अपनी आय से थोड़ा भी पैसा खर्च नहीं हो पा रहा है। जीवन में मनुष्य के लिये प्रधान जरूरत अन्न है, यह सब जानते हैं। वह आज प्रत्येक व्यक्ति अपनी जरूरत के अनुसार निभाता है। किन्तु आपके जीवन में वस्त्र और मकान पर आवश्यकता से अधिक खर्च हो रहा है। साल में कितना खर्च किया जाना चाहिये : यह सवाल आपको पूछने पर, यह महसूस होगा कि, दुनिया में बदलते फैशन के कारण विविध प्रकार के वस्त्रों को खरीदने का अनावश्यक मोह आपको हो जाता है और घर में इनको रखने के लिये अलमारियाँ भी कम पड़ती जा रही हैं। इस प्रकार साल में वस्त्रों पर अनावश्यक खर्च कर, उनको रखने के लिये अलमारियों की संख्या घर में बढ़ती जा रही है। रहने के लिये अपनी आमदनी के अनुसार आप जगह खरीदते हैं, उसका उपयोग परिवारजनों के उठने बैठने के लिये न होकर, वह आधुनिक फैशन के वस्त्रों से भरी अलमारियों का प्रदर्शन समा लेती है। जरूरत से ज्यादा सामान और अनेक अलमारियां घर में दाखिल हुये हैं और वह भी कभी-कभार आने वाले मेहमानों के दिखावे के लिये कि अपना जीवन हम बड़े ही ऐशोआराम से बिता रहे हैं। इस मुश्किल को दूर करने के लिये पुनः इच्छा होती है कि और बड़ी जगह रहने के लिये ली जाये। समझ लो, भगवान की कृपा से ऐसी जगह आपको प्राप्त हुई भी तो भी बड़ी जगह में भी अनावश्यक वस्तुओं का विस्तार जारी रहेगा क्योंकि आपके आसपास की दुनियाँ बदलते हुये फैशन को देखकर नयी-नयी कलाकृतियाँ पैदा कर रही है। इनको देखकर आपका मोह इतना बढ़ता है कि, जो पुरानी चीजें हैं जिनका जतन करना आपका निजी कर्तव्य है, उसको ध्यान में न

रखकर, बाजार में हर रोज आने वाली नयी-नयी चीजों का ग्राहक बनकर कष्टार्जित धन अनावश्यक चीजों पर खर्च करने से भावी पीढ़ियों के लालनपालन तथा विद्यार्जन की अवहेलना होती है और आपकी वासना-इच्छा नयी दुनिया की ओर दौड़ती रहती है। इसमें भगवान का दोष नहीं है। उसने जो इन्तजाम कर रखा है वह आपकी आवश्यकतानुसार है। इसलिये यदि आप अपने जीवन की भूमिका निश्चित करेंगे, और वह भी ऐसी की जिसमें किसी का अनुकरण न हो, किसी से जीवन प्रतिस्पर्धा न हो, तथा आपके क्षमता के अनुसार जो आपको प्राप्त हुआ हो उसमें ही सुख और समाधान मानकर आप अपना जीवन व्यतीत करेंगे तभी ईश्वर ने आपकी दो पीढ़ियों के लिये इन्तजाम किया है या नहीं, इसका आप अनुभव करेंगे।

खानदान का कुलधर्म

आप भक्तगण अपनी जिंदगी में आनेवाली अड़चनों के निवारण के लिये इस कार्य का लाभ उठाने के लिये जब आते हैं, तब प्रथमत: आप से प्रश्न पूछा जाता है कि आपके खानदान के कुलदेवता कौन से हैं? और आपने किस देवता की उपासना स्वीकार की है तथा उन देवताओं के कृपाशीर्वाद को प्राप्त करने के लिये आप कुलधर्म, कुलाचार और कुलोपासना के लिये क्या करते हैं? उस समय आप अज्ञानवश उन देवदेवताओं के कृपाशीर्वाद पाने के लिये जो सेवा करते हैं उसका निवेदन करते हैं। यह सुनने के बाद आश्चर्य होता है कि आपके जो कुलदेवता हैं उनकी सेवा याने कुलधर्म और कुलाचार शास्त्र के अनुसार कैसे करनी चाहिये, इसका शास्त्र ऋषिजनों ने जो देव और देवताओं के युग में बनाया, उस शास्त्र के अनुसार आपकी यह सेवा न होकर केवल खानदान में देवदेवताओं का कृपाशीर्वाद पाने के लिये ये सेवाएं बताई गयी हैं इसलिये इस सेवार्थ रूढ़ी परंपराओं के अनुसार आप आज तक यह सेवा कार्य करते आ रहे हैं। वास्तव में देवदेवताओं के युग में ऋषिजनों द्वारा बताई गयी पद्धति अर्थात् कुलधर्म-कुलाचार शास्त्र के अनुसार यदि आप करेंगे तो आपके खानदान की भावी पीढ़ियों को अनंतकाल तक सुख मिलेगा। आज संसार में हरेक कार्य यंत्रणा शास्त्रशुद्ध पद्धति से किये बगैर उस शास्त्र में स्थित जो मूल गुणधर्म होता है, उसकी अनुभूति नहीं होती है। उसी प्रकार आपके इष्ट कुलदेवदेवताओं का कुलधर्म, कुलाचार और कुलोपासना आप शास्त्र के अनुसार नहीं करते हैं, उसकी वजह से शक्ति और उसकी आप सेवा करते हैं, इसलिये आपको शक्तिमान बनाना यह इन देवताओं का स्वाभाविक गुणधर्म होते हुये भी दीर्घकाल तक इन देवताओं की सेवा के उपरान्त भी आपको हमारे इस कार्य की ओर मार्गदर्शन के लिये आना पड़ा।

एक जमाने में यह सृष्टि जंगली अवस्था में जीती थी। उस समय उस जंगली अवस्था में रहने वाले मानव को जीवन व्यतीत करने

का मूलभूत शास्त्र अवगत नहीं था उसको उसका ज्ञान तक नहीं था। उस काल में उनका ''धर्म क्या है'' ''कर्म क्या है'' और ''ईश्वर क्या है'' आदि के कर्तव्यों की पहचान भी नहीं थी। केवल देहधर्म और उसके अनुसार देह को अनूभूत होने वाली हर प्रकार की भूख, इच्छा या वासना इनकी पूर्ति कर जीवन व्यतीत करना, इतना ही जीवन का अर्थ वे मानते थे। इस प्रकार इस सृष्टि की पवित्रता का क्षय होने से, सृष्टि निर्माण का भगवान का सद्हेतु जब अविकसित रहा, तब भगवान ने स्वर्गलोक से ऋषिजनों को इस भूमि पर भेजकर, वेदवेदांत विद्यानुसार यज्ञयाग, जपजाप आदि साधनों का इस्तेमाल कर इस भूमि को योग्य पवित्रता की प्राप्ति करा दी। यह भूमि योग्य रूप से पवित्र होने के बाद ऋषिजनों ने अलग-अलग जगहों पर अपने गुरूकुलों की स्थापना कर, और लोगो को विद्या देकर, उनको सज्ञान करने का महान प्रयत्न किया। यह दुःख की बात है कि जब आपको आपका गोत्र पूछा जाता है तब आप गोत्र का भी ठीक से उच्चारण नहीं कर पाते। वस्तुतः अनादि काल में जब हम सब लोग जंगली अवस्था में थे तब उस अवस्था से ज्ञानी अवस्था प्राप्त करने के लिये जिस गुरूकुल का लाभ उठाया गया था और उसके फलस्वरूप आज हम आधुनिक मानव के रूप में जी रहे हैं। उस काल में दैहिक अवस्था में प्रथमतः जो ''श्री'' ऋषिजनो द्वारा लिखा था, जिसके कारण आज हम शास्त्रों की प्रगति चंद्रमा पर पहुंचने में सफल हो सके हैं। उन ऋषिजनों के उस काल में किये गये इन उपकारों का ऋण हम अनेक जन्मों तक उतार नहीं सकेंगे। इसलिये कम से कम जिस गुरूकुल से हम ज्ञानी हुये, उसका स्मरण करने के लिये अपने गोत्र का नित्य उच्चारण करना हमारा कर्त्तव्य है। गोत्रनाम का उच्चारण का यह उद्देश्य है। इस कार्यपद्धति का इस्तेमाल कर, जब जंगली अवस्था में रहनेवाले हम मानवों को प्राप्त हुये इस जन्म के बारे में ज्ञान प्राप्त हुआ, उस समय इन ऋषिजनों ने जीवन कृतार्थ करने के लिये ब्रहमा, विष्णु और महेश इन त्रिगुणात्मक शक्ति को देवदेवता और उपास्य देवता के रूप में इहलोक में अवतार धारण करने की प्रार्थना की। उन ऋषिजनो की प्रार्थना को सुनकर ब्रहमा, विष्णु और

महेश याने उत्पत्ति, स्थिति और लय इन त्रिगुणात्मक एवं महान् शक्तियो ने इस भूमि पर आकर, इस विश्व रचना में तीन अवस्थाये धारण कर ऋषियों का इष्टफलकार्य अंगीकृत किया। इहलोक के लिये ''देवता'' स्थापित हुए, परलोक के लिये ''देव'' अधिष्ठित हुए और स्वर्गलोक के लिये ''उपास्य देवता'' वास करने लगे।

इस तरह की कार्यरचना होकर और ऋषिजनों के प्रार्थना को प्रतिसाद देकर जब इस त्रिगुणात्मक शक्ति ने इस संसार के कल्याण कार्य करने शुरू कर दिये तब इस इहलोक में विद्या, संपत्ति और संतति की अत्यंत जरूरत होती है इसलिये वह त्रिगुणात्मक शक्ति ''श्री महाकाली'', ''श्री महालक्ष्मी'' और ''श्री महासरस्वति'' नाम से उदित हुई। प्राप्त विद्या, संपत्ति और संतति का सुख समाधान और शांति का खानदान में और परिवार में चिरकाल वास रखने का कार्य ''देवों'' को सौंपा गया। खानदान की और कुल की भौतिक स्थिति सुधारने के लिये हरेक व्यक्ति विद्या, संपत्ति और संतति प्राप्त करने के लिये अहर्निश प्रयत्न करता रहता है, उसको योग्य कृपाशीर्वाद देकर वह प्राप्त करने का सामर्थ्य उसको प्राप्त हो, इसलिये इन देवताओं को कुलस्वामिनी कहने की प्रथा शुरू हो गयी। प्राप्त हुये यश को निरंतर सुख, शांति, समाधान का लाभ मिलने के लिये यथोचित सहायता की जरूरत है, इसलिये यह कार्य देवों पर सौंपा गया और इन देवों को ''कुलस्वामी'' का नामाभिधान प्राप्त हुआ है।

जब हम किसी दु:खदर्द से व्याकुल होते हैं, तब अनजाने में हमारे मुंह से ''माँ'' शब्द निकलता है। क्या इसके बारे में आपने कभी सोचा है? यह पुकार जो हम ''माँ'' कहकर पुकारते हैं, वह पुकार आपको जन्म देने वाली माँ के लिये नहीं किन्तु वह आपके कुलस्वामिनी के प्रति होती है। कारण यद्यपि आप इस देवता को भक्तिभाव से न मानते हो, उसकी आराधना, सेवा, योग्य, प्रकार से नहीं करते हो, फिर भी ऋषिजनों के जमाने में ऋषिजनों ने उसको हम मानवों के कल्याण के लिये ''कुलस्वामिनी'' कहा हैं। उन ऋषिजनों द्वारा की गयी प्रार्थना का पालन आज के युगतक ये देव देवतायें

करती आ रही हैं। अब ऐसी कुलदेवदेवता कि जो हम मानवों को देवयुग से लेकर आजतक भी भूले नहीं हैं, उनको पश्चिमी संस्कृति और आचार विचारों की चादर में लिपटा लेने वाले हम लोग यद्यपि कुलदेवदेवताओ को भूल गये हैं, तथापि इन देवदेवताओं का कार्य, निरन्तर चलता रहेगा और वह संसार के अंत तक चलते रहेंगे। उनका यह कार्य बदलते हुये जमाने के साथ बदलनेवाला नहीं है, और न ही किसी की इच्छानुसार वह बदलने वाला है, यह आप ज्ञानी भक्तों को भली भाँति ध्यान में रखना चाहिये।

हमारे जीवन में जब अनपेक्षित और अद्‌भुत् घटना होती है तब हम अनजाने में ''हे भगवान् कहके भगवान को पुकारते हैं''। यह भी आप में भगवान का वास होने का साक्षी है। इसका अर्थ यह है कि जब देवदेवताएं भिन्न-भिन्न अवसरो पर वे आप में निहित होने की साक्ष देते हैं तब ''मैं भगवान को नहीं मानता'' यह कहना क्या शोभा देता है? यदि आपने अज्ञानवश उनके अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया है फिर भी उन देवदेवताओं ने आपका अनादर कभी भी और किसी कारणवश नहीं किया है। इसके विपरीत समय-समय पर जब आप बीमारी से जर्जर है, संकटग्रस्त है, तब उससे उबारने का महान् कार्य उन्होंने किया है। यह जानकर उनके कुलधर्म, कुलाचार, कुलोपासना के रूप में जो सेवा करनी चाहिए वह कितनी आस्था से आपको करनी चाहिये यह सवाल आप भक्तगणों को अपने आपसे करना चाहिये। आजतक समाज में अनेक परिवार और व्यक्ति अपने घराने की कुलदेवताओं के कुलधर्म-कुलाचार पीढ़ियों से करते आये हैं। ऐसे व्यक्ति निराकरण के लिये केंद्र पर आते हैं तब यह सवाल पूछते हैं कि हमारे परिवार के जो कुलदेवता हैं, उनके लिये हम लोगों ने और हमारे पूर्वजों ने इन देवताओं की अन्तःकरण पूर्वक सेवा की है फिर भी हमारे मार्ग में बाधायें क्यों आती है? किन्तु इसका जवाब शास्त्रीय तरीके से न समझने से और अपेक्षित फलप्राप्ति नही होने से, ये देवदेवता यद्यपि पीढ़ियों से परिवार के कुलदेवता है, फिर भी इनकी आराधना उचित मार्ग से और योग्य रूप से करने की ओर से बहुजन समाज का ध्यान हटता गया है। साधारणतः जो घराने के कुलदेवता

हैं उनकी पूजा-अर्चा परिवार का एक प्रमुख व्यक्ति करता है। जो देवता पूजा में होते है, वे प्रतीकात्मक होती है, और यद्यपि वह सगुण अवस्था में दिखायी देती है, फिर भी उनकी कृपा जब हमारे ऊपर होती है वह निराकार स्वरूप आशीर्वाद के आस्थित की हमें अनुभूति नहीं होती। इसका कारण यह है कि हम लोगों में 'लय' तत्व की कमी होने से जो आशीर्वाद निराकार है उसके अस्तित्व की हमें जानकारी नहीं होती। पूजा आदि विधि करने वाले व्यक्ति को उसमें लय तत्व की कमी है उसकी देवदेवताओं के कृपाशीर्वाद से पूर्ति करनी होती है। लेकिन इस की जानकारी उसे न होने से यद्यपि देवदेवताओं ने परिवार कल्याण के लिये कृपार्शीवाद दिया होता है फिर भी पूजा विधि करने वाले व्यक्ति का माध्यम कृपाशीर्वाद धारण करने योग्य जब तक नही होता, तब तक प्राप्त हुये कृपाशीर्वाद का परिवार कल्याण के लिये आयोजन और उसे परिवारजनों को दिलाने में दिक्कते आती हैं।

ऐसे समय आप भक्तजनों द्वारा यह पूछने की संभावना है कि हमारे पास परिवार के कल्याण के लिये लय तत्व की कमी है, यह हम किस तरह जान सकते हैं? तो यह अनुमान लगाने का तरीका आसान है। मान लीजिये कि अपने इष्ट कुलदेवता के सेवा के पक्ष में आप कोई स्त्रोत पढ़ने के लिये या जाप करने के लिये भगवान के सामने बैठते हैं और वह पूरा करने के लिये आधा घंटा लगता हो। अब इस आधे घंटे की सेवा में यद्यपि काया और वाचा, सेवा में समायी हुई होगी, फिर भी जब मन की एकाग्रता उस जाप करने या स्तोत्र पढ़ने में नहीं होती है तो निश्चित रूप से आपके देहिक माध्यम में लय तत्व की कमी है यह समझना चाहिये।

ऐसे व्यक्ति मार्गदर्शन के लिये जब आते हैं तब केंद्र के नियुक्त सेवक उनको कुलदेवता के पूजन के लिये श्रीफल देकर उनको पांच या ग्यारह सप्ताह के पूजन के लिये निराकरण बताते हैं। ऐसे वक्त प्रश्नार्थी व्यक्ति सेवकों को यह सूचित करते हैं कि, हमारे कुलदेवता के लिये हमारे खानदान में याथायोग्य तरीके से कुलधर्म और कुलाचार

हो रहे हैं तो पुनश्च देवदेवताओं के प्रतीक के रूप में श्रीफल के पूजन का क्या उद्देश्य है? तो इसका यह उद्देश्य है कि यद्यपि आपने अपने इष्टदेवताओं के लिये कुलधर्म, कुलाचार कर कृपाशीर्वाद प्राप्त किया है, फिर भी इष्टदेवताओं के द्वारा दिया हुआ कृपाशीर्वाद निराकार होने की वजह से, आपका देहिक माध्यक उसे धारण करने में समर्थ नहीं है। आप भक्तों ने जिस कुलदेवता की आराधना, कुलधर्म और कुलाचार किया है उस वलय का अस्तित्व आप रहते हैं उसी वास्तू में होता है। अतः कृपाशीर्वाद के प्रतीक के रूप में आपका दिया हुआ श्रीफल से आपके हाथों हुई सेवा फलशुप होने के लिये मध्यस्थ का कार्य करता है। यह एक महत्वपूर्ण जानकारी आपको होनी चाहिये। दिये गये श्रीफल का महत्व आपके कुलदेवता के समान मानकर आपको जिस प्रकार मार्गदर्शन किया है उसी प्रकार उसकी पूजा और अर्चना होनी चाहिये। तभी आपने जो सेवा आपने इष्ट कुलदेवताओं के लिये की है उसका अपव्यय नहीं हुआ है और वह कृपाशीर्वाद साकार करने का महत्कार्य इस श्रीफल द्वारा हो रहा है यह आपको ज्ञात होगा।

देव-देवताओं ने कृपाशीर्वाद देने पर भी जो लोग आज दुःखी हैं, इसका एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह है कि कीर्तन, पुराण या अन्य धार्मिक ग्रंथों के वाचन से कई व्यक्तियों के मन में ऐसी भावना निर्माण होती है कि देवदेवताओं की सेवा तथा आराधना कर, अपने हाथों हुई इस सेवा द्वारा हमें मोक्ष प्राप्त हो। उनका यह सद्हेतु जो इस प्राप्त जन्म के बारे में होता है। इस उद्देश्य से अन्य लोग अनभिज्ञ होने से, यह व्यक्ति वर्षो तक सेवारत रहने के बावजूद उसका फल परिवार को प्राप्त नहीं होता। मुक्ति और मोक्ष प्राप्ति के लिये इस व्यक्ति ने यदि सेवा को स्वीकार किया हो तो उस व्यक्ति ने अज्ञानवश वह सेवा व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये की है ऐसा सिद्ध होता है। इसलिये वर्षो तक इस सेवा को स्वीकार करने पर भी उस सेवा का फल परिवार में आनेवाली मुश्किलों के निवारण के लिये नहीं होता है। वास्तव में शास्त्रशुद्ध पद्धति के अनुसार वर्षो तक देवदेवताओं की सेवा या आराधना करने से मुक्ति या मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि

इस व्यक्ति को प्राप्त जन्म के जो इष्टकर्तव्य होते हैं, उनकी पूर्ति करने पर इस कर्तव्य पूर्ति के कारण प्राप्त जन्म और भावी जन्म जो कर्मानुसार होते हैं ऐसे कर्मों का क्षय होता है। ऐसे कर्मक्षय के कारण मुक्ति या मोक्ष स्वाभविकता से प्राप्त होना यह सहजधर्म है। इसलिये यदि आप कर रहे सेवा के प्रति नि:स्वार्थ होंगे तो इस सेवा का लाभ आपके परिवार के अन्य लोगों को होने में किसी भी प्रकार की अड़चन निर्माण नहीं होगी।

इसी विषय के हित संबंध में तीसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि जिन इष्टदेवताओं की पूजा के लिये सगुण और साकार अवस्था में प्राणप्रतिष्ठा की जाती है और वह देव देवताएं जो कृपाशीर्वाद देते हैं वह निराकार अवस्था में होने से जो व्यक्ति पूजा-अर्चना आदि विधि करती हैं, उस व्यक्ति के देहिक माध्यम के आसपास यह कृपाशीर्वाद का वलय हित संबंधित होता है। जब यह व्यक्ति परलोक सिधारता है तब यह कृपावलय जो निराकर रूप में होता है वह नियति में विलीन होता है। निराकरण के लिये आने पर यद्यपि आप कहते हैं कि गत कई पीढ़ियों से यह सेवा धर्म आपके खानदान से चला आ रहा है फिर भी जो अवस्था निराकार स्वरूप में होती है उसको पुनश्च परिवार के कल्याणार्थ साकार करने का कार्य गुरू माध्यम के अलावा अन्य कोई नहीं कर सकता। यद्यपि देवदेवता हम लोगों को कृपाशीर्वाद प्रदान करते हैं फिर भी हम लोग उसे स्वार्थ या अज्ञान से गंवा कर बैठते हैं। उस कृपाशीर्वाद को पुनश्च साकार करने का कार्य देवदेवता नहीं करते, यह कार्य गुरू सामर्थ्य से ही होता है। इस शास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार आप भक्तगण जब मार्गदर्शन के लिये आये थे, उस समय आपको प्रथमत: जो उपासना दीक्षा दी गई उसका उद्देश्य यही था कि आपके खानदान के दिवंगत व्यक्तियों ने आजतक अपने खानदान के इष्ट देवताओं की मनोभाव से जो आराधना की और जो कृपाशीर्वाद प्राप्त होने पर भी वह साकार नहीं कर सके, वह अनेक पीढ़ियों की धरोहर आप भक्तों के कल्याण और सुरक्षा के लिये सुनियोजित हो यह प्रधान हेतु से ही श्री गुरू दीक्षा द्वारा यह सेवा आपके देहिक

माध्यम के साथ जोड़ देते हैं। आज समाज में सच्चे और झूठे दोनों प्रकार के गुरू अस्तित्व में हैं। किन्तु ऊपर वर्णन किये हुये गुरूमाध्यम ने हमारे जैसे ही मानवी देह के माध्यम द्वारा लोक-कल्याण के कार्य को अंगीकृत किया है। उनके इस कार्य का वास्तव स्वरूप और उनके सही अधिकार की जानकारी न होने से; उनके इस लोककल्याण के कार्य को हम पाखंड समझ कर उनसे चार कदम दूर रहने का जो यत्न करते हैं, इस अज्ञान के विष का परिणाम हमें अनेक जन्मों तक भुगतना पड़ता है।

परिवार की इष्टसुख और शांति और उस सुख की प्राप्ति खानदान की परंपरागत कुल देवदेवताओं का कुलाचार, कुलधर्म, कुलोपासना इन पर निर्भर करती है। ऐसा कहने पर वह सही ढंग से करने का शास्त्रशुद्ध तरीका आपको ज्ञात हो, इसलिये मार्गदर्शन के लिये निम्न निवेदन गुरूकृपाशीर्वाद से दे रहा हूँ।

प्रथमतः आपके खानदान की कुलदेवदेवताओं के नामाभिधान का है इसकी जानकारी अधिकारी साधकों से करवानी चाहिये, क्योंकि अलग-अलग खानदान के परंपरानुसार ऋषिजनों ने कुलधर्म, कुलाचार और कुलोपासना के दृष्टि से विभिन्न देवदेवताओं की निश्चिती की है। जिस खानदान की कुलस्वामिनी श्री महालक्ष्मी है उस खानदान का कुलस्वामी श्रीज्योतिबा या केदारनाथ है। श्रीमहालक्ष्मी का पीठ कोल्हापुर में स्थित है और श्रीजोतिबा का स्थान भी कोल्हापुर के पास ही है। जिस खानदान की कुलदेवता श्री महासरस्वति है उसका स्थान तुलजापुर में स्थित है और उस खानदान के कुलस्वामी श्री खंडोबा का स्थान जेजुरी में है। पूर्वकाल में ये पीठ और स्थान बहुत दूरी पर होने से भक्तजनों को उनके दर्शन के लिये बारबार जाना संभव नहीं था। इसलिये इन्हीं देवताओं के उपपीठ अन्य जगहों पर प्रस्थापित किये गये। उन उपपीठों में से दक्षिण महाराष्ट्र के औंध में श्री यमाई का पीठ है और पाली में खंडोबा का पीठ है। इस प्रकार अलग-अलग स्थानों पर भक्तगणों की सुविधा के अनुसार उनको दर्शन का लाभ होने के लिये यह योजना बनायी गयी। इस प्रकार आप अपने देव और

देवताओं के अलग-अलग गाँवों में स्थान है ऐसा मानतें हैं। तो भी उनका मूल पीठ का और स्थान का दर्शन करना अत्यावश्यक है। अब श्री महाकाली ने यद्यपि कालानुसार अनेक रूप धारण किये हैं और अलग-अलग खानदान में और जातियों में वह भिन्न-भिन्न नाम से जानी जाती है फिर भी उसका मूल पीठ श्री महाकाली यह बदला नहीं है। उदाहरण के लिये लोणावला के पास एकवीरा का स्थान, या गांव-गांव में बसी बोलाई, और सौंदत्ती में यल्लमा, जिसको कई जगहों पर श्री रेणुका कहा जाता है। यह पीठ भी काली स्वरूप है। कई भक्तगण अपनी कुलदेवता कालुबाई बतलाते हैं पीठ यह भी महाकाली में से ही है। इस महाकाली पीठ का कुलस्वामी श्री काल भैरव है, और यद्यपि श्री खंडोबा की आराधना श्री कालभैरव के स्थान पर कुल स्वामी इस दृष्टि से की तो उसे मान्यता हैं। किन्तु उसका स्थान मंगसुली में है, और यह स्थान खंडोबा का आद्यपीठ है। कई खानदानो की कुलस्वामिनी सप्तशृंगी है, और उसका स्थान नासिक के पास वणी में है। यह महासरस्वति है और इस पीठ का कुलस्वामी जेजुरी का खंडोबा है। इसी प्रकार माहूरगढ़ में जो देवी का स्थान है वह श्री महासरस्वति का है और उसका मूल पीठ तुलजापुर है और उस पीठ का कुलस्वामी भी जेजुरी का खंडोबा है।

समाज में ब्राह्मणवर्ग में क-हाडे, कोकणस्थ और देशस्थ आदि उपजातियों में विभाजन है, उसके अनुासार उपरोक्त देवदेवताओं का भी क-हाडे और देशस्थ खानदान में नियोजन है। कोकणस्थ लोगों की कुलस्वामिनी श्री जोगेश्वरी यह महासरस्वति का रूप है। उसका पीठ अंबेजोगाई है और उन परिवारों के कुलस्वमी श्री शंकरजी हैं। जिन्हें वाडेश्वर या हरिहरेश्वर आदि नामों से सबोंधित किया जाता है। कई लोग कहते हैं उनकी कुलदेवी आर्यादुर्गा या दुर्गादेवी है यह स्वरूप भी महासरस्वती के ही हैं।

ऊपर निर्देशित देवदेवताओं की परंपरा महाराष्ट्र में प्रचलित है। इसी परंपरा में मध्यभारत और उत्तर भारत में भी यद्यपि देवताओं के स्थान भिन्न-भिन्न नामों से सबोंधित किये जाते हैं फिर भी वह

त्रिगुणात्मक शक्तिस्वरूप के ही प्रतीक है। उदारहण के लिये गुजरात में श्रीसंतोषीमाता महालक्ष्मी है, श्री बहुचराई महाकाली और अबु में स्थित माताजी नाम से संबोधित की गई कुलस्वामिनी यह महासरस्वति है।

अब गोमांतक याने गोवा के नाम से जो हमें परिचित है, वहां बहुसंख्य खानदान सारस्वतों के हैं। उनकी देवदेवतायें भी इसी प्रकार हैं - श्री शांतदुर्गा जिन खानदानों की कुलस्वामिनी है उनका कुलस्वामी श्री मंगेश है। इन खानदानों में ''पालवी'' नामाभिधान देने का जो रिवाज है इसका अर्थ है उपास्य देवता। जिन खानदानों की कुलस्वामिनी श्री कामाक्षी है उनका कुलस्वामी श्रीरामनाथ है। जिन खानदानों की कुलस्वामिनी श्रीम्हालसा नारायणी है उनका कुलस्वामी श्रीरवलना है कुछ सारस्वत खानदानो में योग्य मार्गदर्शन न होने से उपास्यदेवता याने पालवी को ही कुलस्वामिनी के रूप में खानदान में समाविष्ट कर वही खानदान की पालवी मानने का रिवाज शुरू किया। किन्तु कुलस्वामिनी अथवा कुलस्वामी यह उपास्य देवता नहीं हो सकते। यह बात इन खानदानों के ध्यान में न आने से पालवी को एक और कुलस्वामिनी मानकर उसकी आराधना उन्होनें अपने खानदान में अज्ञानवश शुरू की। वास्तव में शास्त्र के अनुसार हर एक खानदान को एक ही कुलस्वामिनी निश्चित कर के उन देवताओं की उपासना करना उस परिवार के सदस्यों के हित में है।

गोमांतक में सारस्वत ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य जाति के परिवारजन में जिन देवदेवताओं के नाम सांतेरी, महामाया आदि बताते हैं ये सब महालक्ष्मी के ही रूप है। इसे ध्यान में लेकर अपने-अपने खानदान के अनुसार हरेक ने अपने-अपने कुलदेवता की जानकारी कर लेने के बाद उनका कुलधर्म और कुलाचार भक्तिभाव से करने के लिये योग्य प्रतिमायें या खुदवायी हुयी प्रतिमा (टाक) या मूर्ति उन देव देवताओं के स्वरूप से अनुरूप है या नहीं, यह देखकर उनकी स्थापना गुरूजनों द्वारा की जानी चाहिये।

गुरूजनों को इन देवदेवताओं के स्थापना विधि के लिये आंमत्रित करने के बाद इनकी स्थापना शास्त्रशुद्ध तरीके से वे करते हैं या नहीं,

यह बात समझना आवश्यक है। जो प्रतिमायें या प्रतीक कुलस्वामिनी की होती है उनका पंचामृत से अभिषेक करते समय गुरूजनों को ''श्री सुक्त'' का अभिषेक करने को कहा जाना चाहिये। स्थापना करते समय श्री सुक्त का उच्चारण सोलह बार होना आवश्यक है। इस तरह स्थापना होने के बाद शुद्ध वस्त्र पहनकर मीठा भोग चढ़ाना चाहिये। भोग समर्पण करने के बाद देवी माँ की गोद भरनी चाहिये। इसके लिये एक थाली में एक श्रीफल, एक चोलिवस्त्र (जिसकी दोनों ओर किनारी हो) तह करके दूसरी थाली में रखना चाहिये। उसमें तीन अंजुलि (दोनों हाथो का कुरकमल) गेहूं या चावल रखना चाहिये उस पर हल्दी, कुंकुम और चीनी की तीन पुड़ियां रखनी चाहिये। उसके दाहिने और उंठलयुक्त खाने के दो पान, सुपारी और सवा रूपया रखना चाहिये। इसके बाद श्रीफल को हल्दी और कुंकुम लगाकर वह और कोई एक फल हाथ में लेकर उसे देवदेवता के सामने प्रार्थनापूर्वक पकड़कर भक्तिभाव से प्रार्थना करनी चाहिये कि ''मेंनें यथाशक्ति और यथाज्ञान आपकी सेवा की है, वह स्वीकार कर मुझे निरंतर कृपाशीर्वाद देकर, जन्मजन्मांतर सेवा करने का मौका दीजिये''। यह गोद भरने की थाली शाम से पहले भगवान के सामने रखनी चाहिये। जिस सुहागन के हाथों यह गोद भरने का साहित्य रखा गया है उसी के द्वारा वह गोद का साहित्य स्थानिक देवता के मंदिर में पहुँचाने के बाद अन्नग्रहण करना चाहिये। गोद भरते समय सुहागन को पल्लु-किनारी वाली साड़ी पहननी चाहिये। यह गोद को सूर्यास्त से पहले स्थानिक देवता के मंदिर में पहुँचानी चाहिये और इस समय वह स्थानीय देवता श्री महालक्ष्मी हैं या श्री महाकाली है या श्री महासरस्वती है, इसका विचार नहीं करना चाहिये, क्योंकि समाज में आजकल कोई भी सुहागन दिये हुये वस्त्र की चोली नहीं बनाती। इस कारण उनके द्वारा उसी वस्त्र की लेन-देन पुनश्च शुरू होती है।

अब जिस कुलस्वामी की स्थापना आपको करनी है उसकी प्रतिमा भी उस देवता के अनुरूप है या नहीं यह जानकर, उसकी स्थापना पंचामृत अभिषेक पूजा से गुरूजनों द्वारा करनी चाहिये। कुलस्वामी के

स्थापना के लिये पुरूषसुक्त या रूद्रसुक्त का उच्चारण होना चाहिये। इन दोनों सुक्तों को ग्यारह बार गुरूजनो द्वारा पठन करवाना चाहिये। अगर यह संभव न हो तो कुलस्वामिनी का श्री सुक्त और कुलस्वामी के पुरूषसुक्त या रूद्रसुक्त का संकृत पाठ याने एक आवर्तन करने से भी चल सकता है। इस तरह विधिपूर्वक स्थापना करने के उपरान्त उपरोक्त तरीके से भगवान को भोग चढ़ा कर ब्राह्मण और सुहागन को खाना खिलाना चाहिये। किन्तु आज इतने शास्त्रशुद्ध तरीके से विधि करने के बाद भी उसका योग्य फल पाने में जो अड़चन है वह भगवान की ओर से नहीं। किन्तु हम लोग जिस सुहागन देवी मान कर भोजन पर आमंत्रित करते हैं, वह सुशिक्षित और भद्र स्त्री मासिकधर्म का पालन नहीं करती है तथा माहवारी के काल में अपने मकानों में स्वयं खाना पकाकर अन्न ग्रहण करती हैं। इसका पालन न करना यद्यपि आज समाज में फैशन बन गया है फिर भी आज के बदलते युग में फैशनबल हो कर भी जो गृहिणिंया महावारी के उस अयोग्य काल में अन्न ग्रहण करती हैं, उनको सुहागन के रूप में मानना यह देवदेवता को आज भी स्वीकृत नही है। इसलिये हम लोग यद्यपि सुहागन को खाना खिला दिया इस विचार से समाधानी है। फिर भी जिस भक्तिभाव से यह विधि हम करते हैं उसका फल हमें प्राप्त नहीं होता है।

कुलस्वामी की स्थापना करने के बाद उसके स्मरण में हम लोग ब्राह्मण को बुलाकर खाना खिलाते हैं, लेकिन यह ब्राह्मण शब्द का अर्थ जातिवाचक नहीं है। किन्तु इसका अर्थ यह है कि ब्राहमण यह ऐसा व्यक्ति है जिसे इसी जन्म में तीन देह याने स्थूल, सूक्ष्म और कारण एकरूप हुये हैं और जिनका एकरूपत्व उपनयन संस्कार के समय गुरूजनों ने गायत्रीमंत्र की दीक्षा देकर यज्ञोपवित धारण करवा दिया है। किन्तु जिस यज्ञोपवित से यह देह तीनों अवस्थाओं को एकरूप बनाकर भविष्य में विद्या, संपत्ति ओर संतति आदि सुखों का लाभ लेने के लिये बलवान करने का हेतु वेदशास्त्र का है। किन्तु यज्ञोपवित अपने शरीर के बाहर फेंक देने के साथ-साथ वह हेतु भी हम अपने शरीर के बाहर कर देते है। ऐसे व्यक्तियों को विद्या, सपत्ति

और संतति बड़े कष्ट से करनी पड़ती है। इतना ही नही तो विवाहोत्तर जीवन में वांछित संतति की उनकी अपेक्षा भी पूरी नही हो पाती है। क्योंकि उपनयन संस्कार से संतति के उत्पत्ति काल तक यज्ञोपवित धारण करके जो वीर्य याने पुरूषबीज शक्तिमान बनाना होता है वह न होने के कारण कृश और असमर्थ ऐसा बीज प्रजोपत्ति के रूप में जन्म लेता है। भाविष्य में ऐसी समस्याये खड़ी होती है कि ''मेरे पुत्र का विद्याभ्यास की ओर ध्यान नहीं है या उसकी धारणा शक्ति अपेक्षानुसार नहीं है'' जो गलती हम स्वयं करते हैं और हमारे धर्म ने हमारे हित के लिये बनाया हुआ शास्त्रशुद्ध संग्रह अज्ञान में हमने ही निरर्थक ठहराया उसका फल भविष्य में इस तरह मिलता है। जिन व्यक्तियों को उपनयन विधि के बाद यज्ञोपवित्र धारण करने में शर्म आती है उनको ब्राह्मण के हैसियत से भोजन करने का अधिकार नहीं है। वैसे ही उन्होंने देवदेवताओं की भक्ति यथाज्ञान और यथाशक्ति की हो, फिर भी उसका फल पूर्ण रूप में न मिलकर आंशिक रूप में मिलता है। इसके अलावा यज्ञोपवित धारण करने का दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि जब आप विवाहित होते है उस समय जिस वधू का आप कन्यादान के रूप में स्वीकार करते हैं, वह दान कन्यादान नहीं है। किन्तु आपके सामने जो वधू है उसके ''जन्मकर्म'' का आपने किया हुआ स्वीकारा है। ऐसा यह शास्त्रीय सिद्धांत है। जन्म के समय आपने अपने स्वयं का जन्मकर्म अपने साथ तो लाया ही है। इस जन्मकर्म के अनुसार जो इष्टकर्त्तव्य परिवार के लिये आपको करने हैं उसमें कन्यादान के इस स्वीकार से आपकी जिम्मेदारी दुगुनी हो जाती है। ऐसी दुगनी जिम्मेदारी सम्भांलने के लिये सामर्थ्य भी दुगुना होना चाहिये। इसलिये जीवन के आरंभ की प्रथम दीक्षा ''गायत्रीमंत्र'' का नियमित जाप करके दैहिक सामर्थ्य चिरकाल बने रहने के लिये यज्ञोपवित हर पूर्णिमा और अमावस्या के दिन बदलना चाहिये। इसके अलावा परिवार में किसी के मृत्यु के कारण अशोच्य हो या परान्न ग्रहण किया हो, या किसी श्राद्ध विधि में अन्नग्रहण किया हो तो दूसरे दिन तुलसीपत्र का सेवन करके स्नान करना चाहिये। स्नान के बाद यथाशक्ति दान

पानी में डूबो कर भगवान के सामने रखकर यज्ञोपवित बदलना चाहिये। जिनको यज्ञोपवित धारण करने का अधिकार है उन्होंने वैवाहिक जीवन तक तीन, विवाह के बाद पत्नी का एक मिलाकर चार, और गुरूदीक्षा लेने के बाद पांच यज्ञोपवित धारण करने चाहिये। ऊपर निर्दिष्ट गायत्रीमंत्र और यज्ञोपवित का शास्त्रशुद्ध विधि जान लेने के बाद जिनको उपनयन करने का अधिकार है उन लोगों को अपने पुत्रों का उपनयन संस्कार योग्य आयु में अर्थात् आठवें वर्ष में करना चाहिये क्योंकि इसी उम्र में उनकी इंद्रिया तथा अवयवों का विकास होना शुरू होता है वह विकास उनकी तीनों दैहिक अवस्थाओं के लिये पोषक होना चाहिये। किन्तु हम लोगों की यह भ्रामक धारणा है कि उपनयन संस्कार बड़े धूमधाम से होना चाहिये। उसमें बहुत सारे मेहमान निमंत्रित होने चाहिये। उनको योग्य बिदाई या उपहार देने चाहिये। और इन सब चीजो के लिये जो पैसा चाहिये वह दुर्दैव से यदि इकठ़ा न हो सका तो तब तक वह आठ वर्ष का शिशु अठ्ठारह वर्ष की प्रौढावस्था में पहुँच जाता है। उस पुत्र की यह अठ्ठराह वर्ष तक की अविकसित स्थिति, भविष्य में विद्यार्जन के बाद जब वह संसार में नौकरी या पेशा करने का प्रयत्न करता है, इतना नहीं तो उसकी अपेक्षा से अधिक महत्वकांक्षा पूरी हो ऐसी इच्छा प्रदर्शित करता है, ऐसे समय वह अठ्ठारह वर्ष का अविकसित जीवन उसके नौकरी व्यवसाय प्राप्त करने में या महत्वकांक्षा की पूर्ति करने के प्रयत्न में कम पड़ता है।

सूज्ञ भक्तजनों, इस कर्तव्य की जिम्मेंदारी भगवान की न होकर आप लोगों की ही है। आपके जीवन का योग्य विकास होने के लिये भगवान ने सब तरह का इन्तजाम किया है। लेकिन आप लोग अज्ञानवश इहजन्म के परमपवित्र फल को अनुचित ढंग से परखते हो तब "मैं दुःखी हूँ और फिर भी भगवान मेंरी पुकार को आज भी प्रतिसाद नही देते हैं" क्या इस तरह कहना उचित है?

समाज में जिन व्यक्तियों को यज्ञोपवित धारण करने का अधिकार नहीं है, उनके देहिक अवस्था का विकास होने के लिये शास्त्र ने क्या कुछ इन्जताम नही किया है? तो शास्त्र ने उनके लिये

भी शास्त्रशुद्ध इन्तजाम किया है। वह यह है कि इन व्यक्तियों को हर शनिवार की सुबह स्नान करने से पहले तुलसीपत्र का सेवन कर स्नान करना चाहिये। स्नान करने के बाद पंद्रह या तीस पैसे पानी में डूबोकर भगवान के सामने रखने चाहिये और दोपहर को बारह बजे से पहले वे पैसे हनुमान मंदिर में रखने चाहिये। यह उपासना आयु के आठ वर्ष से लेकर अठ्ठारह वर्ष तक करनी चाहिये इससे उपनयन और विवाह इन दोनों ही संस्कारों का इसमें समावेश होता है और उन भक्तों के जीवन का पूर्ण विकास होता है। विवाह के पश्चात् उनको हर पूर्णिमा को इसी प्रकार सुबह स्नान से पूर्व तुलसी पत्र का सेवन कर स्नान के बाद तीस पैसे भगवान के सामने रखकर बारह बजे के पहले हनुमान मंदिर में रखने चाहिये। इसके अलावा अमावस्या के दिन बिल्वपत्र और तीस पैसे रखकर यह दान व बिल्वपत्र शंकर भगवान के मंदिर में रखना चाहिये।

आज तक भगवान ने हम मानवों के कल्याण के लिये कितने गहराई से सोच विचार कर शास्त्रशुद्ध पद्धति से जीवन साकार करने का महत्वपूर्ण कार्य अंगीकृत किया है। वह अनंतरूपी भगवान ने हम सब लोगों के प्रति उसके निजी संतान के समान लगाव रखा है। उसने किसी व्यक्ति को धर्म या जाति के भेदभाव के कारण नकारा नही है। सब को अपनी ही संतान मान कर भगवान अन्न, वस्त्र और मकान का प्रबंध रातदिन कर रहे हैं। ऐसा होते हुये भी आज के विज्ञान युग में हम लोग खुद को सुशिक्षित और विचार संपन्न है ऐसा बतलाते हैं, किन्तु अपने स्वयं के आचार और विचार की ओर बारीकी से देखें तो असमाधान, जातिभेद, निंदा, दूसरे को कम आंकना, "मैं ऊंचा, वह नीचा" इस तरह का गहरा विष हमने पैदा कर रखा है। जंगली अवस्था से हम सुविधा अवस्था में पहुंचने पर भी मूल अवस्था में जो गुणधर्म हम लोगों में थे, वे अभी भी वैसे ही कायम हैं इसलिये संसार में शान्ति बनाये रखने के लिये जो प्रयत्न राष्ट्रवादी पुरूष कर रहे हैं, वह शान्ति क्या केवल संभाषणों से पैदा होगी? हर व्यक्ति राष्ट्र का एक कारिंदा है और जब तक यह कारिदां अविकसित

और अज्ञानी अवस्था में जीवन बीता रहा है तब तक इस अविकसित और अज्ञानी जीवन के कारण अशांति पैदा करने में कार्यकारी रहेगा इसलिये हर व्यक्ति को अपना धर्म क्या है और जाति कौन सी है, तथा इपनी उपजाति कौन सी है, ऐसे विचार जो आज समाज के लिये पोषक नहीं हैं, इनको अलग रखकर समझदारी से एक ही विचार का दृढ़ता से अंगीकार करना चाहिये कि "भगवान ने हम सबको मानव के रूप में जन्म दिया है, इसलिये हमारे आचार-विचारों में, बोलचाल में धर्म जाति आदि द्वैतभाव पैदा न कर हम सबको एक "मानवता धर्म" को स्वीकार करना चाहिये"। इस भूमिका की यदि परिवार से लेकर राष्ट्र तक सब लोगों में हमेशा जागृत रहेगी तो दुनियां में शान्ति के लिये किसी भी राष्ट्र को शान्ति परिषद बुलानी नहीं पड़ेगी और इस परिषद के लिये होने वाला जो बहुत बड़ा खर्च है वह मुद्रा राशि समाज और राष्ट्र के हित में खर्च होगी।

पाठक गणों, ऊपर निर्दिष्ट निवेदन में लड़कों के लिये इष्टविकास की शास्त्रशुद्ध पद्धति बतायी गयी है किन्तु जिस परिवार में लड़कियां हैं उन लड़कियों का जीवन जिंदगीभर विकसित रहे इसलिये जो प्रबंध किया गया है वह यह है कि लड़की की उम्र बारह साल की होने के बाद उसे उसकी माँ को हरतालिका (गौरी) का ब्रत देकर उसको उपवास करने के लिये कहना चाहिये। यह जो हरतालिका पूजन कुमारिका को करना है उस पूजन के लिये हरतालिका की मिट्टी की बनी प्रतीक बाजार में मिलती है। उस प्रतीक की रचना इस प्रकार होती है कि दो कुमारियां आमने-समाने बैठी होती है और उनके बीच में शिवलिंग होता है, क्या आपको इस प्रतीक की पहचान हुई है? जब इस प्रतीक को पूजा के लिये सामने रखा जाता हैं, तब दाहिने हाथ की ओर जो प्रतीक है वह पार्वती का बालरूप याने कुमारी का है और बायें हाथ की ओर का प्रतीक पूजा करने वाली कुमारी का हैं शास्त्र का हेतु यह है कि पूजा करने वाली कुमारी, पार्वती के साथ बैठकर भावी जीवन का भविष्य काल साकार करें। इस पूजा विधि में कुमारी को यह इच्छा व्यक्त करनी होती है कि "विवाह के बाद मुझे पराये

के घर जाना है। वहां मेरे जाने से किसी भी प्रकार का अभाव न हो। उस घर में मुझे सुख और समाधान से अन्नपूर्णा के समान स्थान मिले। मेरे प्रवेश के बाद उस घर में अन्न और वस्त्र की कमी न हो और वह परिवार सदा संपन्न और समृद्ध बना रहे और मेरा स्त्री जन्म सर्वोत्तम तथा खानदान और परिवार को पोषक ऐसी संतति पैदा करने में सफल हो। इस जन्म में विवाह बंधन से जिस व्यक्ति को मैं पति के नाते स्वीकार करने वाली हूं उस पति के सुख-दु:ख में सहभागी होने का सामर्थ्य मुझको दें। इतना ही नहीं, मुझे सदा सुहागन होने का सौभाग्य प्राप्त हो। इस ब्रत को कुमारियों को बारह साल की आयु से लेकर उन्नीस साल तक करना है। इसके बाद का काल विवाहोत्तर जीवन का होने से उसे आगे मंगलागौरी का ब्रत विवाह के पश्चात् करना है। यह ब्रत पार्वती के जीवन की प्रौढ़ अवस्था का प्रतीक होता है। इसलिये इस ब्रत को निरंतर पांच साल तक करना चाहिये। पांच वर्ष के बाद जो सुहागन स्त्रियां इस ब्रत का उद्यापन करती हैं, उसमें महत्वपूर्ण बात और जिम्मेंदारी यह है कि यह उद्यापन केवल पांच वर्ष किये हुये मंगला गौरी का न होकर कुमारिका अवस्था में किये हुये हरतालिका ब्रत के सात वर्ष और आगे के पांच वर्ष मिलाकर बारह साल के ब्रत का होना चाहिये तब ही सुहासिनी का यह ब्रत सफल होता है।

प्रचलित समाज में कुमारियों ने अपने भविष्य के लिये करने की यह उपासना ब्राहमण वर्ग में ही की जाती है। किन्तु ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जाति की जो कुमारियां हैं उनको भी इस ब्रत के समान अपना जीवन विकसित करना संभव हो इसलिये जो सेवा बतायी गयी है, उसका कार्यकारणभाव भी हमारे शास्त्रों के उच्च हेतु क्या है, इसका प्रतीक है। अन्य जाति की कुमारियों को अपनी आयु के बारह वर्ष से लेकर बारह साल तक हर वर्ष श्रावण मास के चार मंगलवार के दिन उपवास करना चाहिये। अनेक परिवार उपवास का यह अर्थ लगाते हैं कि सुबह को भोजन कर शाम को कुछ न खाना उपवास होता है। किन्तु उपवास का यह अर्थ नहीं है। वास्तव में उपवास

सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक रखना होता है। सूर्यास्त के बाद ही अन्न ग्रहण करना चाहिये। विवाहोत्तर जीवन में हर साल अश्विन मास या पौष मास के ४ या ५ मंगलवार के दिन उपवास करना चाहिये और आखिरी मंगलवार को सिर से स्नान कर देवी की गोद भरनी चाहिये। इसको अश्विन या पौष में करना चाहिये। ऐसा व्रत जिन परिवार के जिम्मेंदार व्यक्ति अपनी कन्याओं को सूचित करेगें उन कन्याओं के विवाह में ऐसी बाधाएं नहीं आयेगी जिसकी पूछताछ के लिये ज्योतिष, तंत्र-मंत्र, मिन्नतें आदि गैर मार्ग का सहारा नहीं लेना पड़ेगा उनका उचित काल में विवाह होकर उनका वैवाहिक जीवन समृद्ध होगा।

ऐसी शास्त्रशुद्ध निराकरण पद्धतियां पढ़ने में आने पर, भक्तगण समझते हैं कि शास्त्रशुद्ध कुलाचार कुलधर्म करना यह एक बहुत बड़ी समस्या खड़ी हुई है। भक्तगणों को ऐसा लगना स्वाभाविक है। आज के परिवर्तनशील युग के अनुसार हर परिवार के व्यक्तियों की सुविधाओं तथा असुविधाओं में जीवन गुजारना पड़ रहा है। ऐसे समय यथायोग्य ब्राह्मण-सुहागन कुलधर्म के लिये न उपलब्ध हुये तो इस कारण अपनी सेवा निरर्थक हुयी ऐसा सोचकर निराश होना उचित न होगा, कारण की इस कार्यपद्धति को केवल नाथ परंपरा का दत्त परंपरा का ही कृपाशीर्वाद प्राप्त हुआ है ऐसा नहीं मानना चाहिये। आपके खानदान की जो कुलदेव देवताएं हैं वे भी इस कार्य में सहभागी है। जिस समय आपको सुलभ ऐसा निराकरण सूचित किया जाता है। तब उसको स्वीकार ये कुलदेवदेवता बड़े हर्ष से करती हैं। इसलिये कुलधर्म-कुलाचार और कुलोपासना के अवसर पर ब्राह्मण सुहागन को प्रसाद ग्रहण करने के लिये आंमत्रित किया जाना चाहिये, यह ऊपर बताया गया है। इसके बदले आप देवदेवताओं को भोग समर्पित करने के बाद भोग के सामने दो खाने के पान (तांबूल) और उस पर सवा पांच रूपये दक्षिणा रखिये। इस तरह से विधि करने से आपको सहजता से ब्राह्मण सुहागन द्वारा प्रसाद ग्रहण करने का पुण्य प्राप्त होगा। उनके नाम से निकाली गयी दक्षिणा आप किसी धार्मिक संस्था, वैधकीय संस्था या शिक्षण संस्था को प्रदान कीजिये। इन संस्थाओं का

उद्देश्य समाज कल्याण का होता है फिर भी धन के अभाव से वे अपना कार्य यथायोग्य संपन्न नहीं कर पाते हैं। ऐसी संस्थाएं हमारे गाँव में हमारे निकट ही कार्यरत रहती हैं। किन्तु हम लोग दानधर्म, परोपकार आदि कर्त्तव्यों को भूल गये हैं। इसलिये इन संस्थाओं को दुर्लक्षित कर उनके कार्य की हम अवहेलना करते हैं। वास्तव में इन संस्थाओं की ओर बहुत ही आस्था से देखना चाहिये। इन संस्थाओं के बारे में ऐसा विचार करना चाहिये कि "कार्यो को परोपकार के रूप में में कर नहीं पाता हूँ उनकी जिम्मेंदारी का भार इन संस्थाओ ने उठाया है। मेंने भी इसी समाज में उसके एक सामाजिक कारिंदा होने के हैसियत से जन्म लिया है इसलिये मुझे इन संस्थाओ को उपरिनिर्दिष्ट जैसे पैसे देने में दुख नहीं महसूस होना चाहिये"। इस प्रकार दोनों ही उद्देश्य साध्य होते हैं और स्वयं तथा समाज में कार्यरत सज्जन जो ऐसे कार्य में अहर्निश अपना जीवन व्यतीत करते हैं उन्हें अपना कार्य करने में उचित अवसर मिलेगा।

आप भक्तगण विवाह या अन्य मंगल कार्य में कई बार शामिल हुये होंगे। या अपने ही परिवार के लड़के-लड़कियों की शादी संपन्न की होगी। लेकिन क्या जिन लड़कों या लड़कियों की शादी करने का इष्टकर्तव्य आप करते है उनको भावी वैवाहिक जीवन की पूर्णता आप किये देते हैं? इस सवाल का जवाब देते हुये आप कहेंगे कि "वर द्वारा मांगा गया दहेज, जेवर या बिदाई आदि देकर योग्य तथा सुशिक्षित वर हम ने चुना है। हमारी अपेक्षानुसार वह पढ़ा-लिखा, खानदानी और कमानेवाला है"। इन सब बातों को बतलाकर हमने लड़की की शादी की रस्म पूरी कर दी है, ऐसा दावा आप करते हैं। किन्तु इस खुशी में कुछ ही दिन बीतने पर आप जानते हैं कि आपकी लड़की जिसकी आपने सब व्यावहारिक बातों को देखकर शादी की हैं, उसके दुःख या मानसिक अशांति विवाह के कुछ ही दिनों के बाद आरंभ होती है। ऐसा क्यों होता है? इसका कारण यह है कि "इस मंगल विधि के मांगलय को ध्यान में न रखकर यह केवल अपने

कर्त्तव्य की दृष्टि से एक विधि है, ऐसा आप सोचते हैं" इसलिये यह समारोह विधिपूर्वक न कर एवं उस नवपरिणीत दम्पत्ति के लिये वैवाहिक जीवन की सफलता के लिये पूरक कृपाशीर्वाद की आवश्यकता होती है इस तथ्य को आप अनदेखा करते हैं और आगन्तुक उच्च प्रतिष्ठितों के मान सम्मान करने से आप इतने संतुष्ट हो जाते हैं कि, इस मंगलकार्य के जिन प्रधान विधियों को करना आवश्यक होता है।उनकी ओर आप ध्यान नहीं देते।

मान लीजिये आपको अपनी लड़की की शादी करनी है। उसके अनुरूप वर और उसके वैवाहिक जीवन को शोभायमान हो ऐसे आपने समारोह किये, फिर भी शास्त्र के अनुसार महत्वपूर्ण धार्मिक विधि की ओर ध्यान न देना उसके हित में नहीं है। लड़की विवाह के समय जब गौरी का पूजन करती है तब गौरी में श्री अन्नपूर्णा और गोपालकृष्ण इन दो देवताओं की प्रतिमा वहां निहित होती है, किन्तु कई बार एक ही दैवी या देव की प्रतिमा रखने का जो रिवाज है, वह गलत है। इसलिये गौरी हर पूजन के समय श्री अन्नपूर्णा और गोपालकृष्ण इन दोनों देवताओं का पूजन में होना आवश्यक है। गौरीहर के वक्त नववधू जिस अन्नपूर्णा का पूजन करती है वह अन्नपूर्णा, पार्वती का सौभाग्यवती स्वरूप होता है। अन्पूर्णा के गले में पाँच काले मोती और बीच में एक स्वर्ण मोती यह सौभाग्य का लक्षण होने से वह उसके प्रतिमा को परिधान कराये बिना अन्नपूर्णा देवी को पूजन में रखने से गौरीहार की पूजा की यह बताना कथनीय नहीं हो सकता।

इस गौरी पूजन के समय अन्नपूर्णा और गोपालकृष्ण का पूजन नववधू के पूर्ण भक्तिभाव से इसलिये करना है कि कुमारी अवस्था में माँ-बाप के घर में साल-साल तक किया हरतालिका का व्रत कन्यादान के बाद माता-पिता के घर में नहीं रहना चाहिये। कन्यादान के बाद यह व्रत उसके भावी पारिवारिक जीवन उभारने के लिये उसके साथ उसके पति के गृह में प्रविष्ट हो यह इस पूजन के पीछे सदहेतु है। विवाह के बाद पांच साल मंगलागौरी का व्रत करना होता है, इस तरह बारह साल यह सेवा कुमारी अवस्था से लेकर सौभाग्यवती अवस्था तक

होती है। उसको जोड़ने की जो विधि है उसी को "गौरीहार पूजन विधि कहते हैं"। गौरीहार पूजते समय वधू की मानसिक अवस्था ऐसी होती है कि माँ-बाप के घर लाड-प्यार में व्यतीत किया हुआ जीवन उसको शादी के बाद दूसरों के घर में अपरिचित पुरूष को समर्पित करना होता है। ऐसे वक्त, "माँ-बाप के घर में बिताया हुआ लाड़-प्यार का जीवन भविष्य में हमें प्राप्त होगा या नही" इस संभ्रम से वह जब दु:खी अवस्था में होती है, तब मंगल कार्य में उपस्थित हुये हम लोग दु:खी वधू के इर्दगिर्द मर्कटचेष्टा करते रहते हैं। अपने भविष्य की सब इच्छायें और आकांक्षाओं को अपने दृष्टि पटल पर लाकर वह नववधू अश्रु बहाती रहती है और हम सभी लोग उसके आसपास बैठकर उस दृश्य की निर्भत्सना करते हुये अपना मनोरंजन कर लेते हैं। इस समय उसकी मानसिक अवस्था ऐसी होती है कि एक तरफ उसको सुख का मार्ग दिखायी देता है लेकिन जो सुख जन्म से उसने माँ-बाप के साथ जुड़ाया हुआ होता है, वह ऋणानुबंध इस वक्त उसे तोड़ना होता है। ऐसा सूज्ञ विचार सब लोगों ने कर, वह जो गौरीहार का पूजन मनोभाव से करने बैठी है, उस पूजन को यथाज्ञान और शक्ति से करने का अवसर उसे देना यही वहां उपस्थित हुये सभी संबंधियों का कर्त्तव्य होता है।

इस गौरी पूजन के समय अपने मन में धीरज रखकर प्रार्थना करनी चाहिये। गौरीहार के पूजन के वक्त दी गयी गोपालकृष्ण की मूर्ति का उद्देश्य उसके खानदान में भविष्य में होने वाली श्री सत्यनारायण के पूजन के लिये है, ऐसी जो हमारी धारणा होती है वह गलत है। गोपालकृष्ण की यह प्रतिमा एक पांव पर खड़ी होती है इसका अर्थ, जो वधू विवाहित होती है उसके पति ने भावी जीवन में अमंगल स्थान में अपना पांव नहीं रखना चाहिये। इसलिये गोपालकृष्ण को दोनो पांवोंपर खड़ा न कर एक पांव पर खड़ा किया है।

पूजनादि विधि और उसका महत्व

आप भक्तों के लिये आवश्यक कुलधर्म और इष्टदेवताओं के बारे में खुलासा आपके मार्गदर्शन के लिये किया गया है। अब इन देवताओं के पूजन विधि के बारे में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन आगे किया जायेगा। इससे पूर्व इन देवताओं के लिये उपवास व्रत आदि करना आवश्यक है या नहीं यह सवाल खड़ा होता है। यथायोग्य तरीके से पूजा आदि विधि और वार्षिक कुलोपासना करने के बाद उपवास व्रत आदि करने की जरूरत नहीं है। जो पूजन विधि आपको करना है उसका यथायोग्य ज्ञान आपको कर लेना चाहिये। केवल चंदनलेप, फूल अक्षत चावल के दाने और श्रीफल और वे भी देवदेवताओं के इन पूजा वस्तुओं के संबंध में जो आवश्यक ज्ञान है उसके अभाव में अर्पण करना यह देह के स्वभाव तथा प्रकृति के अनुसार एक यंत्रवत क्रिया आदत जैसी बन जाती है और पूजाविधि करते समय मन की एकाग्रता अत्यावश्यक होती है वह नहीं हो पाती है। हम लोग जो पूजा सामग्री देवदेवताओं के पूजन के लिये लेते हैं वह सामग्री भी शास्त्र ने शास्त्रपूर्वक और अनुभवपूर्वक सूचित की है। पूजा विधि शुरू करने से पहले अपना मुख किस दिशा में कर हम पूजन करने वाले है यह प्रथमत: देखें। पूजा विधि के लिये पूर्वाभिमुख या पश्चिमाभिमुख बैठने से पूजन के सद्हेतु जल्दी फलदायी होते हैं, परन्तु कई लोगों के घरों में देवदेवताओं की स्थापना दक्षिण या उत्तर दिशा में, स्थान के अभाव से की गयी होती है। इन दोनों दिशाओं की ओर देवदेवताओं का या हमारा मुख नही होना चाहिये। पूजन विधि करने के लिये जो आसन बैठने के लिये चाहिये वह दूर्बासन होना चाहिये या सफेद वस्त्र तह कर लेना चाहिये। क्योंकि पूजन विधि के समय जो प्रार्थना विधि हम करते हैं उस समय हमारे पंचभौतिक देहिक माध्यम के जन्मकर्म के दोष इस आसन माध्यम में विसर्जित होते हैं।

पूजनादि विधि के आरंभ में आसन पर बैठकर दो बार आचमन करना चाहिये। आचमन का उच्चारण ऊँ केशवायनम:, ऊँ नारायणाय

नमः ऊँ माधवाय नमः, करना होता है। उसका अर्थ यह है कि जब आप पूजन के लिये बैठते हैं तब आपके देहिक माध्यम के तीनों ही देह याने स्थूल, सूक्ष्म और कारण इस विधि के लिये उपस्थित होने चाहिये और यही शास्त्र का उद्देश्य है। यह आचमन दो बार इसलिये करना है कि स्थूल और सूक्ष्म याने जन्मकर्म और जन्मजन्मांतर इस शुभ विधि के समय उपस्थित रहे। तीसरा देह याने कारण देह जिसमें देवदेवताओं का ऋणानुबंध वास करता है वह देह पूजनादि विधि के समय स्वभावतः रहता ही है इस तरह आचमन दो बार करने के बाद पांच बार पांच स्थानों से ओंकार करना चाहिये क्योंकि हमारे देह माध्यम में जो पंचप्राणकोष याने अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष और आनंदमयकोष होते हैं इनका भी इस पूजनादि विधि में समावेश होता है। इन पंचप्राणकोषों का विकास होना जो अत्यावश्यक है, वह इस विधि से होता है। ये पंचप्राणकोष हमारे देह में अतिसूक्ष्म अवस्था में रहते हैं और जब तक हम लोग सब धार्मिक विधि और धार्मिक सत्कार्य शास्त्रीय पद्धति के अनुसार नहीं करते तब तक इन पांच कोषों में से केवल अन्न और प्राण, यही दो कोष कार्यरत रहते हैं, अर्थात् विकसित अवस्था में होते हैं। वास्तव में जन्म प्राप्त होने के बाद दैहिक अवस्था के अनुसार अगले तीन कोषों का याने मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोषों का भी यथोचित विकास होना आवश्यक होता है। मनोमय कोष विकसित होने से आपको प्राप्त ऐहिक सुख अर्थात् सुख, शांति और समाधान इस कोष के माध्यम से प्राप्त होता है और जो पारमार्थिक सेवा आप गुरू के मार्गदर्शन के अनुसार करते हैं, उस सेवा का पारमार्थिक लाभ अर्थात् "नित्यानंद", "चिदानंद" और "ब्रह्मानंद" ये आनंद गुरू अंगीकृत सेवा और उसका पालन योग्य तरीके से करने से आनंदमय कोष विकसित होकर आप साधको को क्रमशः प्राप्त होते हैं। तीसरा आनंद जो कि ब्रह्मस्वरूप है, वह इस दैहिक संसार के परे वास करने वाले परमेश्वर की अनुभूति है, और इसकी प्राप्ति के उपरान्त, योगसाधना, कुंडलिनी जागृति, समाधि अवस्था आदि की प्राप्ति करनी होती है इस भ्रामक पूर्वानुमान से आप अपने विचारों से मुश्किल और विकट समस्याएं निर्माण करते हैं। उन्हें

न कर उनपर रोक लगाइये। ईश्वर सान्निध्य का आंतरिक सुख याने आनंदमय कोष तक हुई आपकी साधना का सुख जो आपको प्राप्त हुआ है उससे बढ़कर अधिक सुख, योग साधना, कुंडलिनी जागृति, समाधि आदि मार्गो का अवलंब करने से मिलेगा, ऐसा अविचार न करना अपने ही हित में है।

यह साधन पद्धति इसलिये सूचित की गयी है कि अगर यह जन्म आपने अपने पारिवारिक कर्त्तव्यों की पूर्ति करने के लिये लिया है, तो इन कर्तव्यों की पूर्ति करने की आपकी जिम्मेंदारी परमेंश्वर के कृपाशीर्वाद से साकार होनी चाहिये। कुछ ऊपर निर्दिष्ट शास्त्र अर्थात् योगसाधना, कुंडलिनी जागृति और समाधि यद्यपि अपने आप में श्रेष्ठ है फिर भी पारिवारिक मनुष्य को उनको प्राप्त करने के लिये बहुत समय व्यतीत करना पड़ता है और फिर भी उनकी प्राप्ति जितनी होनी चाहिये उतनी हो नहीं पाती। इसलिये सूज्ञ भक्तगणों को उन प्रतिष्ठित नामों से अलंकृत बड़े शास्त्रों को अपने से दूर रखना चाहिये। मुझे नहीं लगता कि जो व्यक्ति गुरू के आशीर्वाद के लिये पात्र है और गुरू मार्गदर्शन के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं उन व्यक्तियों को गुरू आशीर्वाद की प्राप्ति के बाद, प्राप्त जन्म विकसित करने के लिये इन साधनों की आवश्यकता है।

पूजनादि विधि के शास्त्र की दृष्टि से दो भाग किये गये हैं। ये दोनों विधि करते समय इन दोनों के लिये भाव और भावना पूजक के मन माध्यम में निर्माण होनी चाहिये। पहला पूजन विधि जो है वह देवदेवताओं के लिये होता है और इसको "पंचऔपचार विधि" कहते हैं और जो दूसरा विधि होता है उसको "पंचउपचार विधि" कहते हैं। अर्थात् पहले विधि में इष्टदेवदेवताओं के लिये जो पूजनीय भाव आप में हैं वह पूजा सामग्री के माध्यम से भगवान के प्रति व्यक्त करना है। यह की हुई विधि और उसकी प्रतिक्रिया आपको अपने काया-वाचा और मन से धारण करना है। इस विधि को पंचउपचार विधि कहते हैं इन दोनों पूजन विधियों को करने से भगवान के प्रति पूज्य भाव दिन-प्रतिदिन विकसित होकर, किये गये पूजनादि विधि के कृपाशीर्वाद

के फलस्वरूप आपकी भगवान के प्रति आत्मिक भावना कृतार्थ होनी चाहिये। तभी हम जो नियमित रूप से पूजा विधि करते हैं उसका लाभ ले सकेंगे।

पंचऔपचार विधि में जो पूजनादि साम्रगी होती है उसमें भगवान के सामने बैठने के लिये आसन, चंदनलेप, पुष्प, अक्षत, इत्र, हल्दी कुंकुम, शुद्ध घी की आरती (निरांजन) भोग के लिये अपनी पसंद का एक फल इन सब का समावेश होना आवश्यक है। इस आवश्यक सामग्री के बारे में शास्त्र में दिया हुआ बोध नीचे प्रतिपादित किया गया है।

आसन : आसन हमेशा सफेद वस्त्र का होना चाहिये, आपकी हैसियत है इसलिये वह रंगबिरगें, दरी जैसे या मुलायम गलिचें जैसे नहीं होने चाहिये। क्योंकि जब हमें पूजनादि विधि के लिये भगवान के सामने बैठकर देवदेवताओं का चिंतन करना है तब हमारे आसपास के वातावरण में उपस्थित सप्तरंग के वलय हमारे देह के साथ एकरूप होने नही चाहिये। इसलिये साधक को रंगबिरंगे आसन नहीं लेना चाहिये, क्योकि इन रंगों के वलयों से आपको पूजनादि विधि के लिये जो बुद्धि और मन स्थिर करना होता है, उस विधि में इस वातावरण के अनावश्यक रंगों से अवरोध पैदा होता है। इसलिये पूर्वकाल से दूर्बासन पवित्र माना गया है। कई प्रसंगो में स्त्रियों को भी परिवार के देवदेवताओं का पूजन करना पड़ता है, किन्तु दूर्बासन पर बैठने की उन्हें शास्त्र की आज्ञा नहीं है। इसलिये सफेद वस्त्र ही सब के लिये उचित आसन है। आसन पर बैठ कर पूजा करने के बाद इस आसन को तुरंत धोना चाहिये। उसे क्यों धोना चाहिये यह हम पहले बता चुके हैं। पूजा के आरंभ में आचमन विधि क्यों करना है यह भी बताया गया है।

पूजनादि विधि को आरंभ करने के लिए पहले दो बार आचमन कर, पूजन के लिये हुये अक्षत (चावल) को हल्दी और कुंकुम याने ऋद्धि-सिद्धि अर्पण कर उन्हें मनोभाव से हाथ में लेना चाहिये और दोनों हाथ जोड़कर भगवान की प्रार्थना करनी चाहिये कि "मैं आपका पूजन यथाज्ञान और यथाशक्ति से करने वाला हूँ। इस विधि को स्वीकार करने के लिये आप सब उपस्थित रहने की कृपा करें"।

इस तरह की विधि जानने के बाद आपको आश्चर्य होगा कि आपने इस तरह का विधि कभी की ही नहीं। इसका यह जवाब है कि जिस समय आपके घरों में कोई मंगल कार्य होते हैं उस वक्त इन मंगल कार्यों के लिये रिश्तेदारों को, संबधियों को निमंत्रित करने के लिये आप जाते हैं, ऐसा निमंत्रण कुछ प्रसंगानुसार होता है और जब ऐसे पर भी प्रासंगिक निमंत्रणो के समय अक्षतों की आवश्यकता होती है, तो जो नित्य और निरंतर पूजाविधि आपको करना है, तो क्या उसका निमंत्रण भगवान को भक्तिभाव से नही देना चाहिये?

इस प्रार्थना के बाद अक्षत भगवान के सामने पटेपर/पीढेपर रखकर भगवान की मूर्ति को थाली में रखना है। इष्ट देवताओं के प्रतिकों को थाली में रखकर शुद्ध जल से स्नान के लिये तीन बार कलछी (आचमनी) से पानी डालना है। इसके बाद इन देवताओं के पास जो त्रिगुणात्मक शक्ति वास करती है वह शक्ति पूजन के समय प्रकट हो इसलिये इन देवताओं के लिये जो धार्मिक सूक्त होते है जैसे गणपती अथर्वशीर्ष, पुरूषसूक्त, श्री सूक्त पवमानसूक्त या रूद्र, इनका संस्कृत में पाठ करना है। लेकिन हम लोगों को आजकल इन सूक्तों का पठन नहीं आता है या गुरूजनो से हमने वह अवगत नहीं किया है। अगर कोई इनको जानता भी है तो भी इन सूक्तों को संस्था पद्धति के अनुसार उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन स्वरों में जब तक वह पठन हम नहीं कर सकते, तब तक इन सूक्तो को मुखोट्गत होने का बहाना न कर, आसान पद्धति से पूजनादि विधि करना चाहिये। यानि कि जिनको गायत्री मंत्र की दीक्षा उपनयन के समय दी गयी है उन्हें संध्याविधि में देवताओं के जो चौबीस नाम बताये गये हैं उनके नामोच्चार से भी यह कार्यसिद्धि सुलभता से हो सकती है। इससे भी आसान से आसान तरीका यह होगा कि जिनको ये चौबीस नामों का उच्चारण नहीं आता हो, वे इक्कीस बार गुरूनामस्मरण करे। इसके बाद एक बार आचमनी में पानी लेकर उसमें चन्दनलेप, फूल और अक्षत मिलाकर भगवान को अर्पण करना है, उसके बाद

तीन बार आचमनी में शुद्ध जल लेकर अर्पण करना है, पहली बार अर्पण किये हुये चन्दनलेप, फूल और अक्षत अपने माथे पर लगाना है और उसके उपरांत उसे अपनी उत्तर दिशा में रखना है इस विधि को "उत्तरपूजा" कहते हैं। इसके बाद भगवान को सफेद वस्त्र से साफ कर उनकी जगह रखना है।

लेप : यह चन्दन का होना चाहिये। भगवान के लिये रक्तचन्दन गोपीचन्दन योग्य नहीं है। लेप तैयार करने का विधि शास्त्रानुसार ऐसा है कि जो ओरसा (चकले जैसा गोल पत्थर जिसके ऊपर लेप बनाने के लिये पानी के साथ चन्दन घुमाया जाता है) होती है वह गोल होती है, वह पृथ्वीतत्व है, ऐसा अर्थ इस ओरसे में गर्भित है। इस ओरसे के ऊपर जो चंदन का टुकड़ा हम घिसने वाले हैं वह स्वयं हम हैं ऐसी भावना है। स्वयं को धीरे-धीरे नष्ट कर दूसरों को अपना निजी सुगंध या परिमल देना इस तरह का परोपकार भाव यह चंदन का स्वाभाविक गुण होता है। "चंदन की तरह मेरा जीवन भी कृतार्थ हो" इस पूज्य भावना से चंदन घिसकर चंदन लेप बनाना चाहिये। चंदन को घिसते समय कभी भी उर्ध्वाधर (सीधे या खड़े) नहीं घिसना चाहिये। किन्तु गोलाकार दिशा में घिसना चाहिये। इसके पीछे जो भावना है वह यह है कि, जैसे पृथ्वी स्वयं के अक्षपर चक्राकार घूमती है वैसे ही हमारा जन्मकर्म भी हमारे देह के इर्दगिर्द घूमता है। इस कर्म के जन्ममरण के बंधनों से हमें मुक्त होना है और वह मुक्ति इस देह को चंदन के समान घिसे बिना नही हो पायेगी। "हमारा देह यह चंदन जैसा एक टुकड़ा है और वह टुकड़ा मेरा ही निजी प्रतीक है और यह चंदनरूप मेरा देह चंदन जैसा घिसने के बाद मेरे निजी गुणों को जगत कल्याण के लिये योग्य अवसर मिले" ऐसी भावना मन में रखकर चंदन के टुकड़े को ओरसे पर बायीं ओर से दाहिनी ओर गोलाकार घुमाना चाहिये। इस लेप में यथाशक्ति अष्टगंध और केशर या हल्दी कुंकुम मिला लीजिये। भगवान का माथा यह शुभ स्थान है इसलिये भगवान के माथेपर जो हम चंदन का टीका लगाते है वह सफेद नहीं होना चाहिये।, ऐसा लेप जब हम लगाते हैं तो वह उनके

माथे पर और पांव पर भी लगाना है। अगर आपने किसी अवतार पुरूष का फोटो पूजन में रखा है और प्राय: वह होता ही है, इस लेप को उनके मस्तक पर व पाव और उनके छाती के मध्य में भी लगाना है। इसका कारण यह है कि ईश्वर के आज्ञानुसार इन्होंने इस संसार में जो अवतार कार्य मानव जन्म के लिये अपनाया होता है। उसके इस स्वरूप की हम मानवों को पहचान हो इसलिये वे देह रूप धारण किया करते हैं और उनका यह परिचय वे उनके देहिक अवस्था के द्वारा ही हमें होती है। किन्तु उनका ईश्वरी कार्य के लिये लिया हुआ अवतार सामर्थ्य उनके अंतर्याम में ही होता है। उसका लाभ हमें लेना है। यह बात को हम लोग अभी तक समझ नहीं पाये हैं, इसलिये हम लोगों ने लेप केवल उनके मस्तक पर लगाने का रिवाज ड़ाला है।

फूल : भगवान को फूल अर्पण करने की जो विधि है वह केवल भगवान को सुशोभित करने के लिये है ऐसा नहीं। जब फूल खिलता है तब एक सुकोमल हास्य प्रकट करता है। उनके जीन में भी कांटे होते हैं। उदाहरण के लिये गुलाब का पौधा। इसका फूल जब हम तोड़ते हैं तब उसके नीचे कांटे होते हैं। लेकिन जब यह फूल खिलता है तब उसके नीचे छुपे हुये कांटो का, उस फूल के हास्य और खुशबू के कारण, अनुभव नहीं होता है। वैसे ही जब हम पूजा के लिये बैठते हैं तब हम प्रसन्नचित्त होते ही हैं ऐसा नहीं। जिस प्रकार फूल अपने हास्य से या खुशबू से कांटों का एहसास नहीं होने देते, उसी प्रकार अपने मुंख पर पूजा के समय हास्य लाना चाहिये। पूजा करने की विधि एक विवशता है ऐसा मान कर करने से यह विधि फलदायी नहीं होती है।

इन फूलों को भगवान को अर्पण करने के बाद किमान पांच मिनट तक इन अर्पित फूलों की ओर शुद्धविचार से देखना चाहिये और सोचना चाहिये कि "इन फूलों का जीवन कितना थोड़ा है फिर भी भगवान को अर्पित होकर इन्होंने अपना जीवन सफल बनाया है"। दूसरे दिन इन्हीं फूलों को उतारकर निर्माल्य मानकर हम अलग रखते हैं तब हमारे दिल में अनजाने में यह भावना जागृत होती है कि इन

फूलों को हमारे पैर न लगे क्योंकि भगवान को अर्पण करने के बाद इनका जीवन तो सार्थक हुआ ही, किन्तु जो मलीनता थी वह दूर हो कर वह फूल निर्मल बन गए हैं। इसलिये हम लोग "निर्माल्य फेंक दो" ऐसा न कहकर उसको "विसर्जित कीजिये ऐसा धार्मिक उच्चारण करते हैं और निर्माल्य को कभी भी पैरों के नीचे न कुचलने देने की सावधानी रखकर उसको नदी में विसर्जित करते हैं"। ऐसे समय आपको अपने से यह सवाल करना चाहिये कि इस संसार में मुझे दीर्घकाल आयुष्य और उसके कारण हमें अनेक जन्म प्राप्त हो रहे है फिर भी "इस फूल के समान मैं अपने एक भी जन्म को सार्थक नहीं कर पाया हूँ" इस भक्तिभाव से अर्पण करने के लिये लाये सुगंधित फूलों के लिये हमें अपने मासिक खर्च से चार पैसे खर्च करने पड़ें तो भी यह उस पैसे का अपव्यय नही होगा क्योंकि यह फूल हर रोज हमें हमारे अपने प्राप्त जीवन के कर्तव्यों की याद नित्य नियमित रूप से कराते हैं। हमारे जीवन का जो आद्य कर्तव्य है वह यह है कि हम अपने इस जीवन को सार्थक करें। इस कथन का बोध पुराण, पोथी प्रवचन हरिकीर्तन आदि माध्यमों द्वारा आप श्रवण भक्ति से ग्रहण करते रहते हो, फिर भी इस कर्तव्य की जानकारी के लिये क्या कीर्तन प्रवचन आदि सुनने के हेतु हर रोज जाना आपके लिए संभव नही होता है। किन्तु रोज सुबह जागते ही हमारे दिन भर के कर्तव्यों की याद फूल प्रातः काल में ही हमें दिलाते हैं। ऐसी मूक भक्ति श्रवण भक्ति से भी श्रेष्ठ है। इस तरह फूलों के माध्यम से हमें प्राप्त जीवन के कर्तव्यों के प्रति जागृत करा देने का बोध भगवान ने किस तरह सूचित किया है यह समझने के बाद तो भी अपने देवदेवताओं को अर्पण करने के लिए आवश्यक फूल किसी से मांग कर या पड़ोसी सुबह जागने के पहले ही उसके बाग से चुराकर न लाकर भक्तिभाव से बाजार से अपने कष्टार्जित पैसों से खरीद कर लाये गये तो भगवान भी आपको इसका प्रतिफल निश्चित देंगे इसमें संदेह नही।

फूल में स्थित यह सात्विक गुण भगवान को कारणिक होता है। फूलों में स्थित तामस गुण कभी भी किसी के अध्ययन में नहीं आया

है। आम तौर पर वातावरण में असंख्य मृतात्मायें यहां-वहां घूमती रहती हैं। आपके परिवार की स्त्रियां या लड़कियां जब बाहर जाती हैं तब उनको इनकी बाधायें अनजाने में होती हैं। बाधाओं से होनेवाली त्रासदी से बचने के लिये हर व्यक्ति साधक अवस्था प्राप्त कर सके ऐसा आवश्यक इसलिये नहीं। इसलिए अनादि काल से पिशाच बाधाओं से आसान तरीके से सुरक्षा करने का जो तरीका सूचित किया गया है। उस साधन को भी हमलोग आजकल भूल चुके हैं। पुराने जमाने में स्त्रियां अपने सुगंधित फूलों के गजरे या कम से कम एक तो भी फूल तो बालों में लगाती थीं। इसका कारण यह था कि फूलों की खुशबू से पिशाच बाधा नहीं होती है। क्योंकि फूलों की निर्मिती और उससे निकलने वाली सुगंध भगवान के अस्तित्व की निशानी होती हैं। और जो स्त्रियां या लड़कियां इनको धारण करती हैं उनको फूलों की सुगंध के कारण पिशाच बाधा नहीं होती हैं क्योंकि पिशाच और सुगंध में छत्तीस का आंकड़ा होता है।

पुरूषों को भी इसी प्रकार की बाधायें होती हैं। वह समझ में न आने से अनुभव नहीं होता। यद्यपि यह सच है, फिर भी व्यक्ति की हमेशा की बोलचाल की आदत के परे जब उसके हावभाव तथा आचरण दिखाई देते हैं तब इन बाधाओं का अस्तित्व स्पष्ट होता है। ऐसे समय उस व्यक्ति को बाधा हुई है ऐसा समझ लेना चाहिये। बाधाए अनेक प्रकार की होती हैं। उनके संबध में हमारा इतना ही ज्ञान होता है कि शरीर में संचार होने से जो नाचने लगती है वह बाधा है। परंतु जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म बाधायें होती है उनका परिणाम बोलचाल की आदत में होने वाले परिवर्तनों से लेकर डॉक्टरो को न समझनेवाली बीमारियां पैदा करने तक हो सकता है। इसलिये पुराने जमाने में सिर में तालुरंघ्र के स्थान पर सुगंधित तेल लगाने का रिवाज था अथवा प्रौढ व्यक्ति दाहिने कान में हीना, चंदन, खस, गुलाब या केवड़ा आदि इन का फोया रखते थे। परंतु समाज में लोगों को इसका बोध न होने से वे ऐसे इत्र का फोया रखने वाले व्यक्तियों को विलासी कहते थे। इसलिये इन इत्रों से हम लोग दूर जाकर विदेशी इत्रों का या सेंटस का इस्तेमाल

करने लगे। इनसे आसपास में यद्यपि सुगंध फैलती है परंतु कुदरती इत्तर से जो बाधाओं के निवारण का आसान तरीका बताया गया था उससे हम लोग वंचित हो गये। आप गोमांतक यदि गये होंगे तो आपको ऐसा दिखाई दिया होगा कि सुशिक्षित तथा अशिक्षित इन दोनों वर्गों की स्त्रियां सुगंधित फूलों का उपयोग करती हैं। इसके पीछे भी ऊपर निर्दिष्ट हेतु ही है।

फूलों में जो रजो गुण होता है उसे फूल कब प्रकट करते है? जब किसी व्यक्ति का अंत होने पर उसकी शवयात्रा आदर और सम्मान से निकाली जाती है। उस समय जो फूल चढ़ाये जाते हैं वह रजो गुण का भाव प्रकट करते हैं। इसलिये इन फूलों को कोई भी निर्माल्य ऐसा नामिभिधान नही देते।

इस तरह फूलों का जन्म विकसित होने के बाद यद्यपि उनमें भी हमारे जैसे ही सत्व, रजो गुण और तमो गुण होते हैं फिर भी अलग-अलग कार्य करने के लिये फूल ये गुण कार्यान्वित करते हैं। परंतु हमारे देहिक माध्यम इन गुणों से अंकित होते हुये भी कार्यकारण के अनुसार संबंधित गुणों को कार्यान्वित करने की हम लोगों ने आदत नहीं डाली है। उदाहरण के लिये पूजा के समय फूल सतो गुण प्रकट करते हैं फिर भी पूजक रजो गुण या तमो गुण के अधीन ही होता है।

फूलों को प्राप्त स्वाभाविक जीवन की ओर देखने पर भक्तभाविकों को अपने में वास करने वाले गुणों को ज्ञान प्राप्त करने की उत्सुकता सहजता से उत्पन्न होगी। सब प्राणीमात्रों में आत्मा एक ही है और सब के हित के लिये इह जन्म में जन्म का कुछ कारण है, इसको जान लेना हम मानवो में स्थित सत्य गुणों का प्रधान कार्य हैं। मुझसे जो अधिक ज्ञानी हैं और जो श्रेष्ठ हैं, उनके प्रति पूज्यभाव, इस जन्म में ज्ञान और अज्ञानवश घटित होने वाले दुष्कृत्यों के बारे में भय तथा प्राप्त जीवन अपने स्वयं के विचार-अविचार से तथा ज्ञान अज्ञान से व्यतीत न कर वह भगवान में लीन किस तरह होगा, इन बातों को ध्यान में लेकर ईश्वर को पूर्णतया अर्पण करना यह मेरा

कर्तव्य है, ऐसी चेतना जिस व्यक्ति माध्यम में हमेशा वास करती है, उस गुण को "सत्वगुण" कहते हैं।

हम लोगों ने बार-बार यह पढ़ा है कि मनुष्य के दैहिक स्वरूप में रज, तम और सत्व गुण समाहित हैं। इन गुणों की यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से चर्चा भी की गयी होगी फिर भी जीवनोत्पत्ति विवेचनानुसार मनुष्य जब जन्म लेता है तब देह में पूर्णतया सत्वगुण ही होता है। जन्म प्राप्ति के बाद जीवन का विकास करने के लिये अयोग्य ऐसा कुछ भी भगवान नहीं देंगे। जीवन प्राप्ति के बाद तीन साल तक हम लोग शत प्रतिशत सत्वगुणी होते हैं। रज और तम गुणों को धारण करना आठवें साल से शुरू होता है। इनमें से जो तम गुण है उसकी शुरूआत पांचवें साल से होती है। इसकी जिम्मेदारी वह बच्चे की नही, बल्कि उसके माता पिता की होती हैं। क्योकि माता-पिता के प्रौढ़ अवस्था में ये तीन गुण विषम प्रमाण में पूर्णतः धारण हो चुके हैं। इसलिये प्रायः ऐसा अनुभव होता है कि वे माता-पिता "बाल संगोपन" (बच्चो की देखभाल) ठीक तरह से नही कर पाते हैं। याने बच्चे को इस तरह अन्न, दूध आदि देना जिसके फलस्वरूप अपने संतान ने जन्मतः जो सौ प्रतिशत सत्वगुण स्वयं में लाया है उसकी वृद्धि हो तथा वह गुण बच्चे में अधिकाधिक मात्रा में किस तरह रह सकता है, इसका सोच विचार न कर उस सत्व गुण को अधिकाधिक कम करने का कार्य वे करते रहते हैं। उदाहरण के लिये बच्चो पर हर बार क्रोधित होना उसकी पिटाई करना, आदि जो व्यवहार माँ-बाप करते हैं उसका आघात बाल मन पर होकर, माँ-बाप के क्रोधित होने का जो विषय होता है वह बाल मन पर असर करता है। इस प्रकार का प्रारंभ बचपन से होने लगा तो रज और तमो गुणों का उद्‌भव होना स्वाभाविक रूप से शुरू होता है। वास्तव में हम लोग प्रौढ़ है और बच्चों के जन्मदाता हैं, इसका ख्याल कर और उस बच्चे को योग्य शिक्षा देने का अपना निजी कर्तव्य अपने में निहित सत्वगुण के द्वारा होना चाहिये। मगर ऐसा क्यों नहीं होता है? जन्म के बाद अपने में जो सत्वगुण सौ प्रतिशत था वह गुण आज आप में सिर्फ पच्चीस प्रतिशत ही रह

गया है। इसका कारण यह है कि अपने आयु के अठ्ठारहवें वर्ष तक अपने माता-पिता के डर और अकारण क्रोधित होने के कारण आप में तामस गुण का विकास हुआ है। अठ्ठारहवां साल इंद्रियों का और अवयवों का पूर्ण विकास होने का द्योतक होता है इसलिये अठ्ठारह साल के बच्चों का विषय जीवन न होकर जगत् याने संसार होता है और इससे विषयों के पीछे भागने की उसकी मन:स्थिति उसे बेचैन कर देती है और वह इन अनावश्यक विषयों के कारण अपने मन पर काबू नहीं कर पाता है। इस वजह से हमारे जीवन में तमस गुण पच्चीस प्रतिशत और राजस गुण पचास प्रतिशत इतना पैदा होता है।

मनुष्य को जन्म से ही जो सौ प्रतिशत सत्वगुण प्रदान किया होता है, उसका ठीक से अध्ययन हमसे न होने के कारण उसको हम एक कृत्रिम सी अवस्था प्राप्त करा देते हैं। इसलिये जीवन के विकास के लिये योग्य अवसर इन रजो और तमो गुणों के कारण प्राप्त नहीं होता। कई बार उपासक साधक माध्यम के पास जाकर पूछते हैं कि "आप मुझे भगवान का चिंतन करने को कहते हैं, परन्तु मेरा मन एकाग्र नहीं हो पाता है"। इसके लिये साधक उसको क्या मार्गदर्शन कर सकता है। इसलिये बाल अवस्था से प्रौढ़ अवस्था तक आप अपने जीवन का जो काल व्यतीत करते हैं, उस काल में कम से कम पचास फीसदी सत्वगुण हमारे जीवन के हित के लिये हमें जतन करना चाहिये ऐसा विचार होना चाहिये।

जीवन में रजस और तमस गुणों की आवश्यकता होती है। परंतु इनकी मात्राएं यदि पच्चीस-पच्चीस प्रतिशत होगी तो पचास फीसदी सत्वगुण ऐहिक और पारमार्थिक जीवन का लाभ देने के लिये और उसके सुख और समाधान की अनुभूति दिलाने में मदद करता हैं। ऐसे सत्वगुण का पुनश्च लाभ करने का साधन यद्यपि आप चाहते हो तो आपके जीवन के आसपास चारों ओर जो अनावश्यक विषय उपस्थित है और जिनसे आप मोहित हुये हो उस मोह पर नियंत्रण करना चाहिये। यह मोह जरूरत से ज्यादा ही है। उसे यदि कम किया जाये तो रजोगुण जो पचास प्रतिशत तक बढ़ा है वह कम होकर सत्वगुण स्वयं

ही वृद्धिगत होगा। उसी प्रकार तमो गुण जो पच्चीस प्रतिशत से अधिक बढ़ा है जिसके कारण परिवार में बिना किसी कारण क्रोधित होना मनस्ताप करना, आदि बातें जो हमलोग ज्ञान अज्ञानवश करते हैं, उन्हें केवल किमान आवश्यक मात्रा में ही आचार विचार में लाया जाय तो यह तमोगुण कम होकर सत्वगुण की वृद्धि होगी। इस परमार्थिक उन्नति की नींव भगवान को निर्माण नहीं करना है किंतु उसे हमें खुद ही निर्माण करना चाहिए। प्रौढ़ावस्था में ऐसी नींव तैयार होती है तब उस पर अधिष्ठित होने के लिये भगवान आतुरता से राह देखते रहते हैं। यह बोध सूज्ञ भक्तों को न होने से साधकों से भेंट कर भगवान के दर्शन का, कृपाशीर्वाद का, साक्षात्कार का, आत्मप्रचीति का, आत्मबोध और आत्मज्ञान का बोध कब होगा, इन प्रश्नों की झड़ी शुरू हो जाती है। इन प्रश्नों का सही जवाब गुरूमार्ग में नहीं मिलता है, इसलिये कई सूज्ञ भक्त अपने जीवन की दिशा बदल कर गैर दिशा में अपने जीवन का पवित्र प्रवाह मोड़ देते हैं। यह हमें यह समझ लेना चाहिये कि पारमार्थिक जीवन की प्राप्ति करने की पचहत्तर फीसदी जिम्मेंदारी अपनी खुद की होती है और उसको शक्तिमान करने की केवल पच्चीस प्रतिशत जिम्मेंदारी भगवान की होती है एवं वह उसे खुशी से स्वीकार करता है। जिन्होंने आज तक इस प्रकार से जीवन व्यतीत किया है उनको वह दयावंत प्रभू ने कृपावंत किया है यह आपके ध्यान में आयेगा।

उपरोक्त के मार्गदर्शन में देह में स्थित प्रधान गुण याने सत्वगुण के संबध में तथा उसकी प्राप्ति के लिये क्या दक्षता रखनी चाहिए यह बताया है। तमस गुण के संबंध में ऊपर जो उल्लेख है, उसका प्रमाण केवल जितनी अनिवार्यता है उतनी ही मात्रा होनी चाहिये। यानि पंद्रह प्रतिशत गुण का ही इस्तेमाल होना चाहिये। जब हम लोगों के जीवन में दिक्कतें आती हैं या अचानक किसी संकट का सामना करना पड़ता है तो उसका निवारण करने का कार्य सत्वगुण में निहित भगवान का आशीर्वाद करता है। फिर भी इन दिक्कतों या मुसीबतों का सामना हम सही ढंग से कर पायेंगे या नहीं, ऐसी जो कमी महसूस होती हैं, उसका हमें अभाव न हो और निश्चय से हम उसका प्रतिकार करें इसलिये तमोगुण कार्य करता है।

इसके अलावा आप परिवार में जिम्मेदार व्यक्ति होने के नाते दूसरे सह सकेंगे इतना ही रोब आपको व्यक्त करना चाहिये। मार्गदर्शन पद्धति के अनुसार जो निराकरण पांच या ग्यारह हफ्ते तक पूजनार्थ का है, उसका फल आपको इस मुद्दत में क्यों नहीं मिलता, इसका यह भी एक कारण है। आपके रजोगुण और तमोगुण में जब बढ़ोतरी होती है और सत्वगुण जब प्रसाद पूजन के लिये कम पड़ता है तो आपको जो दिया हुआ कृपाप्रसाद याने श्रीफल है, इसका फल पूर्णतया प्राप्त नहीं होता है।

ऊपर निर्दिष्ठ मार्गदर्शन में "जीवन" यह आपके जिंदगी का प्रमुख विषय होना चाहिये ऐसा अनेक बार बताया गया है। इसका यह स्पष्ट अर्थ है कि आपका राजस गुण कम होना चाहिये। वह जीवन कार्य के लिये दस प्रतिशत ही आवश्यक है। आपके जीवन में आपको अधिकत्तर जीवन परिवार के जो इष्टकर्तव्य हैं उनकी पूर्ति के लिये बिताना हैं। इसलिये दुनियां में जो अनेक विषय है वह आपके नहीं होने चाहिये। इसलिये यह तीनों गुण पचहत्तर सत्वगुण, पंद्रह प्रतिशत तमस गुण और राजस गुण दस प्रतिशत, इस प्रमाण में प्राप्त होने से आपका जीवन विकसित है यह स्पष्ट होता है। ऐसे जीवन का जो लाभ है वह यह है कि दुनियां के अनेक विषयों के लिए आप विषय बनते हैं।

इत्र : पूजा सामग्री में सुगंधित तेल जब भगवान को अर्पित करते हैं तब वह अनामिका से यानि करंगुली के पास के अंगुली से लगाना चाहिये और वह भी भगवान के छाती पर लगाना चाहिये। क्योंकि भगवान की दैविक शक्ति भी हमारे जैसे ही उनके छाती में वास करती है यह इत्र लगाने का सद्हेतु भी हमारे लिये बोधप्रद है। हमलोग अपने जीवन में कितने गुणवान हैं और जीवन सार्थक बनाने के लिये और कितना गुणवान होना चाहिये इसका सिंहावलोकन कोई भी नहीं करते हैं। हरेक व्यक्ति को अपने में निहित कम ज्यादा गुणों के बारे में एक ऐसा अंहभाव होता है कि वह दूसरे लोगों से श्रेष्ठ है। परन्तु ऐसा श्रेष्ठत्व बातचीत में कभी भी प्रतीत नहीं होता है। ऐसे सद्गुण और दुर्गुण वास करती हुई अवस्था हममें मौजूद होकर हम जब भगवान

के सामने बैठते हैं, तब भगवान आपका अनादर न कर, यद्यपि हम लोग दुर्गुणी है, और दुर्गुणों से दूसरों को नीचा दिखाते हैं, तो भी हमारी की हुई पूजा का भगवान सहर्ष स्वीकार करते हैं। इसमें भगवान का हेतु ऐसा बताया जा सकता है "यह मेरा भक्त पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के कारण दुर्गुणी है फिर भी मेरे कृपाशीर्वाद से आज नहीं तो कल निश्चित रूप से गुणवान होकर उसका सुगंध वह दूसरों के कल्याण के लिये परोपकार के रूप में इस्तेमाल करेगा।"

भगवान को जो इत्र समर्पित करना है, उस संबध में भगवान को कौन सा इत्र प्रिय है इसका हमने सोचविचार नहीं किया। केवल भगवान को इत्र समर्पित करना है, इतना ही समझकर आजकल के आधुनिक इत्र यानि अनेक प्रकार के सेन्टस हम इस्मेंमाल में लाते हैं। इससे भी दुर्भागय की बात यह है कि घर में ड्रेसिंग टेबल पर रोज इस्तेमाल के लिये अलग-अलग प्रकार के सेन्टस और वह भी विदेशी, बड़े प्रयास से इकठ्ठा करके रखे होते हैं। मगर भगवान के पूजा के लिये अलग से एक भी इत्र की शीशी नही रखी होती है। दुनियां के सामने खुद को पेश करना है इसलिये जो कपड़े हम परिधान करते हैं वह सुगंधित करने की आधुनिक फैशन हमें बाहर से तो सुगंधित करती है फिर भी हम अंतर्यामी सुगंधित हैं क्या ? यह सवाल हरेक को खुद से पूछना चाहिये।

भगवान को जो इत्र प्रिय है उसमें प्रमुख है - हीना, चंदन, गुलाब और खस। इसका कारण यह है कि इन इत्रों की निर्मिति जिन वनस्पतियों से की गयी है, उन वनस्पतियो की उत्पत्ति व सुगंध मानव निर्मित नहीं है। किन्तु वह भगवान के सामर्थ्य और चमत्कार की साक्षी है। यह सत्य हमारे सामने होते हुये भी, साधक अवस्था के प्रारंभावस्था में होने वाले साधक क्षुद्र अष्टसिद्धि जैसे साधन प्राप्त कर जो चमत्कार समाज में करते हैं और उनके पास यह अद्‌भुत शक्ति याने परमेंश्वर है ऐसा मानकर जो लोग अंधश्रद्धा से अपने देवादियों का पूजन छोड़कर उनके पीछे भागते रहते हैं, उन्हें यह चमत्कार करनेवाला व्यक्ति भगवान है ऐसा समझकर उनके पीछे न भागकर, निसर्ग में भगवान ने जो अपने अद्‌भुत् सामर्थ्य का दिव्य प्रतीक आपको

अनुभव करने के हेतु दिया है, उस अनुभूति को जानकर ऐसी श्रद्धा पैदा करनी चाहिये, कि भगवान को अपना अस्तित्व सिद्ध करने के लिये मनुष्य की जरूरत नहीं है यद्यपि सृष्टि में मनुष्य इस कुदरत का एक अंग है। फिर भी उसका जीवन नियति के अनुसार न होकर कृत्रिम तरीके से ही व्यतीत हो रहा है। निसर्ग की निर्मिती यह भगवान की एकमात्र साक्ष है इसलिये वह अपने दिव्य शक्ति के प्रतिकों को निसर्ग द्वारा व्यक्त करता है। उन्हें व्यक्त करने के लिये भगवान को मानव माध्यम की तनिक भी जरूरत नहीं है।

हल्दी और कुंकुम : पूजन में इन दोनों द्रव्यो का समावेश शास्त्रानुसार हुआ है इसकी महत्ता ऐसी है कि हल्दी और कुंकुम जब हम भगवान को अर्पित करते हैं उस वक्त इन दो द्रव्यों के माध्यम से हम भगवान से यह याचना करते हैं कि, "हे भगवान, इस दुनियां में तू ही सर्व शक्तिमान है, तुम्हारी सत्ता इस दुनिया में अणुरेणु से लेकर ब्रह्मांड तक कार्यरत हुई है और ऐसे कार्य में जो ऋद्धि और सिद्धि का समावेश होता है वह ऋद्धि और सिद्धि तुम्हारी दास है और वह मेरे जीवन के सुख शांति और समाधान के आधार हैं। इसलिये तुम्हारी कृपा से यह आधार मुझे निरंतर स्वरूप में मिलता रहे। ऐसी प्रार्थना कर भगवान को हल्दी और कुंकुम अंगूठा और अनामिका में चिकोरी जैसा पकड़कर अर्पण करना चाहिए। हल्दी और कुंकुम अर्पण करने के बाद अनामिका को चिपका हुआ कुंकुम अपने मस्तक पर लगाना हैं इसका हेतु यह है कि जो ऋद्धि और सिद्धि हमारे पारिवारिक जीवन में अपने कृपाशीर्वाद का आधार बन पाने की अपनी इच्छा होती है, वह आधार होने के लिये हमारा दैहिक माध्यम भी मंगलमय करना चाहिये, तभी की हुई प्रार्थना पूर्ण होती है।

आजकल स्त्रियाँ बना बनाया कुंकुम जो बाजार में बोतल में भरा हुआ मिलता है, उसका आमतौर पर इस्तेमाल करती हैं। उसके कारण यद्यपि स्त्रियों की कुंकुम लगाने की सुलभ व्यवस्था होती होनी फिर भी घर में स्त्रियों के लिये भगवान को हल्दी कुंकुम अर्पण कर ऋद्धि-सिद्धि के लिये प्रार्थना करने की जो जरूरत होती है वह बोतल में भरे हुये कुंकुम से पूरी नहीं होती। इसलिये हरेक स्त्री कंघी कर

बोतल का कुंकुम लगाया तो भी उसके बाद भगवान को हल्दी और कुंकुम अर्पण कर फिर अपने मस्तक पर हल्दी और कुंकुम लगाना चाहिये। तभी परिवार के अंगीकृत देवदेवताओं का इष्ट कृपाप्रसाद परिवारजनों को प्राप्त होता है।

फल समर्पण : यह विधि भी औपचार और उपचार युक्त विधि से करना हैं। जो फल हम भगवान को अर्पण करते हैं वह परिपक होने पर उसे हम लोग भगवान के सामने प्रसाद के रूप में रखते हैं। अर्थात यह पका हुआ फल उसकी तीनों ही अवस्थाओं का पूर्णत्व सूचित करता है। इसी प्रकार "मुझे भी वही तीन अवस्थाएं होते हुये भी मेंरा अभी तक कुछ भी विकास हुआ नहीं है, इसका मुझे बहुत दुख होता है", इस तरह भगवान को निवेदन करने का माध्यम यह फल है। उसको जिस प्रार्थना से और विधि से अर्पण करना है उस विधि को "नैवेद्य" (भोग) कहते हैं।

फल अर्पण करने का दूसरा हेतु यह होता है कि ''मेंने आपकी जो सेवा अभी तक मनोभाव से की है उसका फल मांगना मेंरे हित में है या नहीं यह मैं नहीं जानता, इसलिये मेंने जो सेवा की है वह मनोभाव से स्वीकार कर उसका योग्य फल आपकी इच्छानुसार दें। क्योंकि जीवन में अज्ञान के कारण में जिसकी मांग कर रहा हूं वह मेंरे हित में है या नहीं इसका बोध मुझे नहीं है। मेंने अपनी इच्छानुसार फल प्राप्ति के लिये, अपेक्षा की है, यदि इससे अधिक फल आपको मुझे देना हो तो मेंरी अपेक्षानुसार मांग करने पर मेंरी अपेक्षानुसार ही फल मुझे मिलेगा", ऐसी सद्भावना रखकर जो फल हम अर्पण करेंगे उसे "निरपेक्ष भक्ति" कहते हैं।

यह फल भगवान को अर्पण करने के बाद उसका रूपांतर प्रसाद में होता है यद्यपि वह हमें दिखायी नहीं देता। ऐसा प्रसाद जब घर के सब लोग ग्रहण करते हैं तब उन परिवरजनो से प्रसाद के लिये ऐसा प्रतिसाद होना चाहिये कि, "हे भगवान, आपका दिया हुआ प्रसाद जिसे हम लोगों ने ग्रहण किया है, उसके सामर्थ्य से मुझे या मेंरे परिवार के किसी व्यक्ति को जीवन में आधि-व्याधी, दुख, अशांति,

कर्मानुसार अनुकूल-प्रतिकूलता, धननाश, विद्यानाश, संततिनाश आदि दुष्ट भवचक्र की पीड़ा भुगतनी नहीं पड़ेंगी। यह मेरा दृढ़ विश्वास है"।

अनेक भक्तगण भगवान को प्रसाद के रूप में पेड़ा बरफी, लड्डू आदि मिष्टान्नो का भोग चढ़ाते हैं। वास्तन में इन मिष्टान्नों के सेवन की हमारी अपनी वासना होती है। किन्तु भगवान को निमित्तमात्र बनाकर हम लोग उस वासना को पूरी कर लेते हैं। यद्यपि हमलोग अपनी वासनानुसार इन मिष्टान्नों को प्रसाद के रूप में भगवान के सामने रखते हैं फिर भी भगवान और उसका देवत्व इच्छा स्वरूपी है। वह वासनारूपी कदापि नहीं होती है। इसलिये यद्यपि हम लोग यह सोचते हैं कि भगवान ने प्रसाद ग्रहण किया है, प्रत्यक्ष में वैसा नहीं होता, क्योंकि भगवान का धर्म प्रकृति पर निर्भर है। इसलिये जो कुदरती होगा उसका ही सेवन करना और प्रसाद रूप में हमें लौटाना, यह उनका धर्म है। इसलिये नैवेदय में दूध-चीनी और इच्छित फल यही सर्वश्रेष्ठ है।

आरती उतारना : अभी तक किये हुये निराकरण में प्रमुखत: यह सूचित किया है कि निरांजन (घी का दीया) जो जलाना है उसमें शुद्ध घी इस्तेमाल करना चाहिये। यह निरांजन पूरा भरे इतना घी न हो तो निरांजन की ज्योति कम से कम पाँच मिनट तक जलती रहे इतना अल्पतम घी अवश्य डालिये। वास्तव में ज्योति जलाने के लिये कोई भी स्निग्ध पदार्थ जैसे मोम या जिसे वनस्पति घी कहते हैं इनका इस्तेमाल आज सर्व सामान्यत: किया जा रहा है, और उसी से दीया जलाने का समाधान भी शायद हमें मिलता हो। ऐसा होते हुये भी कार्य पद्धति में शुद्ध घी का दीया जलाने को जब कहा जाता है तब उसके पीछे कोई महत्वपूर्ण कारण होना चाहिये।

जब आप भक्तभाविक अपने इष्टदेवदेवताओं का पूजन विधि ऊपर निर्दिष्ट निवेदन के अनुसार पूर्ण करते हैं तब आप भगवान के सामने अपना स्थूल देह लेकर बैठे होते हैं, इतना ही ज्ञान आपको होता है। किन्तु इस स्थूल देह में और दो देह हैं, वे हैं, सूक्ष्म देह और कारण देह वे न हमें दिखाई देते हैं और ना ही उनकी हमें

अनुभूति होती है। परंतु उन देहों का समावेश इस पूजा विधि में होना जरूरी है। इसलिये ऐसा बोध सूचित किया है कि तांबे या पीतल का निरांजन पंचमहाभूतात्मक स्थूल देह का सूचक है, और जो घी है वह सूक्ष्म देह याने पंचतन्मात्र का प्रतीक है और दीये में रखी हुई बाती कारण देह स्वरूप है इस बाती को जलाने के बाद जो प्रकाश भक्त और भगवान के बीच में पड़ता है उसका प्रतीक यह है कि, "हे भगवान, यह निरांजन (दीपक) जो मैं अपने प्रतीक के रूप में जला रहा हूँ, इसके जलाने के बाद जो प्रकाश तुम्हारे और मेरे बीच फैला हुआ है वैसी ही अवस्था मेरे तीनो देहों की अपने कृपाशीर्वाद से एकाकार कर दें"। उससे मेरे जीवन का प्रकाश इस दुनियां में सब तरफ फैलकर मुझे इस प्राप्त जन्म का कारण, औरों के लिये मेरे हाथ से जो सेवा होगी उससे मालूम होगा।

इस विधि में शुद्ध घी को जो महत्व दिया गया है इसका कारण यह है कि यह देह पंचभौतिक तत्वों से निर्मित है और उसके विकास के लिये पंचभौतिक तत्वों की ही आवश्यकता होती हैं। इसलिये हम लोग अन्न, पानी, दूध, दही, घी आदि सेवन कर इस पंचभौतिक शरीर की देखभाल करते हैं। इसी प्रकार इस जन्म को विकसित कर उसकी देखभाल करने का साधन इस दीपक में डाला हुआ घी है। घी गाय या भैंस के दूध से निकलता है और वह उनके पंचभौतिक तत्वो का सत्वगुण हैं। इसके कारण इससे जलायी गयी ज्योति हममें विलीन होने में कोई बाधा नहीं आती। मगर यह गुणधर्म आजकल के कृत्रिम घी में नहीं है। इसलिये इस घी से निरांजन जलाया तो वह न जलाने के बराबर होगा क्योंकि उसका उपयोग जीवन पोषक बनाने में नहीं होता है। शुद्ध घी की निरांजन की ज्योति खुद जलकर औरों को प्रकाश देने का जो महत्कार्य करती है वैसा ही हम लोगों के हाथ से हो ऐसा बोध सूचित किया गया है। थाली में रखे हुये निरांजन से तीन बार पांव से लेकर पांव तक गोलाकार से भगवान की आरती उतारनी चाहिये। इस तरह तीन बार उतारने का हेतु का संबंध तीनो ही देहों के हित संबंधों से है। इसके अलावा और एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। वह यह है कि भगवान के सामने बैठने के बाद भगवान का प्रतीक

और तस्वीरों में जो वातावरण होता है, उस वातावरण में हमारे जन्मकर्म के अशुद्ध वलय हमारे पूजनादि विधि में बाधा निर्माण करने के लिये उपस्थित होते है, उनको दूर कर भगवान ने वलय के रूप में भेजा हुआ कृपाशीर्वाद हमें सहज रूप से प्राप्त होने के लिये यह आरती उतारनी है।

अक्षताएं : पूजा सामग्री में कुंकुम लगाकर कुछ चावल के दाने रखे जाते हैं उनको पूजा विधि में अक्षताएं कहा जाता है। पूजन के आरंभ में जो अक्षताएं आपने भगवान को अर्पण की है, उसके द्वारा आपने भगवान को पूजा विधि का स्वीकार करने का आवाह्न किया होता है। अब जो अक्षताएं आपको चढ़ाना है वह ''उपचार'' के रूप में होती है।याने समर्पित अक्षताओं का हेतु खुद को मालूम होने के लिये अर्पित करना है। यह जानकारी इस तरीके से करनी है कि ''हे भगवान, यह सब जो विधि में कर रहा हूँ यह कोई मेंरा बड़प्पन नहीं है। इससे कई अधिक बातें मेरे जिन्दगी में आप मेरे हित में करते आ रहे है और आप आगे भी करेंगे उसकी अदायगी मुझ से किसी भी जन्म में नहीं हो सकेगी। इस उपकार की अदायगी मेंने यथाशक्ति और यथाज्ञान से अर्पित किये हुये अक्षता के चावल के एकमात्र दाने इतनी अल्पतम है कृपया आप उसका स्वीकार करें''।

भगवान का पूजन ऊपर वर्णन किये जिन-जिन साधनों से करना है वह सब पूजा सामग्री प्रत्येक व्यक्ति अपनी उसकी हैसियत या क्षमता के अनुसार प्राप्त कर सकेगा यह संभव नही है। फिर भी जो हमारी हैसियत है उसके अनुसार सामग्री पूजा में होनी चाहिये। यह मानते हुये भी प्रायः ऐसा देखा जाता है कि पूजा सामग्री लाने की हमारी हैसियत नहीं है इसलिये पूजनादि विधि के तरफ हम ध्यान नही देते हैं। लेकिन भगवान को पूजा सामग्री की अपेक्षा भक्तियुक्त भावभावना ही दिखावे से ज्यादा प्रिय है। इसलिये भगवान के प्रति भक्तियुक्त भावभावना निर्माण करने की हमारी हैसियत नहीं है, इस तरह से कहने का कोई कारण नहीं है। भगवान के प्रति भक्तिभावना और उसे भक्तिभाव से व्यक्त करने की भावना को नित्य रूप से करने की आदत यदि हम ड़ाल ले तो प्रातःकालीन पंद्रह मिनट की हुई

पूजा के आनंद का अनुभव रात को सोने के समय तक मिलता रहता है। दिनभर के ईष्ट कर्त्तव्य करते समय आपके मुंह से गलती से भी ऐसा शब्द नहीं निकलेगा कि "आज मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। "क्योंकि सुबह पद्रंह मिनट पूजन में व्यतीत किया हुआ समय देहिक आनंद की अपेक्षा आत्मिक आनंद का होने से वह द्विगुणिव होना यह उसका गुणधर्म हैं"। ऐसा आनंद प्राप्त कर लेने के बाद मनोरंजन के लिये नाटक, सिनेमा, रेडियों आदि की जो जरूरत हमें होती है, वह न होकर आप पैसों की बचत कर सकते हैं। इसके अलावा इन अक्षताओं को समर्पित करने का दूसरा बोध है कि, "मैंने अपने हैसियत के अनुसार केवल अक्षता के एक दाना के बराबर जो भी सेवा की है, उसे आप स्वीकार कर कृपाशीर्वाद दें।"

समाज के हरेक व्यक्ति का जीवन भिन्न-भिन्न विषयों के स्तर पर व्यतीत होता है। किसी को अपेक्षा से अधिक धन, विद्या, नाम या प्रतिष्ठा की प्राप्ति होती है। वास्तव में इन विषयों के प्राप्ति के बाद हम मानवों ने संतुष्ट मन से उस भगवान का एहसान मानकर, अन्य लोगों की अपेक्षा हमें जो अधिक मिला है, उसी में से यदि दानधर्म, देवधर्म और परोपकार और वह भी एहसान न मानकर, कर्तव्य बुद्धि से करेंगे। तो अन्य लोगों की जो जरूरतें हैं उन्हें हम आसानी से पूरी करते हुये अनजाने में पुण्य का संचय भी करेंगे। किन्तु इसके विपरीत, यह व्यक्ति समाज में अन्य लोगों से भिन्न है, इस तरह की प्रतिष्ठा निर्माण कर, व प्राप्त सुखों से अहंकार निर्माण कर, अन्यों को तुच्छ और नीचा दिखाते हैं। ऐसे सब सुखों की प्राप्ति, न मांगते हुये अनजाने में परोपकार से देने वाला भगवान हमारे से भी कई गुना श्रेष्ठ और धनवान हैं। उसके सामने भक्तिभाव से बैठकर निष्ठापूर्वक और नम्रतापूर्वक कहना चाहिये, कि हे भगवान आपने जो सब कुछ मुझे दिया है वह मेंने आपको अर्पण किये हुये अक्षता के एक दाने से लाख गुना अधिक है। इसलिये आप मेरे गर्व का हरण करे और जो "मुझे मिला है वह मेरा खुद का ही है और उसका उपभोग लेने का केवल मेंरा ही अधिकार है" ऐसा स्वार्थी विचार मेरे मन में पैदा न होने दें"

पूजनादि विधि के लिये महत्वपूर्ण सामग्री की जानकारी आप भक्तों को करा दी है। भगवान के पास नंदादीप जलाना सभी को जगह के अभाव के कारण संभव नहीं है। इसलिये इस संबंध में विशेष मार्गदर्शन नहीं किया है। अगर संभव हुआ तो सुबह पूजा के समय और संध्याकाल में नंदादीप जलाना चाहिये। अगरबत्ती और धूप सुबह और शाम को जलाने से घर में प्रसन्न वातावरण पैदा होता है। यह जिसको जहां तक संभव हो करना चाहिये।

पंचउपचार विधि : षोड़शोपचार तरीके से पूजन होने के बाद पूजन नित्य रूप से हम करते हैं उसके बारे में हमें निरपेक्ष रहना चाहिये। लेकिन पूजा करने वाले व्यक्ति में सहजभाव से भगवान के लिये अथवा भगवान से कुछ मांगने के संबंध में निरपेक्ष भावना होगी, ऐसा नहीं है। इसलिये पूजनादि विधि करने के बाद एक तुलसीपत्र या बिल्वपत्र में अक्षता और हलदी कुंकुम के साथ हाथ में लेकर भगवान को अर्पण करना चाहिये। इस समय यदि मंत्रपुष्पांजली मुखोत्गत हो तो उसका उच्चारण कीजिये, नहीं तो "श्रीकृष्णार्पणमस्तु" कह कर मंत्रपुष्पांजली याने तुलसी या बिल्वपत्र अक्षता, हलदी कुंकुम भगवान को अर्पण कीजिये। ऐसा करने से यद्यपि आप पूजा करते हैं उस वक्त आपकी मुसीबतें या ऐहिक अपेक्षा के बारे में सोचते होंगे, फिर भी इस पुष्पांजली के समर्पण विधि से आपकी पूजा निरपेक्ष हुई यह भावना साकार होती है।

इसके पश्चात इष्टदेवता को कोई स्त्रोत या कवच या मंत्र का उच्चारण कीजिये। इसमें इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जिन देवताओं के मंत्र बीजाक्षरी है, उसका उच्चारण नहीं करना चाहिये। यह मंत्र साधक अवस्था में सिद्धवस्था प्राप्त व्यक्ति ने सिद्ध किये हो और वह दीक्षा विधि के रूप में आपको दिये हो तो ही इन बीजाक्षरी मंत्रों का लाभ आपको होता है। अन्यथा सुलभ और आसान मंत्रों का उच्चारण ही आपको हितकर और अल्पकाल में यशप्राप्ति देनेवाला है। इसलिये उसका ही उच्चारण करना चाहिये अथवा गुरूनाम का स्मरण करना चाहिये।

कुलाचार, कुलोपासना

अन्नशुद्धि :

कुलधर्म करने की भूमिका विस्तार से बतायी गयी है अब "कुलाचार" में जिन बातों का समावेश होता है, उसके बारे में जो निवेदन है वह भी महत्त्वपूर्ण है। जो अन्न हम लोग ग्रहण करते हैं उसके सेवन की तथा पाचनादि क्रिया होने के बाद उसका रक्त में रूपांतर होता है और उसकी आपूर्ति शरीर में आचार-विचार के लिये होती है। इसलिये जिस अन्न को हम लोग प्रतिदिन ग्रहण करते हैं, वह पवित्र होना चाहिये। घर की स्त्री जो खाना पकाती है, उसे कभी भी नहाने से पहले नहीं पकाना चाहिये। नहाने के बाद खाना जिस पर पकाना है, चाहे वह गैस का चूल्हा हो, कोयले की अंगीठी हो, उसे रोज सुबह गीले कपड़े से पोंछ लेना चाहिये, उसके बाद ही उसपर खाना पकाना चाहिये। आजकल घर-घर में कुकर में खाना पकाने का रिवाज है, इसलिये प्रधान अन्न कौन सा पकाया जाना चाहिये इस बारे में सूज्ञ गृहिणियों को इसका ज्ञान हुआ है, ऐसा नही लगता क्योंकि पाक-शास्त्र में प्रधान अन्न को पहले पकाना चाहिये, ऐसा शास्त्राधार है। इसलिये पहले चावल पकाये, बाद में दाल अथवा सब्जी और अंत में रोटियां, इस क्रम से भोजन पकाना चाहिये। आजकल कुकर में खाना पकाने का रिवाज है। दाल गलने में देर लगती है इसलिये कुकर में उसे सबसे नीचे रखकर उसके ऊपर चावल रखे जाते हैं। यह सच है, फिर भी इस तरह भोजन पकाना शास्त्र शुद्ध सिद्ध नहीं होता है। इसलिये जहां तक हो सके चावल पहले पकाने चाहिये क्योंकि चावल का संबंध इहलोक से परलोक तक है।

खाना पकाने के लिये जिस ईंधन का हम लोग इस्तेमाल करते हैं उसके अलावा कोयले की छोटी सी अंगीठी होनी चाहिये। उसे रोज धोकर उसमें थोड़ा सा कोयला जलाना चाहिये। क्योंकि हम जिन

आधुनिक उपकरणों का, जैसे गैस का चूल्हा, बिजली की अंगीठी अथवा स्टोव का इस्तेमाल करते हैं, उन्हें "अग्निदेवता" नहीं कहा जा सकता। कोयले से जो अग्नि प्रज्वलित होती है, उसे ही अग्निदेवता कहा जाता है। इसका हेतु यह है कि, हमारे शरीर में अन्न पाचन की जो क्रिया होती है वह जठर के माध्यम से होती है और जठर माध्यम अग्नि स्वरूप है। इसलिये जो अन्न हम लोग सेवन करते हैं उसका पाचन होता है। जिस अन्न का हम सेवन करते हैं, अगर वह पवित्र न हो और पेट में चला जाए, तो उससे पेट में वात विकार से लेकर बद्धकोष्ठ तक रोग हो सकते हैं। इन रोगों के निवारण के लिये हमें डॉक्टर के पास जाकर दवाओं पर बहुत सारा पैसा खर्च करना पड़ता है। किन्तु पवित्र अन्न का सेवन करने से इन रोगों से छुटकारा मिलता है। इसलिये पहले पकाये गये चावल से थोड़े से चावल लेकर उनको एक थाली या कटोरे में डालकर ऊपर थोड़ा घी, दही या दूध डालकर, जो कोयले की अंगीठी जलायी है, उसको हल्दी कुंकुम लगाकर, उसमें जलाये गये अग्नि को पांच पंचप्राण आहुति, बीच की दो उंगलियां और अंगुठे की चिकोटी से डालनी चाहिये। आहुति देते समय "प्राणाय स्वाहा" अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, ब्रह्मण्ये स्वाहा हम कहते हैं, ये पंचप्राण हमारे शरीर के प्रधान तत्व हैं। यह पंचप्राण अन्न व श्वास की पूरक क्रिया से कार्य करते हैं। इसलिये उनको पवित्र अन्न का लाभ कर देने से हम लोग बीमारी से मुक्त होकर और निरोग और स्वस्थ होते हुये दीर्घायु प्राप्त करते हैं।

खाना पकाने के बाद पहले भगवान को भोग लगाना होता है। इस नैवेद्य का मतलब यह नहीं है कि जो अन्न हम खाने वाले हैं, उसे थाली में परोसकर भगवान के सामने रखना है। किन्तु यह थाली भगवान के सामने रखने से पहले उस स्थान को शुद्ध करने के लिये एक चौकोर मंडल बनाना चाहिये। यह मंडल गोलाकार नहीं होना

चाहिये, क्योंकि ऐसा मंडल केवल श्राद्ध विधि में दिवंगत व्यक्तियो को नैवेद्य अर्पण करने के लिये ही बनाया जाता है। थाली में सामने दाल चावल परोस कर भगवान के सामने चौकोनी मंडल पर इस तरह रखना चाहिये जैसे भोजन के समय अपने सामने रखते हैं। पीढ़ेपर बैठकर दो बार आचमन कर हाथ में एक आचमनी कलछी पानी लेकर वह पानी दो बार बायें से दाहिने हाथ की ओर फेरना चाहिये। यह क्रिया करते समय मुख से पंचप्राणो का उच्चारण करना चाहिये। तीसरी बार दाहिने हाथ पर उदक छोड़ना चाहिये। इसके बाद दो बार एक चौथाई ज्वार की या गेहूं की रोटी लेकर उसपर थोड़ा सा चावल और चटनी परोसनी चाहिये। रोटी के एक टुकड़े पर परोसे गये अन्नपर बीच की दोनों उंगलियों से पानी छिड़कना चाहिये और उसे आंगन में रखना चाहिये। यद्यपि इसको "वास्तुनैवेद्य" कहा जाता है, फिर भी वास्तव में वह वास्तुनैवेद्य नहीं होता है। हमारे रिहाइशी मकान में जो देवदेवता होते हैं उसमें ही उस वास्तु का समावेश हुआ होता है। भगवान को जो हम नैवेद्य अर्पण करते हैं, उसमें वास्तु-नैवेद्य का पहले से ही समावेश हो चुका है। हम जो नैवेद्य आंगन में रखते हैं, वह इसलिये कि हमारे घर के बाहर के वातावरण में असंख्य आत्मायें अन्न की वासना से घूमती है। उनको उस वासना से मुक्ति दिलाने के लिये हमारी इस थोड़ी सी सेवा से जो सहायता होती है, यह अज्ञात परोपकार ही है। बहुत सारे परिवार इस तरह से अन्न बाहर रखने में केवल इसी कारण संकोच करते हैं कि हमारे पड़ोसी क्या कहेगें? पड़ोसियों की शंका-आंशकाओं के भय से हम अन्न को खिड़की के बाहर या छज्जे में रख देते हैं। लेकिन हम जो अन्नदान करते हैं उसे वास्तु में रखने से अन्नदान का उद्देश्य पूरा नहीं होता। उसे वास्तु से बाहर ही रखना चाहिये।

रोटी का दूसरा टुकड़ा, जो हमने अलग निकाल रखा है, उसे वैसा ही रखकर जब कोई भिखारी भीख मांगने आता है उसे देना

चाहिये। उसका कभी भी आगे बढ़ो ऐसा कह कर अनादर नहीं करना चाहिये। उसके कर्म के कारण उसको आज घर-घर जाकर अन्न मांगने की गति प्राप्त हुई है। यह बात सच है, तो भी हम भी उन भिखारियों में से ही एक भिखारी हैं, यह बात नहीं भूलनी चाहिये। क्योकि कर्म के कारण जैसे वह घर-घर भीख मांगता है, उसी प्रकार हम अपने कर्मों को अनुकूल कराने के लिये भगवान के सामने बैठकर याचना करते हैं। किन्तु इतना तात्विक विचार हमको किसी के द्वारा सूचित न किये जाने से हमें जो अन्नदान का परोपकार करना है, उसका पुण्य या समाधान जोड़ने के बजाय, हमारे ही कष्टार्जित अन्न का अभिशाप पाने के लिये हम जिम्मेंदार होते हैं। वह किस कारण से? क्योंकि भिखारी शब्द का उच्चारण करने से उस शब्द के प्रति हमारे मन में कदापि आदरभाव निर्माण नहीं होता है। दरवाजे पर इस अवस्था में खड़ा मनुष्य मेरे जैसा ही मनुष्य है, यह महसूस न होने से, थाली में बचाखुचा अन्न हम फेंकना नही चाहते इसलिये उसे परोसते हैं। यह अन्न जूठा है यह बात वह जानता है। किन्तु दोपहर बारह बजे भूख मिटाने के लिये जिस अन्न की उसको जरूरत है उस भूख पर नियंत्रण रखना उसके काबू में न होने से वह उस परिस्थिति के कारण लाचार होता है। वह यह अन्न अपनी दोपहर की भूख मिटाने के लिये विवश होकर खाता है। लेकिन हमने जो अन्न परोसा है वह जूठा होने के कारण, स्वाभाविक रूप से वह दोष हमारा है। घर-घर भीख मांगनवाले मनुष्य को "भिखारी" कहने का रिवाज हमने ही डाला है। लेकिन इससे पहले हम भी नौकरी, धंधा और व्यवसाय के लिये दर-दर भटकते रहते थे। अगर आपको भी "भिखारी" कहा जायेगा तो क्या आपका मन नौकरी या व्यवसाय में लगेगा? इसलिये जो अन्न आप हम खाते हैं उसमें दूसरे का जो हिस्सा है, वह उन्हे देते समय आप ही उसे स्वयं के लिये स्वीकार कर रहे हैं ऐसी स्वच्छ भावना से जब आप उसे देंगे तो जिंदगी में अन्न और वस्त्रों की कमी आपको कभी महसूस नही होगी।

वास्तु पूजन :

रोज स्नानादि विधि कर, सुगंधित साबुन लगाकर हम लोग अपना शरीर स्वच्छ और शुद्ध रखते हैं। उसी प्रकार बुद्धि, मन और चित्त शुद्ध हो इस हेतु से देवदेवताओं की पूजा अर्चना करते हैं। किन्तु जिस वास्तु में यह सब विधि करते हैं उस वास्तु का कृपाशीर्वाद "तथास्तु-तथास्तु" इस तरह मिलना चाहिये। वह वास्तु भी स्वच्छ रखनी चाहिये क्या इसका आपने कभी विचार किया है? रिहाइशी मकान को साल-दो-साल में केवल रंग-रोगन करने से यह वास्तु शुद्ध नहीं होती। जिस मकान में हम रहते हैं उसकी चार दीवारी, ठंडी गरमी तथा बारिश से हमारा बचाव करने के लिये है। किन्तु जिस घर में हम चलते फिरते हैं उस घर की अपनी पाव तले की भूमि तथा उस मकान की छत इन में वास्तु का सत्यतः वास्तव्य होता है और यहाँ वह वास्तु कृपाशीर्वाद के आवरण के रूप में निवासी होता है। इस कृपाछत्र की देखभाल परिवार के जो व्यक्ति पवित्र हेतु से और आदरबुद्धि से करते हैं उस व्यक्ति को यह वास्तु इस संसार में "छत्रपति" जैसी पात्रता देकर लब्ध प्रतिष्ठित बनाती है। इसलिये वास्तु की शुद्धता रखना अत्यावश्यक है। इस शुद्धता के लिये सुबह उठने के बाद पहले झाडू लगाना चाहिये। पुराने जमाने में यह काम घर की स्त्री करती थी किन्तु आजकल यह काम नौकरों से करवाते हैं यद्यपि उनके कष्ट का मुआवजा देकर यह काम हम करवाते हैं। फिर भी जीवन समृद्ध और सुखी करने की जो "कुंजी" अनादिकाल से सूचित की गयी है, उसका लाभ हम नहीं ले पा रहे हैं। जब अपने परिवार सदस्यों के अनावश्यक दोष, परमेश्वर कृपाशीर्वाद रूपी झाडू से निकालते हैं तब उनको कचरा निकालने में कभी कोई न्यूनता महसूस नही होती है, न उस काम के लिये उन्होंने किसी सेवक की नियुक्ति की होती है। इसी तरह घर के स्त्री को घर का कचरा निकालना चाहिये ऐसा सूचित किया है। यदि ये सत्य है तो फिर अपने स्वयं के

परिवार के हित में जो आसान मार्ग होते हैं, उनका विचार शास्त्रीय दृष्टिकोण से न कर हम लोग, सुख प्राप्त करने के लिये कठिन मार्ग का क्यो अवलंब करते हैं?

घर में स्त्रियों द्वारा झाड़ू लगवाने का दूसरा हेतु यह है कि दिन भर घर में काम करने में व्यस्त रहने के कारण उनको अपने शरीर संवर्धन के लिये जो व्यायाम आवश्यक होता है वह संभव नही होता। नित्य व्यायाम करने से शरीर तंदुरूस्त रहता है, इसलिये रोज सुबह झाड़ू लगाने से उनको आसानी से व्यायाम मिलता है किन्तु इस आसान मार्ग का भी लाभ हमसे नही उठाया जाता है। शरीर का मोटापा आने पर या पेट के बढ़ने पर उस के पश्चात् वजन कम करने के लिये जो दवादारू करने का फैशन है, उसपर इस तरह काम करना यह "रामबाण" इलाज है। अगर पूरे घर में झाड़ू लगाना स्त्री के लिये संभव नही है तो कम से कम भगवान के सामने की जगह और रसोईघर में झाड़ू लगाना चाहिये।

आजकल आधुनिक पद्धति और नये वास्तु शास्त्र के कारण घर के दरवाजों में दहलीज और चौखट नही होती। चौखट में दहलीज होना इस बात का प्रतीक है कि हमारे घर में अनाहुल रूप से प्रवेश करनेवाले जीवन के दुष्कृत्यों और दुष्कर्मों का घर में प्रवेश रोकने के लिये दहलीज यह एक "लक्ष्मणरेखा" जैसी होती है। इसलिये स्त्री को नहाने के बाद भगवान के पूजास्थान को साफ कर उस स्थान पर हल्दी कुंकुम का स्वास्तिक निकालना चाहिये और जो आपके घर का प्रवेश द्वार हो उसे गीले कपड़े से साफ कर दोनों ओर हल्दी-कुंकुम के दो स्वास्तिक बनाने चाहिये और दो-दो खड़ी रेखायें ऊपर से नीचे निकालनी चाहिये। इसका उद्‌देश्य यह है कि जिस घर में हम रहते हैं उस वास्तु में ऋद्धि-सिद्धि का निवास हमेशा के लिये रहे अर्थात् विद्या और धन हमारे परिवार में हमेशा बना रहे।

समाज में अनेक व्यक्तियों का ऐसा मानना है कि अपनी आमदनी के अनुसार मकान बनाने की अपनी हैसियत बन जाने पर

हम मकान बनाते हैं। गृह प्रवेश के पूर्व वास्तु शान्ति आदि विधि कर हम लोग उसमें रहने जाते हैं। भविष्य में इस वास्तु में दुख और अशांति पैदा होने पर जब आप मार्गदर्शन के लिये आते हैं तब आपको मकान की वास्तुशांति हुई या नहीं? यह सवाल पूछा जाता है, तो आप कहते हैं कि उसे करने के बाद ही आपने गृह प्रवेश किया है। किन्तु एक बार वास्तुशांति करने से ही उस वास्तु का मांगल्य जिंदगीभर आपको अनुभव करने को मिलेगा, ऐसा नही है कारण उसकी देखभाल करने के लिये जो अच्छे आचार और विचार परिवार में होने चाहिये, वह नहीं होते हैं। उदाहरणार्थ आजकल कोई भी स्त्री मासिकधर्म का आवश्यक बंधन अपनाती नही है और न ही उन्हें मिलने के लिए आनेवाली महिलायें। इस वजह से वास्तु का सामर्थ्य धीरे-धीरे कम होता जाता है और विद्या संपत्ति भी कम होती जाती है आजकल के जमाने में जगह के अभाव से घर की शुद्धता रखने में जो यह अड़चन पैदा होती है उसके लिये सबसे आसान हल यह है कि घर में गोमूत्र हमेशा रखना चाहिये। जो स्त्रियाँ मासिकधर्म का बंधन नहीं रख पाती वे चौथे दिन सिर से नहाने के पश्चात् एक बर्तन में पानी ले, उसमें हल्दी कुंकुम डाले और उसमें चार बूंद गोमूत्र के मिला दे। हाथ में तुलसी का पत्ता लेकर इस शुद्ध जल को दाहिने हाथ से पूरे घर भर में छिड़क दें। यह क्रिया, जो स्त्री मासिकधर्म के बंधन में होती है, उसके द्वारा होना आवश्यक है। क्योंकि उसने मासिकधर्म के बंधनों का पालन न करने से घर में जो अशुद्धि पैदा की है, उसे वही दूर कर सकती है। इस क्रिया को अन्य किसी दूसरे के करने से दोष दूर नही होता है।

पुराने जमाने में वास्तु शुद्ध रखने की एक और दूसरी क्रिया की जाती थी। लेकिन वह आज के आधुनिक जमाने में सभंव न होने से उसका मार्गदर्शन करना आवश्यक है। वह है सुबह-सुबह आंगन में जल सिंचन करना।

इसके अलावा हर पूर्णिमा और अमावस्या के दिन घर के प्रमुख व्यक्ति को देवदेवताओं का पूजन करने के बाद जिस थाली से भगवान की आरती उतारी हो उसी थाली में चंदनलेप, फूल, अक्षत और निरांजन आदि सामग्री रखकर घर के चारों कोनों का पूजन करना चाहिये। उसका पूजन विधि इस प्रकार है। हर कोने में तीन कलछी पानी ड़ालिये। उसपर अक्षतता समर्पित कर चंदनलेप और फूल अर्पण करे और उसके बाद निरांजन से आरती उतारें। इस तरह पूर्व और दक्षिण दिशा से निर्धारित कोने के पूजन से आरंभ कर आखिरी में उत्तर और पूर्व दिशा से निर्धारित कोने पर वापस आते हुए उस कोने का पूजन करें। ऐसा पूजन करने से इस आसान निराकरण से आपके जीवन में रूढ़िगत जो बंधन हैं उनसे श्रीगुरू ने आपकी मुक्ति की ही हैं, इसके अतिरिक्त आसान मार्गदर्शन से आपका जीवन समृद्ध करने का भी मार्ग सूचित किया है। इससे होने वाले लाभ का क्या अर्थ है इसकी अनूभूति तो अनुभव लेने के उपरांत ही होगी।

आजकल शहरों में गोमूत्र मिलना मुश्किल हैं। गोमूत्र के अभाव से आपकी वास्तु शुद्ध नहीं होगी, ऐसा नही समझना चाहिये। ऊपर निर्दिष्ट शुद्धोदक में यानि पानी में हल्दी-कुंकुम, चंदनलेप और फूल तुलसीपत्र से सिंचन करने से भी वास्तु की शुद्धता होती है।

ऊपर निवेदित वास्तुदेवता के शुद्धकरण की जो आसान पद्धति बतायी है इसके अतिरिक्त पुराने शास्त्रों में जो पद्धति बतायी गयी है वह यह है कि, हमारे आवासीय वास्तु की वास्तुशांति हर बारहवें साल के बाद करनी चाहिये। जब हम नया मकान बनाते हैं उस वक्त जो विधि होती है उसको "वास्तु प्रतिष्ठा" कहते हैं, वास्तुशाति नहीं। इसलिये जब गृह प्रवेश के आंरभ में इष्टमित्र और रिश्तेदारों को आमंत्रित किया जाता है उस समय वास्तुशांति के लिये या वास्तु प्रतिष्ठा विधि के लिये निमंत्रण देना चाहिये। इससे हमारे गलत निमंत्रण से वास्तु स्थापना में जो न्यूनता आती है वह न आकर

वास्तुस्थापना के लिये निमत्रंण देने से साथ-साथ वास्तुदेवता का भी आवाह्न किया जाता है।

इस तरह नूतन गृह में प्रवेश करने को "वास्तुशांति विधि" कहने का जो रिवाज है वह गलत है। आपके मकान में निवास करने के पश्चात थोड़े अर्से के बाद, जब विद्या और संपत्ति आदि सुखों में कमी आती है तब वास्तु के सामर्थ्य में हमारे अशुद्ध आचार-विचार से जो न्यूनता आती है, उसे दूर कर वास्तु को फिर एक बार वही सामर्थ्य प्राप्त कराने के लिये "वास्तुशांति विधि होती है। वह विधि हर बारहवें साल के बाद या परिवार की तीसरी पीढ़ी के सज्ञान होने से पहले करनी चाहिये। इसका अर्थ जब किसी को पहली कन्या हो तो उसकी संतान तीसरी पीढ़ी नहीं मानी जाती, पुत्र की संतान को तीसरी पीढ़ी मानते है।

इतना खर्चीला वास्तुशांति विधि हर कोई नहीं कर सकता, अगर किया भी तो गत बारह साल में जो अशुद्धता आयी है इस अशुद्धता से मुक्ति दिलाने की ताकत आपके वास्तुविधि के लिये बुलाये हुये गुरूजनों में नही होती है। इसलिये हर पूर्णिमा और अमावस्या के दिन सुबह ऊपर निर्दिष्ट चारों कोनों के पूजन की विधि करनी चाहिये, जिससे आपकी वास्तु अनंतकाल तक सामर्थ्यवान रहेगी और आपके हमेंशा निरंतर कल्याण के लिये "तथास्तु तथास्तु तथास्तु" ओम् शांतिः शांतिः शांतिः कहती रहेगी।

लक्ष्मी-सरस्वती पूजन :

परिवार में लक्ष्मी और विद्या चिरकाल रहे इसलिये हर साल दीपावली के दिनों में धनत्रयोदशी के दिन लक्ष्मीपूजन करना चाहिये। इसका अर्थ हम यह लगाते हैं कि व्यवहार में हम जिस पैसे के माध्यम से पैसों की लेन-देन करते हैं, वह पैसा ही लक्ष्मी है। किन्तु यह व्यावहारिक द्रव्य है। द्रव्य यानि लक्ष्मी यह सोना है और चांदी

यानि सरस्वती है। इसका हमें ज्ञान न होने से हम लोग लक्ष्मीपूजन का अर्थ व्यवहार में इस्तेमाल होने वाले सिक्के और नोटो का पूजन, ऐसा करते हैं। इसलिये फुर्सत निकालकर हम सुनार से कम से कम पांच ग्राम की एक स्वर्णमुद्रा, जिसकी एक ओर पृथ्वी तत्व एवं दूसरी ओर स्वास्तिक अंकित हो, बनवाये! इसी प्रकार दूसरी मुद्रा पांच या दस ग्राम चांदी की बनवायें, जिस पर भी पृथ्वीतत्व और स्वास्तिक अंकित हो! आजतक आपने अनुभव किया होगा कि जहां लक्ष्मी का आवास होता है वहां सरस्वती यानि विद्या नहीं होती और जहां सरस्वति का आवास होता है वहां लक्ष्मी नहीं होती। वास्तव में जबकि यह दोनों सगी बहने हैं तो फिर उनमें इतना परायापन क्यों? इसके लिये हम लोग ही जिम्मेदार हैं। जीवन के आरंभ में गुरूजनों ने "श्री" यह शब्द ज्ञान की प्रतिरूपता इस दृष्टि से पढ़ाया था। जिस "श्री" शब्द से हम लोग ज्ञानी बने, उस "श्री" यानि ज्ञान माध्यम से हम लोगों को "श्री" यानी संपत्ति प्राप्त करने का जो भाग्य भावी जीवन में मिला उस जीवन के प्रारंभ में श्री यानि ज्ञानी होने की जो अवस्था हमें प्राप्त हुयी, उस अवस्था के प्रति हम जिंदगी में कभी भी प्रतिपूर्ति नहीं करते। विद्यार्जन के लिये यद्यपि पैसा खर्च कर विश्वविद्यालय द्वारा हम ने ज्ञान प्राप्त किया होता है तो भी जिन गुरूजनों ने हमें ज्ञानी बनाया, उनका स्मरण हम लोग कदापि नहीं करते हैं। वास्तव में गुरूपूर्णिमा का दिन आध्यात्मिक मार्ग में जिस गुरू का कृपाशीर्वाद मिलता है केवल उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का दिन है यह संकुचित एवं गलत विचार है। जिन व्यक्तिओं को आध्यात्मिक अथवा पारमार्थिक मार्ग से मार्गदर्शन का लाभ न मिला हो या वैसी इच्छा उन्हें न हुई हो, उन्होंने भी प्राप्त हुये ज्ञान की और उपाधि की तथा मानसम्मान की प्रतिपूर्ति के लिये कम से कम गुरूपूर्णिमा के दिन जिन गुरूजनों से विद्या प्राप्त करने का भाग्य उन्हे मिला हो, उन गुरूजनों का पुण्य स्मरण कर अपने इष्टदेवता के सामने यथाशक्ति गुरूदक्षिणा रखकर वह दक्षिणा जिन गुरूजनों ने आपको विद्या प्रदान

की है, उन्हे देनी चाहिये या जो सामाजिक, धार्मिक या वैद्यकीय संस्था समाज में काम कर रही हों, उन संस्थाओं में जमा करनी चाहिये। इस प्रकार काम करने से प्राप्त की विद्या के लिये प्राप्त जीवन में कृतज्ञ होने का अपना कर्तव्य आसानी से पूरा होता है। तथा अपने प्राप्त जीवन में जो कुछ ऐहिक समृद्धि है, उसमें से अंशत: परोपकार करने का लाभ भी अज्ञात रूप से प्राप्त होता है। ऐसी विधि करने से आप प्राप्त जीवन में विद्या और संपत्ति यानि ऋद्धिसिद्धि के उपासक होते हैं जिसके फलस्वरूप आपके खानदान में या परिवार में, भविष्य में विद्या और संपत्ति का यथोचित लाभ आसानी से होता है।

ऊपर निर्दिष्ट सोने और चांदी की मुद्रायें पूजन के लिये धनत्रयोदशी के दिन यदि आप बनवाते है, तो ये प्रतीक भावी पीढ़ियों में आपके संतान के विद्या और संपत्ति के लिये पूरक होकर, आपकी भावी पीढ़ी विद्यावान और धनवान होगी।

ये प्रतिमायें परिवार में लक्ष्मी-सरस्वती पूजन के लिये किस तरह से बनायी जायें इसका तात्विक मार्गदर्शन ऊपर किया है। लक्ष्मी के प्रतिनिधिक सोने की जो प्रतिमा आप बनवायेंगे उस प्रतिमा के पृथ्वीतत्व में "श्री" अक्षर लिखवाइये और सरस्वती की प्रतिरूप जो चांदी की प्रतिमा है, उसके पृथ्वीतत्व में "ओम" अक्षर लिखावाइये। इसका शास्त्रीय और तात्विक उद्‌देश्य यह है कि, लक्ष्मी के साथ सरस्वती और सरस्वती के साथ लक्ष्मी हो, ऐसे ये अलग-अलग तत्व एक दूसरे के साथ एकरूप हो। ये प्रतिमायें बाजार से बनवा लेने के बाद इन दोनों प्रतिमाओं को शुद्ध करना चाहिये। हल्दी और कुंकुम जल में डालकर उसमे थोड़ा सा गौमूत्र मिलाइये और प्रतिमाओं को धो लीजिये। ये प्रतिमायें पूजन में रखने से पहले उनपर गुरूजनों से श्री सुक्त का अभिषेक करवाईये अगर यह संभव न हो सका तो आप स्वयं पूजनादि सामग्री से और पंचामृत से पूजन कीजिये। पंचामृत यानि एक कटोरी में थोड़ा सा दूध, दही, घी, शुद्ध शहद और चीनी

लीजिये। इसमें घी नाममात्र मिलाइये, क्योंकि पंचामृत पूजन के बाद घी की चिकनाई प्रतिमा पर जमी रहती है। इसके बाद यह प्रतिमायें पूजन के लिये भगवान के सामने रखकर पहले बताये गये पूजनादि विधि कीजिये। इन प्रतिमाओं के नित्य पूजन में रखने के उपरांत, जैसा कि केवल रूढी-परंपरा के अनुसार दीवाली के दिनों में धनत्रयोदशी के दिन साल में एक बार पूजा करके सालभर धन प्राप्ति की याचना करते हैं, ऐसा न करें, क्योंकि इन देवताओं की जरूरत रोज होती है इनका पूजन समारोह जो साल में एक बार करते हैं, उसे रोज करने के विद्या और धन संतोष पाकर आपको कृपाशीर्वाद देते हैं।

आजतक कई बार आप भक्तों ने ऐसा प्रश्न किया है कि "हम लोग अपने देवदेवताओं का यथाशक्ति और यथाज्ञान कुलधर्म करते हैं तो किये हुए कुलधर्म का आशीर्वाद हमें प्राप्त होकर हमारा जीवन समृद्ध क्यों नहीं होता? इसका सरल जवाब यही है कि मनोभाव से जो कुलधर्म करना होता है वह केवल पच्चीस प्रतिशत ही होता है और उर्वरित पचहत्तर प्रतिशत भाग कुलाचार का होता है। आजतक आप भक्तजनों को इतना ही ज्ञान हुआ है कि कुलधर्म और कुलाचार यह एक ही विधि है। किन्तु जो कुलधर्म की विधि है वह वंशपरंपरागत देवदेवताओं के लिये होता है और इन देवदेवताओं के कृपाशीर्वाद के लिये परिवार के सभी व्यक्ति पात्र हों इसलिये जो कुलाचार का मार्ग बताया है, वह देवताओं के लिये नहीं बल्कि परिवार के हर एक व्यक्ति के लिये है। यह आपके अध्ययन में आजतक न आने से आपको कुलधर्म का फल क्यों नहीं मिलता? यह प्रश्न आप गुरूमार्ग में पूछते हैं।

जीवन में संपत्ति-विद्या-सुख-शांति का अभाव आजकल सब जगह दिखायी देता है इसका कारण हम लोग आज जीवन में अनावश्यक तथा निष्प्रयोजक ऐसे देवदेवताओं के उपासक बने हैं। यह जीवन सुख, शांति और समाधान से व्यतीत करने के लिये क्या इतने

विविध देवदेवताओ की वास्तव में जरूरत है? यद्यपि आप आसपास के सभी स्त्री-पुरूषों को माता या पिता मानकर बुलाने लगे फिर भी केवल जन्म देने वाले माता-पिता ही आपके सुख और दुख में सहभागी होते हैं, अन्यों को जिन्हें आप माँ-बाप संबोधित करते हैं, वे केवल आपके सुख में सहभागी होते हैं। इसलिये हमारा इष्टकर्तव्य यह है कि हमें जो मांगना है, उसे निष्ठापूर्वक देवदेवताओं से ही मांगना चाहिये।

परिवार से विद्या और संपत्ति की समृद्धि हो ऐसी स्वाभाविकतः इच्छा होती है। उसके अनुसार हमें उसकी प्राप्ति भी होती है। किन्तु प्राप्त समृद्धि और अधिक समृद्ध हो ऐसी हरेक की स्वाभाविकः इच्छा होती है। किन्तु प्राप्त समृद्धि को और अधिक समृद्ध बनाने का कर्तव्य आपके कुलाचार पर निर्भर करता है वह इस तरह कि आपके घर में जो सुहागन और कुमारिका होती हैं उनके पूर्वपुण्य से आपके घर में विद्या, सपत्ति अज्ञात रूप से आती है। यह समृद्धि आपके परिवार से बाहर न जाये इसकी दक्षता आपको रखनी चाहिये। आपके घर की सुहागने जब किसी कारणवश घर के बाहर जाती हैं तब उन के घर के बाहर जाने की क्या जिम्मेदारी आप पर है, इसको आपने कभी सोचा नहीं। जो समृद्धि आपके पूर्वपुण्य के कारण आयी है वह हमेशा परिवार में बनी रहे इस कर्तव्य के प्रति कदापि दुर्लभ न कर अपने पूर्वपुण्य से प्राप्त समृद्धि को घर से बाहर अपने साथ नहीं ले जानी चाहिये। उदाहरणार्थ घर से बाहर जाते समय हम जरूरत के अनुसार ही पैसे पास में रखते हैं, और यदि ज्यादा पैसे हो तो उन्हें घर में अलमारी में ताला बंद कर देते हैं, उसी प्रकार आपके पुण्य से परिवार में आयी हुई समृद्धि घर के बाहर न जाने देने का कर्तव्य सुहागन का है। वह यह है कि, बाहर जाने से पहले आप सजधज कर बाहर निकलते हैं, तब यह समृद्धि घर में बनी रहे इसलिये, जब भी आपको किसी कारणवश बाहर जाना है, तब भगवान को हल्दी कुंकुम अर्पण कर भगवान से कहो, "मैं बाहर होकर आती हूं"। इस

वक्त भगवान आपकी समृद्धि को अपने पास जतन कर, आपको जाने की अनुज्ञा देते हैं और बाहर से वापस आने के बाद जब हाथ और पांव धोकर भगवान को आप नमस्कार करेंगे, तब भगवान यह समृद्धि फिर आपके देह के साथ एकरूप करा देंगे। ऐसा करने के लिये आपको पैसा या अधिक समय जाया नहीं करना पड़ता है। किन्तु ऐसा करने से जीवन की अमूल्य धरोहर जो बार-बार पूजा अर्चना करने पर भी प्राप्त नहीं होगी उसका संरक्षण होता है। इस धरोहर को निष्ठा से जतन करना आपका कर्तव्य है।

यह उपाय आपको प्रसंगानुसार बाहर आने-जाने के लिये शास्त्र ने सूचित किया है। किन्तु जब आपको घर से या गांव की सीमा से तीन दिन से अधिक समय बाहर रहना है, तब इसके लिये उपाय यह है कि आप गांव के बाहर जाने के पहले एक कटोरी में थोड़े से अक्षताएं रखे, उस पर एक सुपारी रख कर हल्दी-कुंकुम अर्पण करें। भगवान से इतनी ही प्रार्थना करें कि "मैं जाकर आती हूं"। बाद में प्रस्थान करें। ऐसा करने के उपरान्त आप महीने दो महीने घर से बाहर रहें तो भी, आपके जन्म के साथ जो समृद्धि परिवार में आयी है, उसकी देखभाल देवदेवता करते हैं और आपके वापस आने पर इसी समृद्धि को देवदेवता आपके साथ एकरूप करा देती है। कुलधर्म और कुलाचार का अर्थ इतना व्यापक एवं विशाल है। कुलधर्म और कुलाचार के केवल शब्दिक उच्चारण से कुलधर्म कुलाचार नहीं होता।

कुलाचार विधि में कर्तव्य की जो प्रमुख धरोहर है वह घर की सुहासिनियों पर निर्भर है। परिवार के पुरूषगण परिवार पोषण के लिये घर से बाहर जाकर कष्ट से धन प्राप्ति करने का कर्तव्य निभाकर घर में जो लक्ष्मी लाते हैं, उस लक्ष्मी से प्राप्त होने वाला सुख तथा उसकी समृद्धि घर की सुहासिनी के आचार-विचारों पर निर्भर करती हैं। इस संबध में उपरोक्त निवेदन में महत्वपूर्ण आचरण के बारे में सुहागनों को उचित मार्गदर्शन किया ही है। इसके अलावा

एक महत्वपूर्ण बात और है, जिसका खुलासा करना जरूरी है। घर की सुहागन को रात्रि के भोजन के बाद सोने से पहले हाथ-पांव धोकर कुल्ला करना चाहिये और भगवान को हल्दी-कुंकुम अर्पण कर नमस्कार करके सोना चाहिये। क्योंकि सुहागन को चौबीस घंटे में दो प्रकार के इष्टकर्तव्यों की पूर्ति करनी होती है सुबह से रात्रि के सोने के समय तक पारिवारिक कर्तव्यों में उसका समय व्यतीत होता है। रात्रि में उसे वैवाहिक जीवन के कर्त्तव्यों का निर्वाह करना पड़ता है। इसलिये रात्रि के समय पति-पत्नी के साथ परिवार कल्याण के लिये जो समृद्धि यानि ऋद्धि-सिद्धि होती है और जो सुहागन के साथ वास करती है, वह उसके साथ रहना गैर है। इसलिये आसान मार्गदर्शन यह है कि रात्रि को सोने के पहले उसने भगवान को हल्दी कुंकुम अर्पण करके सोने के लिये जाना चाहिये। ऐसा करने से उस वक्त ऋद्धि-सिद्धि भगवान के पास वास करती है। सुबह जागने के बाद प्रातःकालीन विधि करने के बाद जब वह भगवान को नमस्कार करती है तब ऋद्धि-सिद्धि सुहागन के साथ एकरूप होती है और उसे सुबह से रात तक के समय में पारिवारिक कर्तव्य समृद्धि से निभाने में ये ऋद्धि-सिद्धि हितकर होती है।

अब आपकी संतान है, जो होने की अवस्था में है और जिनकी शालेय या विश्वविद्यालयीन शिक्षा जारी है, उन्हें शिक्षा का लाभ बुद्धि से यद्यपि लेना है, फिर भी उनके बुद्धि की धारणा क्रियाशील होगी ही, ऐसा नहीं है। यद्यपि इस अवस्था में जो लड़के और लड़कियां होती हैं, उनकी व्यव्स्था करने के लिये भगवान और देवदेवताएं कभी इन्कार नही करते तो भी हम लोग स्वयं ही भगवान को मानकर उसकी शरण में जाने में न्यूनता महसूस करते हैं, तो हमारे बच्चे यह कैसे समझ पायेगें कि भगवान के बिना अपना जीवन व्यर्थ है? इसलिये जो लड़के-लड़कियां विद्यार्जन के लिये घर से बाहर जाते हैं, उन्हें घर से बाहर जाने के पहले भगवान को अभिवादन कर उसका आशीर्वाद लेकर फिर पाठशाला या कॉलेज में जाना चाहिये। इससे बच्चों को

यह लाभ होता है कि उनकी बुद्धि और धारणशक्ति विद्यार्जन के लिये यदि कम होगी तो इष्टदेवदेवताओं को विदा के समय अभिवादन करने से वह शक्ति उनके विद्यार्जन की धारण क्रिया को स्वाभाविकता से मदद करती है। इतना सीधा सादा उपचार जीवन समृद्ध करने के लिये भगवान ने जो शास्त्रों के अनुसार निर्माण किया है, उसकी अवहेलना करना इससे बढ़कर और दूसरा पाप नहीं है और इस तरह जानबूझकर किये गये पाप का धर्म या शास्त्र में प्रायश्चित नहीं है।

परिवार के जो प्रौढ़ व्यक्ति नौकरी-धंधा कर कष्टार्जित धन प्राप्ति के लिये घर से बाहर जाते हैं, यह धन प्राप्ति केवल कष्ट देते हैं, इसलिये प्राप्त नहीं होती है। इसके लिये पहले आपने जो विद्यार्जन किया है वह विद्यार्जन इस कष्टार्जित धन प्राप्ति के लिये इस्तेमाल होता है। ऐसी प्राप्त विद्या को धन प्राप्ति के लिये जब आप नौकरी और व्यवसाय आदि के स्थान पर अपने साथ ले जाते हैं, उसमें से थोड़ा हिस्सा अपनी भावी पीढ़ियों के लिये परिवार में खर्च करना आपका कर्तव्य है। आप भी जब घर के बाहर नौकरी और व्यवसाय के लिये जाते हैं तब देवदेताओं को नमस्कार करके बाहर जाईये और आपने बड़े प्रयास से जो विद्यार्जन किया है, उसमें से नौकरी-व्यवसाय के लिये आवश्यक इतना ही हिस्सा अपने साथ वहीं ले जाईये और शेष इसलिये भगवान को सुपुर्द करें कि आपकी तरह आपके बेटे-बेटियों को भी विद्यावान बनना है। इसलिये जो बहुमूल्य हिस्सा आपको सौभाग्य से प्राप्त हुआ है, वैसे ही आपके बच्चें को भी उसका लाभ हो, इसलिये भगवान के पास हमेशा सुरक्षित रखना चाहिये। आपकी प्राप्त की हुई विद्या संपत्ति ही है। चरितार्थ के लिये आपको जो धन कमाना है उसके लिये प्राप्त की हुई संपूर्ण विद्या का प्रयोजन आवश्यक नहीं है। किन्तु आपके घर से बाहर निकलने से पहले भगवान की अनुमति न लेने से वह विद्या संपत्ति भी आपके साथ बाहर जाती है और वातावरण के दूषित विलय आपकी इस विद्या संपत्ति को स्वयं धारण कर खुद का विकास करने के लिये उसका इस्तेमाल करते हैं।

स्त्रियों ने दूसरे गांव जाने के पहले कटोरी में अक्षत और सुपारी रखने की पद्धति बतायी है। उसी प्रकार परिवार के पुरूषों को भी गांव से बाहर जाने के पहले भगवान के सामने श्रीफल रखकर उसको हल्दी-कुंकुम लगाकर भगवान को नमस्कार करना होता है। इस विधि को प्राचीन काल में "शुभाशुभ दिन का विचार कर प्रस्थान रखना" ऐसा कहने का रिवाज था।

हर साल मौजमस्ती करने के लिये कपड़ा खरीदने पर हम काफी पैसा खर्च करते हैं। इस खर्च में आपके साथ आपके घर के देवदेवताओं को सम्मिलित करना जरूरी है यह निराकरण सूचित करना जरूरी है, क्योंकि आमतौर पर कोई भी अपने आप ऐसा नहीं करता है घर की सुहागन को हर साल अपने परिवार के कुलदेवता की पांच बार गोद भरनी है उसका क्रम इस प्रकार है:

प्रथम गोद : चैत्र मास के प्रतिपदा के दिन (पहले दिन)

दूसरी गोद : श्रावण के शुक्ल पक्ष के पहले परववाड़े में मंगलवार या शुक्रवार को।

तीसरी गोद : आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में मंगलवार या शुक्रवार को।

चौथी गोद : दीपावली की प्रतिपदा के दिन

पांचवीं गोद : पौष मास के शुक्ल पक्ष में मंगलवार या शुक्रवार को।

उपरोक्त गोद भरने की क्रिया करते समय सुहागन को सिर से नहाकर यथा शक्ति मिष्ठान्न का भोग लगाकर गोद भरनी चाहिये और शाम को उसे स्थानीय देवी के मन्दिर में दे देनी चाहिये। गोद भरने के संबंध में मार्गदर्शन कुलधर्म के बारे में उपर किये गये विवेचन में दिया है।

साल में पांच बार गोद भरने की जो विधि सूचित की गई है, उसके पीछे महत्वपूर्ण कारण यह है कि समाज के रूढ़ी परंपरानुसार कहीं

चैत्रमास में हल्दी-कुंकुम समारोह करते हैं, इसके पीछे यह हेतु है कि उसके उपलक्ष्य में सुहागन स्त्रियां एक दूसरे के घर जाकर आपस में मिल सकती है। परंतु आजकल ऐसे समारोह में कोई भी शुद्ध आचार-विचार से सम्मिलित नहीं होती हैं। इसलिये उसे परिसीमित करने के लिये कुलस्वामिनी की गोद भरकर उसे स्थानीय मन्दिर में रख आना यह ज्यादा महत्वपूर्ण है।

श्रावण मास में अधिक व्रत करने का और भगवान के दर्शन करने का जो रिवाज है वह रूढी और परंपरानुसार है। यह महीना चतुर्मास का एक महीना है। इस दौरान आपको गांव के इष्टदेवता के दर्शन करने का आपने नियम किया हो, और दर्शन के लिये जाते हो, तो भी वहां दर्शन के लिये शांति से पांच मिनट खड़े होने को भी नहीं मिलता क्योंकि इसी महिने में ज्यादा पुण्यसंचय होता है ऐसा एक काल्पनिक भाव होने के कारण आमतौर से ज्यादा लोग दर्शन करने आते हैं और आप दर्शन के लिये भगवान के सामने खड़े रहेंगे तो पीछे से अन्य भक्तों की आवाज आती है कि "भाई, जरा जल्दी कीजिये"। तो क्या फिर भगवान का दर्शन इतना झटपट करने से आप श्रावण मास का महात्म्य प्राप्त कर सकते हैं? इसकी अपेक्षा अपने कुलदेवता की घर में ही उपासना कर इस मास की महत्ता घर में ही प्राप्त कीजिये।

अश्विन महिने में दस दिन तक नवरात्रि करने का जो रिवाज है वह उसे हर व्यक्ति अपनी सुविधा-असुविधानुसार नवरात्रि के दस दिन जैसे तैसे पूरा करता है। जिस घर में या परिवार में नित्य रूप से कुलदेव देवताओं की आराधना और पूजा विधिवत होती हो उन्होंने नवरात्रि का उत्सव विशेष महत्वपूर्ण मानकर उसे करने की जरूरत नहीं है। किन्तु जो सालभर में अपने देवदेवताओं की सेवा और आराधना कर नहीं सकते, उनके लिये यह नवरात्रि विधि सूचित किया है। जिनको जिस प्रकार संभव हो नवरात्रि करना चाहिये अथवा आश्विन मास में मंगलवार या शुक्रवार के दिन अपने ही घर में देवी की गोद भरकर उसे देवी के मंदिर में देकर आना चाहिये।

पौष मास में भी चैत्र महीने के अनुसार हल्दी-कुंकुम समारंभ के लिये सुहागिनी स्त्रियों को आमंत्रित करने की प्रथा है। इस प्रथानुसार इस समारोह का महत्व यह है कि बुलायी गयी सुहागन स्त्रियों को सौभाग्य चिह्न यानि हल्दी-कुंकुम और एक चीनी की पुड़िया भेंट करते हैं। इनके स्थान पर प्लास्टिक की या अन्य वस्तुएं भी भेंट स्वरूप दी जाती है, जिनका बाद में कोई खास उपयोग नहीं होता। इस तरह जो लेन-देन होता है क्या उसको भेंट कहना उचित होगा? इसकी अपेक्षा यह समारोह न कर, ऊपर सूचित किये गये अनुसार कुलदेवी की गोद भरना ही अधिक हितकर है। वास्तव में जीवन को उचित दिशा और योग्य संस्कार प्राप्त होने के लिये पुराने जमाने में आसान से आसान लेकिन हितकर विधि बताई गई है, उनकी ओर ध्यान न देकर, कठिन मार्ग अपना कर उस मार्ग का रूढ़ी समाज में हमने ही निर्माण की है। इसलिये सबको कर्तव्य के रूप में जो बातें करनी होती हैं, उससे हम सब वंचित हो गये हैं।

आहार मीमांसा :

इसके बाद महत्वपूर्ण कुलाचार है "आहार" हम लोग शरीर के लिये जो अन्न सेवन करते हैं और जिसको हम आहार कहते हैं, इसके बारे में यथायोग्य सावधानी रखना आवश्यक है। खाना पकाते समय किस तरह पवित्रता रखना आवश्यक है उसके बारे में निर्देशित किया ही है। इसी प्रकार हम लोग जो अन्न सेवन करते हैं उससे केवल शरीर का पोषण कर उसका संवर्धन करना इतना ही उस अन्न सेवन का सीमित उद्देश्य नहीं है। अन्न सेवन के लिये है यह बात सही है तो भी शुद्ध अन्न प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक और आत्मिक विकास के लिये पोषक होना आवश्यक है। आहार यानी अन्न दो प्रकार से खाने में आता है वे दो प्रकार हैं शाकाहार और मांसाहार। शाकाहारी अन्न स्वाभाविक रूप से शुद्ध और पवित्र होता है। हमारा देह पंचभौतिक तत्वों से यानि पृथ्वी, आप, तेज, वायु, और आकाश तत्वों से बना हुआ है। दिनभर हम लोग जो कष्ट करते हैं

तब इस शक्ति का व्यय होता है, और इन पंचतत्वो में घट-बढ़ होती है। यद्यपि इस तरह की घट-बढ़ हम लोग महसूस नहीं करते है, फिर भी उसमें आनेवाली कमी की पूर्ति के लिये योग्य आहार शाकाहार है। क्योंकि शाकाहार मूलतः ही प्राकृतिक अवस्था में पैदा होता है इसलिये शाकाहार में पंचतत्व पूर्णतः निहित होते हैं। इस शाकाहारी अन्न के सेवन से आपके शरीर के पंचतत्वों में जो घट-बढ़ होती है उसकी यथापूर्ति यह शाकाहारी अन्न पूर्णतः कर सकता है किन्तु मांसाहार में जिस प्राणी का मांस सेवन किया जाता है वह प्राणी यद्यपि पंचतत्वात्मक होता है फिर भी इस प्राणी का मांस आप उसकी हत्या करे बिना नहीं खा सकते। हत्या करने के बाद जो मांस आप अन्न के रूप में ग्रहण करने के लिये लाते हैं उसमें पृथ्वी और आप दो तत्व ही रह जाते हैं, क्योंकि हत्या के बाद तेज तत्व यानि उस प्राणी की आत्मा और वायु, तथा आकाश तत्व यानि हत्या के पहले जो दो तत्व उसके चलनवलन के लिये जरूरी होते हैं, वह वातावरण में विलीन हो जाते हैं। अतः मांसाहार में पृथ्वी और आग ये दो ही तत्व होते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का जन्म पंचतत्वात्मक है और प्राप्त जन्म का विकास और उद्धार इसी जन्म में महत्प्रयास से करने का कर्त्तव्य निभाना होता है इसलिये देह धारण के जो पंचतत्व होते हैं उसे भगवान ने यथायोग्य प्रमाण में देकर सुलभ पद्धति से जीवन का उद्धार होने की योजना की है। ऐसा होते हुये भी यद्यपि मांसाहार से अधिक मात्रा में पृथ्वी तथा आग तत्व की वृद्धि होने से देह सुदृढ़ होता है इस धारणा से मांसाहार किया भी तो उतने ही अनुपात में हमारी आत्मिक सुदृढ़ता कम होती है इस पर सूज्ञ व्यक्ति ध्यान नहीं देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि मांसाहार करने वालों को उसे पूर्णतया त्याग देना चाहिये बल्कि उसका सेवन मर्यादित होना चाहिये। मांसाहार सेवन का सहज प्रमाण क्या होना चाहिये? यह प्रश्न यदि उपस्थित हुआ तो उसका उत्तर यह है कि मांसाहार सप्ताह में एक बार ही लेना आपके हित में है।

अनेक बार शाकाहारी व्यक्ति कहते हैं कि मांसाहार से क्या पाप लगता है। वास्तव में यद्यपि दोनों ही प्रकारों के सेवन के बाद उसको हजम करना यह देह का कर्तव्य होता है, तो भी सेवन किये हुये अन्न के पाचन क्रिया के बाद, ग्रहण किये हुये अन्न प्रकार से जो अन्नरस निर्माण हुआ है, वह अन्नरस जिन-जिन माध्यमों को पोषक होगा, उन्हीं माध्यमों की ओर पहुंचाने का कार्य यह देह करता है। उदाहरण के लिये, शाकाहार के पाचन क्रिया के बाद जब वह अन्नरस में रूपांतरित होता है उसका रूपांतर रक्त में होकर रक्त का पूरे शरीर में अभिसरण पूर्ति करता है लेकिन मांसाहारी अन्न सेवन के बाद पाचन क्रिया द्वारा यद्यपि उसका अन्न रस बनता है, फिर भी वह सिर्फ बुद्धि माध्यम की तरफ ही प्रवाहित होता है इस तरह की स्वाभाविक रचना मानव के प्रति की गई है। आज शाकाहारी व्यक्ति मांसहार करते हैं, उनके खिलाफ कुछ लिखना ऐसा उद्देश्य यहां नही है बल्कि उनको इस मार्गदर्शन पद्धति से यह सूचित करना है कि नियति में मनुष्य प्राणी के अलावा अन्य कोई भी प्राणी अपना आहार धर्म नहीं बदलता। मिसाल के तौर पर चतुष्पाद (चार पैर वाला) प्राणियों में शेर मांसाहारी है। गौ घास खाती है, इसलिये क्या शेर कभी घास खाता है। शेर मांस खाता है इसलिये क्या गाय कभी मांस का भक्षण करती है। इतना ही नहीं तो पक्षी भी अपने जन्म के अनुसार अपना आहार निश्चित रखते हैं। इसलिये उत्क्रांति वाद के अनुसार उनकी उत्क्रांति स्वाभाविक और नियत तरीकों से होती रहती है। किन्तु हम लोगों ने मनुष्य का जन्म लिया है व नर का नारायण बनने के लिये लिया है यह जानते हुये भी केवल अन्न सेवन की जो देहिक वासना होती है उनके अधीन होकर नर से नारायण होने के बजाय नरपशु बनकर इस जन्म का उपभोग कर रहे हैं।

चौरासी लाख योनियों में से पक्षी एक योनी हैं वे सुबह से शाम तक मुक्त स्वतंत्रता से तथा स्वयं में ही परमानंद से अपने जीवन का कार्य कारण भाव व्यतीत करते हैं। क्या ऐसे पक्षी नियति द्वारा नियत

आहार के अतिरिक्त आहार भक्षण करते हैं उदाहरणार्थ तोता, परिपक्व फलों को खोजता रहता है और उन्हीं का सेवन करता है। भूलकर भी मांसाहार नहीं करता। किन्तु कौवा सर्वभक्षी होने के कारण उसको शाकाहार और मांसाहार इनका कोई विधिनिषेध नहीं हैं। इसलिए मनुष्य के मृत्यु के बाद, उसकी कोई इच्छा-वासना बाकी है या नहीं, इसका ज्ञान उसके रिश्तेदारो को कराने के लिये, पिंडदान करने के बाद, पिंड का भक्षण करने के लिये कौवे की प्रतीक्षा की जाती है।

ऊपर निर्दिष्ट आहार मीमांसा पढने के बाद शाकाहार श्रेष्ठ या मांसाहार इस संबंध में हर व्यक्ति को अपना निर्णय आप ही करना है। इसका निर्णय साधु-संत या धर्मनिर्णय मंडल को न पूछ कर इतना ही ध्यान में रखना है कि आपके पोषण के लिये क्या योग्य या अयोग्य है, जो कि अन्न सेवन से आपको प्राप्त होगा।

आहार शास्त्र के अनुसार ऊपर शुद्ध आहार के बारे में निवेदन किया है। किन्तु हमारे खाने पीने में जिन खाद्यपदार्थों की कम अधिक तीव्रता होती है इसका कारण यह बतलाया है कि वह खाद्यपदार्थ हम लोगों को अधिक प्रिय है, इसलिये हम उनका सेवन करते हैं। खाने की चीजों के बारे में इतना या सीमित अर्थ लेते हैं। यदि परिवार में तीन अथवा पांच व्यक्ति हो तो उनकी हरेक की रूचि भी भिन्न-भिन्न होती है। एक व्यक्ति को जो पदार्थ बहुत पसंद होता है, वह दूसरे को नापसन्द होता है। इस रूचि भिन्नता के बारे में आहार मीमांसा में जिन कारणों का जिक्र किया है उसका तात्विक विचार करने पर आपके भावी पीढ़ियों को सुलभ और सुखकर जीवन प्राप्त करा देने का कर्तव्य आप करनेवाले हैं। इसलिये यह दूसरी आहार मीमांसा है जिसको कुलोपासना कहा गया है। कुलोपासना कहने पर आप भक्त यह कल्पना करते हैं कि यह उपासना भगवान के लिये है परंतु ऐसा नहीं है। कुलधर्म देवदेवताओं के लिये है, तो परिवार के व्यक्तियों के आचार-विचारों की शुद्धता कराने के किये हुये कुलधर्म

का कृपाशीर्वाद प्राप्त करने का कुलाचार यह माध्यम है। परन्तु कुलोपासना का मतलब ऐसा है कि जिस परिवार और वंश में हम लोग जन्म लेते हैं उस वंश की भावी पीढ़ियों के जीवनधारणा का हितसंबंध हमारे खून से है। आज आपको जो सुख, शांति, संपत्ति, संतान और दीर्घायुष्य प्राप्त होता है वह उसी प्रकार आनेवाले पीढ़ियों को सुख और समाधान से मिले इसलिये यह आहार मीमांसा उसकी नींव है। अपना जीवन व्यतीत करते समय जीवनकार्य जिस देह माध्यम से होता है वह कार्य जन्मजन्मांतर और जन्मकर्म के ऋणानुबंध के अनुसार होता है। जन्मकर्म के अनुसार होने वाले कार्य स्थूल देह के द्वारा होता है और अनेक पूर्वजन्म की जो इच्छाएं और वासनाएं अभी अधूरी हैं उनकी पूर्ति करा लेने के लिये यह जन्मजन्मांतर यानी सूक्ष्म देह स्थूल देह के द्वारा इच्छा वासनाओं को पूरा करता है। इस तरह जीवन की कार्यकारण रचना है।

आज देह सुबह जागने के बाद रात के सोने तक बोलते-चलते, ज्ञात-अज्ञात रूप से जो क्रिया करता है, उसको हम लोग कर्म कहते हैं उदाहरण के लिये, जब हम अज्ञानवश किसी को गाली-गलौज करते हैं, तब हम उसको पाप कहते हैं। रास्ते में मंदिर दिखाई दिया तो हम लोग आदर के साथ मंदिर के सामने खड़े होकर नमस्कार करते हैं, इसको हम लोग पुण्य कहते हैं। दिनभर जाने-अनजाने में हम लोग जो हजारों क्रियाएं करते हैं उनको अगर हम कर्म कहने लगे, तो अगले जन्म में, जन्म प्राप्ति के बाद आपके देह परिसर में अपने किये कर्मो का महान पर्वत के समान एक बड़ा चक्र सा निर्माण हुआ दिखाई देगा। मगर कर्म उत्पत्ति ऐसी नहीं होती। पूर्णतः कर्म की उत्पत्ति होने के लिये विषय क्रिया-कारण-कार्य-कर्म इतनी अवस्थाओं से गुजरना होता है इन चार अवस्थाओं में से आपकी इच्छा-वासना का विषय क्रिया करेगा, तब कार्य करने की क्रिया जहां पूर्ण होती है, उस पूर्णावस्था की क्रिया को कर्म कहते हैं। पुनश्च

सत्कार्य के रूप में कर्तव्य करने की हमें जो इच्छा होती है, तथा जिस सात्विक एवं सुविचार पूर्वक उसे हम करते हैं, उस इच्छा निर्मिती का कारण हमारे आसपास के विषय नहीं होते हैं बल्कि वह प्रेरणा है यानि पूर्व जन्म की इच्छा है और वह प्रेरणा कार्यान्वित होती है। यह इच्छा ही सूक्ष्म देह अर्थात् जन्मजन्मांतरों की हमारी धरोहर है। ऐसा होते हुये भी हम लोग बहुत सी सदिच्छाएं इस स्थूल देह के माध्यम से विषय के अनुसार निर्माण करना चाहते हैं। इस जन्म जन्मान्तर में पूर्व जन्म की अनेक दुष्ट वासनायें बड़ी प्रखरता के साथ इच्छा के मार्ग में उपस्थित होती हैं, इसलिये हमारी सारी इच्छायें फलदायक नहीं हो पाती हैं। आज के पंचभौतिक देहिक माध्यम में इच्छा वासना नामक कोई भी विषय नहीं है। वह माध्यम कैसा है? तो गत जन्म की इच्छा-वासनायें इस देह को प्रेरणा देती है और विषय के अनुसार वह देह काम करती है। इससे यद्यपि सुख, शांति और समाधान प्राप्त हो ऐसी आपकी इच्छा होती है और उसकी व्यवस्था गतजन्म में आपने की हुई होती है फिर भी गतजन्म की वासनाएं और विकारों के चक्र इस इच्छा को साकार नहीं होने देते। स्वाभाविक रूप से हम मानव के जीवन पर दृष्टि ड़ालेंगे तो हमें यह दिखाई देगा कि हम मानवों की ऐहिक वासनाओं में अधिकतर वासनायें अन्न सेवन की होती है और जो उपभोग हम करते हैं वह जरूरत के अनुसार ही होता है मगर खाने पीने में जो अन्न हम खाते हैं उसका त्रिकाल सेवन करने के बाद भी खाद्यपदार्थ के बारे में हमारा समाधान नहीं होता जिनको वासना कहा जाता है वह इस जन्मजन्मांतर में प्रखर रूप से वास करती हैं, उनके साथ विकार भी है। वे विकार जीवन में कार्य के अनुसार उपभोग लेकर विमोचित होते हैं। किन्तु अन्न और खाद्य पदार्थ त्रिकाल खाने के बाद भी जिन वासनाओं की तृप्ति नहीं होती है, ऐसी वासनायें अनेक व्यक्तियों को जो पूर्वजन्म में परिस्थिति अनुकूल न होने के कारण उन्हें पूर्ण नहीं कर पायें उनके लिये यह वासनाएं इस जन्म में तीव्र रूप धारण करती

हैं। इस कारण जीवन में इच्छा साकार होने की व्यवस्था इसी जीवन में होते हुये भी वह साकार नहीं हो पाती। ऐसी जन्मजन्मांतर की वासनायें और विकारो का विमोचन स्वयं को ही करना होता है। इसलिये किये जाने वाले कुलधर्म और कुलाचार का लाभ लेकर इन वासना विकारों का विमोचन करना होता है। मगर इसके लिये आपने जिन देवदेवताओं का कृपाशीर्वाद लिया है उस आशीर्वाद को विमोचन के लिये इस्तेमाल नहीं करना है, इस दायित्व का ध्यान हरेक को रखना चाहिये। इसके लिये सुलभ मार्ग यह होगा कि जो खाद्यपदार्थ या अन्न आपको सबसे अधिक प्रिय है और जो खाने को न मिलने पर आप बेचैन होते हैं वह पदार्थ अपने नित्य खाने में वर्ज्य करना चाहिये। मगर यह नियम आसानी से तत्काल स्वीकारना कठिन होगा। इसलिये जब हम अपने प्रिय मिष्ठान्न या अन्न पदार्थ का सेवन करते हैं, उस पर टूट न पड़कर भगवान को जितना भोग चढ़ाते हैं, यानि अल्पमात्र ही सेवन करना चाहिये। इसके साथ जो पदार्थ हमें पसंद नहीं है, उसे भी अल्प मात्रा में सेवन करना चाहिये। ऐसा करने से सूक्ष्म देह में अनेक पूर्वजन्म की जो अन्न सेवन की वासनायें हैं, वे कम होती जायेगी और आपकी जो इच्छाये हैं, उन्हें आपके जीवन में पूर्ण रूप से कार्य करने का अवसर मिलेगा।

आज जब आप बीमार होते हैं और इलाज के लिये डॉक्टर के पास जाते हैं तो डॉक्टर कई रोगों के बारे में बताते हैं कि यह रोग आपके खानदान में अनुवांशिक है। इसको हम ठीक तरह से समझ नहीं पाते हैं। किन्तु यह अनुवांशिक रोग के उद्‌भव के लिये हम स्वंय ही कारण होते हैं। उदाहरण के लिये जिस व्यक्ति को मीठा खाने की तीव्र इच्छा होती है, यह वासना उनके अनेक पूर्वजन्मों की होती है। ऐसे किसी जन्म में उसको मधुमेंह होने के कारण, मीठी चीजें खाने की उसे अनुज्ञा नहीं होती और उसे खाने की वासना तो तीव्रतम होती है, ऐसी स्थिति में मीठा खानें की वासना के मूल स्रोत के साथ यह रोग एकरूप होता है और फिर इह जन्म में उसी वासना के कारण

जब मीठा खाने की अधिक तीव्र इच्छा निर्माण होती हैं, तब इस मीठा खाने की वासना के साथ यह मधुमेंह का मूल स्रोत आपके अन्न कोष में धारण होना शुरू हो जाता है। वास्तव में आपको मधुमेंह हुआ है इसका पता तब लगता है जब आपके अन्न कोष का कार्य आयु के अनुसार कम होने लगता है। किन्तु यह बीमारी उस व्यक्ति के पैदा होने के वक्त ही उसके शरीर में धारण होती है। यद्यपि इस तरह की अनुवांशिक बीमारी का कारण जब आप डॉक्टर के पास जाते हैं तब आपको बताया जाता है। फिर भी इस रोग का मूल कारण तो हम खुद ही होते हैं। इसलिये जो ऊपर आसान तरीका बताया है यानि बहुत प्रिय पदार्थ का सेवन धीरे-धीरे यदि आप कम करेंगे तो आपकी अनेक जन्मों की इच्छायें जो जन्मजन्मांतर में है वह साकार तो होगी ही किन्तु इस सूक्ष्म देह में अंतर्भूत इच्छा कार्यान्वित होने के बाद जो अवकाश निर्माण होगा उस अवकाश को कारण देह धारण करेगा। यही धारण धीरे-धीरे जब विकसित होगी तब यह कारण देह स्थूल देह के साथ एकरूप होता है। इसी जीवन को पारमार्थिक जीवन कहा गया है। यानि ऐहिक जीवन का रूपांतर शास्त्रशुद्ध तरीकों से व ज्ञान से कर लेने के बाद आपको भगवान के कृपाशीर्वाद के लिये एकांत में जाने की जरूरत नहीं है ना ही हिमालय या अन्य किसी पर्वत पर जाकर तपश्चर्या करने की और ना ही संन्यास लिया है ऐसा आभास निर्माण करने की।

उपरोक्त निवेदन के अनुसार तीनो देहों को कार्यान्वित कर कारण देह का जन्मकारण जिसे इह जन्म में सार्थक करना है, उसका एकरूपत्व जब स्थूल देह में हम कर लेते हैं तब इसी अवस्था को सन्यास कहते हैं। इस संन्यास को धारण करने के पीछे देह के तीनो देहों का रूपांतर, यानि प्राप्त जन्म के लिये निर्धारित कर्तव्य आज ही अपनाकर उसके अनुसार अपना जीवन इहलोक में यदि व्यतीत किया तो सही अर्थ में हमने संन्यास लिया ऐसा होगा। केवल भगवें वस्त्र धारण कर और हाथ में दंड कमंडलु लेकर गांव-गांव में भिक्षा मांगने के लिये घूमना, यह संन्यास जैसे पवित्र शब्द की विडंबना होगी।

ऊपर निर्दिष्ट आहार पद्धति का तात्विक पद्धति से विचार करने के बाद दत्तपंथ या नाथसंप्रदाय में जो पांच घरों में भिक्षा मांगने की दीक्षा दी गयी है वह इसलिये कि पांच घरों में मांगी हुई माधुकरी में अन्न की ओर रूचि या अरूचि के दृष्टि से कभी भी देखा नहीं जाता किन्तु दत्त के उपासको को यह परंपरा मालूम न होने से माधुकरी की दीक्षा लेने के बावजूद "दत्तभक्ति अपनी इच्छानुसार साकार क्यों नहीं होती" ऐसा विचार उनके मन में पैदा होता है। इसलिये माधुकरी की दीक्षा लेने के पहले अपना आहार कहां तक शुद्ध है तथा किसी प्रकार के आहार का किस हद तक अतिरेक हो रहा है इसका पूरा सोच विचार करने पर ही दत्त या नाथ संप्रदाय की उपासना करने के लिये आरंभ करना चाहिये।

धरातील संस्कार :

आज भावी पीढ़ियों के उद्धार के लिये परिवार द्वारा केवल पैसा जोड़ने से, योग्य संस्कार के अभाव में जो मानव जीवन की अपक्रांति हो रही है उसे रोकना संभव नहीं है। हम मानवों के कल्याण के लिये अनादिकाल से जिन शास्त्रशुद्ध तरीकों से मानव जीवन के वंशवृक्ष को साकार करने की शास्त्रीय पद्धतियाँ बतायी गयी है, उसका महत्व ध्यान में लेकर उपर बताये गए निवेदन और निराकरण उचित समय में पूर्ण आस्था से हमारे आचार और विचार में यदि हम अपनायेगे तभी मानव जीवन की अपक्रांति रूकेगी। अन्यथा भविष्य में ऐसा एक समय आनेवाला है कि जब हम मानवों का जन्म अनादिकाल में जिस प्रकार जंगली अवस्था में था, उसी अवस्थाप्रत हम अपने अज्ञान से जा पहुचेगें। ऐसी प्राप्त जंगली अवस्था के पुनर्जीवन के लिये फिर से कोई ऋषिमुनि, देवदेवता या नाथपंथ का उदय होकर उस अवस्था का रूपांतर वे दुबारा मानव जीवन में करेंगे यह भविष्य कथन आज के परिस्थिति में मुश्किल है।

जन्मउत्पत्ति मीमांसा :

मानवी जीवन के उत्पत्ति का माध्यम स्त्री है। इसलिये जब हम लोग स्त्री को मां कहकर पुकारते हैं, उस पुकार में जो भाव,

भावना, प्रेम, वत्सलता, आदर और पूजनीयता है वह किसी भी अन्य शब्द के उच्चारण में नहीं है। इस तरह जन्म प्राप्ति के लिये स्त्री का माध्यम यद्यपि इतना शुभमंगल है फिर भी जन्म देने का स्त्रियों का जो धर्म है, उन्होंने इस कर्तव्य को दुर्लक्षित नहीं करना चाहिये। जब स्त्री गर्भवती होती है और नौ महिने के बाद वह संतान को जन्म देती है। तब जन्म होनेवाले अपत्य के पचहत्तर सालों के जीवन को वह स्त्री इन नौ महिनों में साकार करती हैं। इस प्रकार संतान की जिंदगी साकार करना यह स्त्री का कुदरती धर्म है। जिस संतान का जन्म होने वाला है उस जन्म लेने वाले जीव की इस दुनिया में क्या भूमिका है। इसका ज्ञान होना यद्यपि कदापि संभव नहीं है, फिर भी उसके लक्षणों से अनुमान निकालने में नियति ने कोई गलती नहीं की है। यानि उसके लक्षणों से हम अनुमान लगा सकते हैं। गर्भधारण के बाद स्त्री की कई तरह की इच्छायें एव वासनायें होती हैं इसमें अन्नसेवन से लेकर मनोरंजन तक अनेक प्रकार की इच्छा-वासनायें सम्मिलित होती हैं। इसका जब पूरी आस्था से विचार किया जाये तो जो बालक जन्म लेनेवाला है उस जीव के क्या लक्षण है इसका अनुभव होता है। इसका उदाहरण हमें पुराणों में मिलता है। सुभद्रा को जब गर्भधारणा हुई थी तब उसने युद्ध में चक्रव्यूह की रचना किस तरह की जाती है, इसका ज्ञान भगवान श्री कृष्ण से प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की थी। इस लक्षण से यह अनुमान लगाया गया कि जन्म लेनेवाला पुत्र योद्धा ही होगा। इसी प्रकार श्रीपाद श्रीवल्लभ, श्री नृसिंह सरस्वती या आज के जमाने के स्वामी विवेकानंद के माताओं को गर्भधारण होने के बाद शिवपूजा तथा शिवव्रत करने की इच्छा हुई थी। इन व्रतों की पूर्ति उन्होंने शुद्ध विचार और शुद्ध आचरण से करने से जिन जीवो ने जन्म लिया वे आज अजरामर हुये हैं। यद्यपि यह कार्य योजना नियति ने स्वाभाविकता से बना दी है। फिर भी जब स्त्रियों को किसी चीज की इच्छा होती है, तब उसकी पूर्तता करना छोड़कर स्त्रियां डाक्टर के पास उपचार के लिये जाती है कारणवश होनेवाली संतान का अकल्याण गर्भावस्था में ही होता है।

स्त्री की दूसरी देहिक अवस्था यह है कि स्त्री के विवाह के समय उसका कन्यादान होने के बाद, यानि उसके पति ने उसके जन्मकर्म का स्वीकार करने के बाद, जन्मकर्म की जगह जन्मजन्मांतर धारण करता है। जन्मजन्मांतर की जो जगह खाली होती है उसमें जन्म लेनेवाली भावी संतान का प्रवेश होता है। अब जो स्त्री का जन्मजन्मांतर है, वह इच्छा और वासना का स्थान है। इन वासनाओं में अन्नमय वासना और जन्म लेनेवाले बालक के शरीर धारण करने वाले प्रारंभिक तत्व यानी पृथ्वीतत्व यह अन्न होता है। ऐसे समय स्त्री का देहिक माध्यम स्वाभाविकत: ऐसा अचूक कार्य करता है कि उसकी स्वयं की अन्न की वासना और जो जीव प्रारंभिक अवस्था में जिस अन्न कोष में देह धारण करनेवाला है, उसके दोष इन दोनों दोषो का स्त्री इस अवस्था में वमन द्वारा विमोचन करती है। गर्भधारणा के प्रारंभ से ही उस जीव के विकास में उस जीव की जो अयोग्य इच्छा वासनाएं और विकास जो उसके पूर्व जन्म में बचे होते हैं उनकी पुनरावृत्ति जन्म लेने के बाद न हो इस हेतु से यह योजना प्रत्येक जीव के हित में भगवान ने की है। इसलिये गर्भवती स्त्री के इच्छा-वासना को दिखाई देने वाले लक्षण जन्म लेनेवाली संतान तथा उस स्त्री के विमोचन के लिये हैं। स्त्री के जन्म में यह विमोचन स्वाभाविक अवस्था में होता है किन्तु यह शास्त्र शुद्ध ज्ञान स्त्रियों को न होने से गर्भकाल में दिखाई देनेवाले लक्षण अपने आप को दूसरों के नजर में नीचा दिखाने वाले होते हैं ऐसा मानकर नौ महिनों में जिस जीव की धारणा भावी आयुष्य के पचास से पचहत्तर साल की करनी होती है, उसके उन दोषों का विमोचन न होने से यह दोष नौ महिनों के काल में धारण हुये पंचतत्व के देह के साथ पूर्ण रूप से एकरूप होते हैं।

अब गर्भावस्था के संबंध में अन्य एक महत्वपूर्ण स्पष्टीकरण है। वह यह है कि अपने परिवार के अनेक लड़कों और लड़कियों के शादी ब्याह, नौकरी-धंधा, व्यवसाय आदि जीवन के योग्य काल में

नहीं होते हैं, इसके पीछे कौन से अज्ञात कारण है, यह न समझने से, ग्रहदशा अनुकूल नहीं है या पूर्वजन्म के दोष इसके आड़े आ रहे हैं ऐसा सोचकर उसका निराकरण करने के लिये देवदेवताओं से लेकर नवग्रह शांति तक सब विधि किये जाते हैं। फिर भी जिस परिवार के व्यक्ति को यह अपयश भुगतना पड़ता है, उसका कारण उनके जन्म उत्पत्ति में होता है। ऐसी जन्म उत्पत्ति को अनैच्छिक संतान कहते हैं। इसके लिये जिम्मेंदार उस संतान के माता-पिता ही होते हैं। जिस वक्त विवाहित पति-पत्नी अपने वैवाहिक सुख का लाभ लेते हैं और अनजाने में जब गर्भधारण होती है, तब जागृत होकर वे सोचने लगते हैं। उस समय उनकी वैचारिक स्थिति बड़ी जटिल होती है। ऐसे समय पति और पत्नी दोनों ने धारण हुये गर्भ को पूर्ण रूप से जन्म प्राप्त कराने का मौका देना है या नहीं इसका विचार उचित समय पर ही करना चाहिये। अनेक बार यह अनुभव होता है कि पति बच्चा चाहता है किन्तु पत्नी नहीं चाहती है और कभी पत्नी चाहती है तो पति नहीं चाहता है। इस परस्पर विरोधी मानसिक स्थिति की आघात उस जन्म लेनेवाली संतान पर होता है। यानि बालक को दोनों में से एक चाहता है तो दूसरा नहीं ऐसी अवस्था होती है। ऐसे समय मजबूरी से धारण हुये गर्भावस्था में जो जीव होता है उसको पूर्वजन्म के जो अनेक ऋणानुबंध जन्मप्राप्ति के बाद इस दुनियां में कर्तव्य के रूप में व्यतीत करने पड़ते हैं, उन ऋणानुबधों के हित संबंध, प्राप्त होने वाले देह के साथ वह न जोड़ सकने के कारण ऐसे बच्चों का भाग्योदय मां-बाप के पश्चात् होता है। इसलिये उचित समय पर पति और पत्नी ने अपनी अड़चन ठीक से समझकर होने वाले बच्चों के बारे में विचार कर, अगर दोनों की इच्छा होने वाली संतान के मार्ग में बाधा पैदा करती हो तो डाक्टर के पास निःसंकोच जाकर सलाह लेनी चाहिये। इन ऋणानुबंधों के दोषो के अतिरिक्त आज अपंग अवस्था में जो बच्चे समाज में दिखाई देते हैं, उनमें भी दोष ऐसे ही कुछ मात्रा में माता-पिता की

वजह से पैदा हुये होते हैं।

अब जिस पति और पत्नी के इच्छानुसार संतान प्राप्त हुई है, उन्होंने यद्यपि बच्चे के विकास और अच्छी सेहत के लिये दूध एवं टानिक देकर उसका देहिक विकास किया भी हो, तो भी जन्म के बाद तीन साल तब उसका आत्मिक विकास उन्हीं को करना आवश्यक है। यह बालक, जो जन्म लेता है, उस बालक के देह के बाहर उसके माता-पिता के विकार और वासना का एक कवच होता है। यद्यपि वह आंखों से दिखाई नहीं देता है, फिर भी उस संतान को जो मामूली बीमारीयाँ होती हैं, उससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन वासनाओं और विकारों का जो चक्र होता है, उसे दूर करने के लिये कुलोपासना में स्त्री के प्रसूती के बाद पांचवे और छठे दिन "छठी" की पूजा बतायी गयी है। आजकल प्रायः स्त्रियाँ घर के बाहर दवाखाने में प्रसूती के लिये जाती हैं। इसलिये यह विधि यद्यपि नहीं हो पाती है फिर भी यह विधि घर की कोई भी सुहागन स्त्री कर सकती है। यह विधि इस तरह की जाती है। पीढ़े पर रक्तचंदन से पृथ्वीतत्व (जिनको पृथ्वीत्व मालूम नहीं है, वह स्वास्तिक बना सकते हैं) बनाकर उसपर हल्दी-कुंकुम अर्पण कर, पीढे के चारों और रंगोली बनानी चाहिये। उस चिन्ह पर निरांजन रखकर खाने के तेल में दो बाती ड़ालकर दीपक जलाइये। उस पीढ़े पर बनाये हुये चिन्ह के सामने दो खाने के पान, सुपारी और सवा रूपया रखिये, और उबले हुये चने का भोग एक कटोरी में रखकर चढ़ाइये। इसमें नमक नही ड़ालना है। इस विधि के बाद दवाखाने में प्रसूत स्त्री को हल्दी-कुंकुम लगाकर चने के प्रसाद के चंद दाने देना चाहिये।

इसके बाद, लड़के का नामकरण संस्कार बारहवें दिन और लड़की का तेरहवें दिन करना चाहिये। इसके लिये शुभमुहुर्त देखने की आवश्यकता नहीं होती। अगर नामकरण संस्कार से पहले अचानक ऐसी घटना घटती है, जैसे परिवार के किसी व्यक्ति की वर्ष-दो वर्ष पहले

मृत्यु हुई हो, उसी ने पुनः जन्म लिया है, यह मानकर अनेक परिवार मृत व्यक्तियो के नाम लड़का या लड़की को देते हैं। लेकिन मृत व्यक्ति का इतने थोड़े समय में पुनर्जन्म नहीं होता। यह सत्य होते हुये भी, मृत व्यक्ति का नाम उनको दिया जाता हैं ऐसे बच्चों को मृत व्यक्ति के इहलोक से जो ऋणानुबंध होते हैं, उनको जीवन के आरंभ में ही उन्हे भुगतना पड़ता है। इसके कारण जीवन के आरंभ में शरीर संवर्धन और विद्या प्राप्त करने का जो कर्त्तव्य इन लड़के-लड़कियों का होता है, उसे निभाने में यह रखे हुये नाम हानिकारक होते हैं। इसलिये भूल से भी ऐसे नाम न रखकर, देवदेवताओं का या जिस नाम का उच्चारण मंगलमय हो ऐसे नाम रखना चाहिये।

नामकरण विधि के बाद शेष पूरा समारोह तो आप करते ही है मगर उस दिन कुलदेवता का स्मरण करना भूल जाते हैं। इसलिये नामकरण विधि के बाद अपने कुलदेवता के सामने अगरबत्ती और घी का दिया जलाकर रखना है और हरे कपड़े और नारियल से उसकी गोद भरनी है। भगवान के सामने रखे पीढ़ेपर मां और बालक को बिठाकर, जिन रिश्तेदारों को उसे उपहार देना है, दे दें। इससे पहले जिस परिवार की स्त्री प्रसूत हुई है, उस परिवार की सुहागन को चाहिये कि वह उसे हल्दी-कुंकुम लगाकर उपहार दें। इस समय प्रसूत स्त्री की गोद नहीं भरी जाती। उपहार उसके हाथ में रखे जाते हैं! भगवान के सामने रखी गोद घर की सुहागन द्वारा स्थानीय मंदिर में रखी जाती है। सवा महिने के पश्चात प्रसूती स्त्री व बालक को मंदिर में दर्शन के लिये जाना चाहिये।

उपास्य देव और उनकी उपासना

फलप्राप्ति के लिय उपासना और उसका काल :

भक्तभाविक जब मार्गदर्शन के लिये आते हैं तब उनको "आप नित्य क्या उपासना करते हैं?" यह प्रश्न पूछा जाता है। ऐसा प्रश्न पूछने के बाद जवाब में वह अनेक देवदेवताओं के नाम लेकर ऐसा आभास पैदा करते हैं कि उनका नित्य जीवन केवल उपासना मार्ग में ही व्यतीत हो रहा है, और यह पूछा गया प्रश्न गौण है। वास्तव में जिन देवदेवताओं के नाम आप लेते हैं उनमें कुलस्वामिनी कौन सी? कुलस्वामी कौन? और उपास्य देवता कौन सी? इनमें तत्वतः क्या फर्क है इसकी जानकारी, नहीं होती है। देवदेवतार्जन करने के लिये सभी देवदेवता हमें अनुकूल है ऐसी भावना पैदा कर, हठ से आप किसी देवता की उपासना का मार्ग आप अपनाते हैं, किन्तु इस मीमांसा के पीछे जो शास्त्रीय और तात्विक भूमिका है, उसको न समझकर यद्यपि आप पूरी जिंदगी भगवान को पाने के लिये व्यतीत करेंगे फिर भी आपके द्वारा की हुई उपासना का इष्टफल आपको प्राप्त नहीं होगा। परिणामतः इस निराशा का दोष आप देव और देवताओं पर थोपते हैं। देवतार्जन और भगवान के लिये जो उपासना या आराधना आप अपनी कल्पना के अनुसार और अपनी इच्छानुसार अपनाते हैं या स्वीकार करने से उसकी फलप्राप्ति नहीं होती है। इसलिये इसका स्पष्टीकरण योग्य साधक के पास जाकर करा लेना चाहिये। भक्तिमार्ग में अनेक व्यक्ति ऐसा विश्वास करते हैं कि किसी भी देवदेवता की भक्तिभाव से पूजा करें तो वह भक्तिरूप ही होती है। यद्यपि यह सत्य है, फिर भी जिस प्रकार हरेक मानव का देहिक धर्म आचार-विचार के स्तर के अनुसार भिन्न है, उसी प्रकार सृष्टि को कार्यान्वित करने वाली जो महान् शक्ति है, वह शक्ति त्रिगुणात्मक तत्व में कार्य करती है। यानी उत्पत्ति, स्थिति और लय ये निराकर तत्व साकर होने के लिये, इन तत्वों ने स्वयं साकार होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि रूप में इस विश्व को कार्य का अंगीकार किया है। इन तीनों शक्तियों को आम साधक को अपनी

उपासना या साधना से प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। इसलिये देवता युग में इन शक्तियो ने अपने में अपनी तीन अवस्थाएं निर्माण कर देव, देवता और उपास्य देवता इस प्रकार वर्गीकरण किया। देव और देवता के बारे में यथायोग्य स्पष्टीकरण हम पहले दे चुके हैं। जो उपास्य देवदेवता है वह वास्तव में कुलस्वामी या कुलस्वामिनी नहीं होती है। किन्तु अनेक व्यक्ति विठोबा, गणेश, हनुमान, शंकर, दत्त, राम, कृष्ण आदि उपास्य देवताओं को कुलस्वामी बताते हैं। प्रत्यक्ष में यह गलत है। इन उपास्य देवताओं में से कभी कोई देवता गत काल में खानदान के किसी व्यक्ति को प्रसन्न होकर उस व्यक्ति पर कृपा करने में यदि कारण बनी हो, तो अब उस देवता का अनादर न हो इसलिये भावी पीढ़ीयों ने इन देवताओं को कुलधर्म और कुलाचार में सम्मिलित कर लिया। यह स्पष्ट होता है जो व्यक्ति इन उपास्य देवताओं की उपासना करते हैं उनको इन उपास्य देवताओं की उपासना का अंगीकार करने से पहले, पिछले निवेदन में जो सत्वगुण के बारे में मार्गदर्शन किया गया है, उतने सत्वगुणों की प्राप्ति करना आवश्यक होता है। ऐसा किये बगैर उपास्य दैवत का फल पूर्णतः मिलना कभी भी संभव नहीं। इसका कारण यह है कि इन उपास्य देवताओं के लिये जिस सेवा को स्वीकार किया जाता है वह साल दो साल करने से फलप्राप्ति नहीं होती है। इसलिये यह सेवा बीच में ही अधूरी छोड़कर आप अपने जीवन का बहुमूल्य समय अकारण जाया करते हैं। क्योंकि जो उपासना आपने अंगीकृत की है उसको पूर्णतः फलीभूत होने के लिये उपासक को यह उपासना निरंतर करनी पड़ती है इसका आसानी से अंदाज नहीं होता है या मार्गदर्शन के अभाव से यह व्यक्ति अपनी उपासना के बारे में बहुत बड़ी-बड़ी कल्पनाओं में बिचरते हैं। सामान्यतः ऊपर निर्दिष्ट उपास्य देवताओं की कृपाप्राप्ति के लिये जो समय लगता है वह इस प्रकार है।-

श्री दत्तात्रेय की उपासना जिनको सुलभ ओर आसान लगती है उन्हें पहले रज, तम, सत्व गुणों में से पचहत्तर सत्वगुण अपने में पैदा करने चाहिये। इसके अलावा आहार मीमांसा के अनुसार खाने पीने

के मामले में पसंद नापसंद छोड़कर जो समय पर मिलता है उसी से संतुष्ट रहना चाहिये। देह में समय-असमय यदि खाने-पीने की वासना उत्पन्न होती हो तो जब तक उसमें सुधार नहीं होता तब तक दत्तपंथ अनुकूल होना बहुत मुश्किल है। किन्तु इसका सर्वांगीण विचार न कर अविचार से अनुकरण करने की प्रवृत्ति का हमेंशा अनुभव होता है। इसलिये यद्यपि आपने किसी श्रेष्ठ देवता की आराधना अपनायी और यद्यपि वह देवता श्रेष्ठ हो, फिर भी उसकी कृपा पाने के लिये आप स्वयं बहुत कनिष्ठ है। दत्त की उपासना और उसको स्वीकार करने के लिये जब आपकी उत्स्फूर्त भावना कार्यान्वित होती है उसी क्षण उस उपासना के लिये पोषक होने वाला आपका आचार और विचार अस्तित्व में होता है। क्या वह कृपा पाने के दिन तक रह सकता है? इसका कारण यह है कि श्रीदत्तात्रेय की उपासना फलीभूत होने के लिये छत्तीस साल का समय सेवा में व्यतीत करना पड़ता है। दत्त यह तत्व त्रिगुणात्मक यानी उत्पत्ति, स्थिति और लय यानी ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि तत्वों का महाकारण है, इसलिये इन तीनों तत्वों का अवतार कार्य दत्त स्वरूप में शुरू हुआ हैं। यद्यपि यह त्रिगुणात्मक तत्व साकार रूप में "दत्त" के रूप में प्रकट हुआ है तो भी उस तत्व की कृपा प्राप्ति होने के लिये छत्तीस साल की दीर्घ तपश्चर्या करनी होती है। शास्त्रीय दृष्टि से सत्य है फिर भी यदि आपको योग्य गुरू और योग्य मार्ग का मार्गदर्शन प्राप्त होता है तो यह उपासना आप 12 सालों में फलीभूत कर सकते हैं।

जो अन्य उपास्य देवता है उनकी उपासना का काल क्रमानुसार दत्त परंपरा जैसे ही है वह इस प्रकार है:

श्री गणेश	-	२१ साल
श्री शंकर	-	११ साल
श्री हनुमान	-	१८ साल
श्री राम	-	१२ साल

श्री अनंतव्रत - १४ साल

पार्वती उपासना 12 वर्ष हरतालिका 7 वर्ष और मंगलागौरी 5 वर्ष

इस प्रकार इन उपास्य देवताओं की जो दीर्घकाल उपासना करनी पड़ती है इसका सोचविचार जब आप करेंगे तो प्रामाणिक तरीके से आपको यह निर्णय करना होगा कि इतने दीर्घकाल के लिये आपकी उस देवता के लिये भक्ति और निष्ठा तथा उस देवता के लिये पोषक आचार और विचार आप रख सकेंगे या नहीं। इसकी अपेक्षा तुरंत फल देने वाली जो देवता यानी आपके खानदान की परंपरा की कुलदेवदेवताओं की मनःपूर्वक उपासना कर श्रद्धा और भक्ति से कुलधर्म, कुलाचार और कुलोपासना का पूर्ण आस्था से विचार कर जो जीवन बिखरा हुआ है, उसको आप सुसंबद्ध करें तो ऐसा अनुभव होगा कि दीर्घकाल तक उपास्य देवताओं की आराधना का मार्ग स्वीकार करने से जो फल आपको मिलने वाला होगा वही फल आपको आपकी इष्टदेवता देने में समर्थ है। जानबूझ कर बिकट मार्ग अपनाने की अपेक्षा समस्याओं का हल योग्य करणों से और उचित समय पर करने की व्यवस्था भगवान ने की है, उसका लाभ लेना ही आपके हित में होगा। आज समाज में अनेक परिवारों में रूढीयो और परंपराओं के अनुसार इस प्रकार की उपासना, व्रत, अलग-अलग प्रकार की पूजा और अर्चना उन परिवारों के व्यक्ति करते हुये दिखाई देते हैं। वास्तव में उस परिवार की परंपरा में समय-समय पर जो-जो दिक्कतें आयी हों, उनके निवारण के लिये परिवार के किसी व्यक्ति का अन्य किसी ने मार्गदर्शन किया हो। ऐसा मार्गदर्शन लेने वाले व्यक्तियों ने उस खानदान की परंपरागत से पूजा-अर्चा, व्रत, उपवास, मासिक तथा वार्षिक देवदेवतार्जन आदि करने का रिवाज रूढ़ किया। इसलिये जब आपको योग्य मार्गदर्शन की जरूरत खड़ी होती है तब आप भक्तों को ऐसा सवाल किया जाता है कि, जो उपासनाएं आपके अनुकूल नहीं है "क्या उसे आप त्याग देंगे?" तब कई भक्तजनों को इसका सही तत्वबोध न होने के कारण या तो वे मार्गदर्शन को स्वीकार न कर उसके कार्यपद्धति

की तरफ ध्यान नहीं देते हैं या मार्गदर्शन पाने के बाद भी जिन उपासनाओं का स्वीकार केवल रूढी के अनुसार किया है उन्हें जारी रखते है।

आपकी उपासना अगर आपके अनुकूल हो या भविष्य में अनुकूल होने वाली हो तब निराकरण पद्धति में गलती से भी ऐसा कभी सूचित नहीं किया जायेगा कि आप जो उपासना सालों से करते आये हो उसको त्याग दें। उपरान्त इस उपासना के बारे में भक्त यह पूछते हैं कि इनको त्यागने के लिये क्या किसी उद्यापन आदि करने की आवश्यकता है? किन्तु आपके पढ़ने या सुनने में उद्यापन शब्द आया हो उसका अर्थ क्या है, इसकी जानकारी आपको न होने से किसी उपासना का त्याग करने को कहने पर, आपके द्वारा स्वीकृत उपासना का त्याग करने में "उद्यापन" शब्द बाधा निर्माण करता है। जिन व्रतों को और उपासनाओं को आप शास्त्रशुद्ध तरीके से स्वीकार करते हैं उनके लिये शास्त्रीय तरीके से उद्यापन विधि होती है। किन्तु केवल एक-दूसरे से मिलने पर या ऑफिस की कैन्टिन में या किसी के यहां आप मेहमान बनकर जाते हैं। दिक्कतों के बारे में चर्चा कर उनके निवारण के लिये आपस में उपासना एक-दूसरे को बताते हैं, और उपासना या व्रतों को स्वीकार करते हैं ऐसे व्रत तथा उपासना जिनको अनौपचारिक रूप से स्वीकार किया होता है उन के उद्यापन के लिये किसी शास्त्रीय विधि की आवश्यकता नहीं होती है।

उद्यापन :

शास्त्रीय तरीके से उपासना और ब्रतों का स्वीकार करने की विधि इस प्रकार होती है :- परिवार में जो बुजुर्ग व्यक्ति होता है, उसे इन उपासनाओं को कुछ समय तक करने के बाद उन्हें अपने पुत्रों, पुत्रियों, बहुओं या पोता-पोती को सौपना होता है। इन उपासनाओं ओर ब्रतों का संबंध जिन देवदेवताओं से है, उन देवदेवताओं का पूजन-अर्जन, अभिषेक, नैवेद्य, गोद भरने आदि सब करने के बाद जिस व्यक्ति को यह ब्रत देना है उस व्यक्ति को भगवान के सामने बिठाकर उपासना देने वाले व्यक्ति को उसके बायें

हाथ बैठना चाहिये। औपचारिक रूप से पूजनादि विधि संपन्न होने के बाद उपासना हस्तांतरित करने वाले व्यक्ति को मनोभाव से यह प्रार्थना करनी है कि "हे भगवान, आपके कृपाशीर्वाद पाने के लिये मैंने जो कुछ सेवा यानी उपवास, ब्रत आदि आजतक किये हैं वह मैंने अपने यथाशक्ति और यथाज्ञान से किया है। उम्र के लिहाज से अथवा सेहत कमजोर होने के कारण मैं अब तुम्हारी सेवा यथाशक्ति नहीं कर पाऊंगा। यह सेवा मैं भक्तिभाव से अपने पुत्र, पुत्री व बहू को सौंप रहा हूं। "इतनी प्रार्थना करने के बाद, इस ब्रत का हितसंबंध जिन देवदेवता से है, उन देवताओं को चढ़ाये हुये फूलों से एक फूल, जो उस देवता के मस्तक पर चढ़ाये गये हो, उसे लेकर परिवार के जिस व्यक्ति को यह व्रत देना है उसके करकमलों में रखिये। उसने वह फूल अपने मस्तक को लगाकर उस उपास्य देवता के चरणों में रखना है। इस आसान विधि से यह व्रत, परंपरा पद्धति से आपके परिवार में वास करता रहता है अन्यथा आप अनौपचारिक रूप से जो पूजन, उपासना, ब्रत एक दूसरे को बताते हैं उसका लाभ आपको सहज रूप से नहीं होता है।

श्री गणपति पूजन :

जिन वार्षिक उपासनाओं से समाज में चंदा इकट्ठा कर किया जाता है उनका हेतु यद्यपि सामाजिक हित और धार्मिकता होता है, फिर भी यह समारोह जिन देवताओं के लिये किया जाता है क्या उनके विधि का तथा उन देवताओं के मांगल्य का विचार किया जाता है? उदाहरण के लिये, भाद्रपद महिने में गांव में हर जगह गणेशजी की स्थापना दस दिन के लिये की जाती है। श्रावण के मास में इसी प्रकार सत्यनारायण का पूजन भी किया जाता है और नवरात्रि में श्री देवी का नवरात्रि शुभारंभ भी सार्वजनिक रूप से किया जाता है। किन्तु जिन विधियों को शास्त्रानुसार हर परिवार के व्यक्ति ने करने के लिये कहा गया है, उन विधियों की कार्यकारण पद्धति इस दुनियां के हित के लिये शास्त्र ने किस प्रकार की है, यह न जानकर आज हम लोग इन विधियों को सार्वजनिक समारोह का स्वरूप देकर उन विधियों की पूजनीयता कम करने के लिये जिम्मेदार बन गये हैं।

ऊपर बताई गई विधि जब सार्वजनिक रूप से किये जाते हैं तब क्या उनके विसर्जन काल तक सुबह से शाम तब मनोरंजन के लिये लाउडस्पीकर पर बीभत्स गाने बजाये जाते हैं। इन समारोहों की शोभा बढ़ाने के लिये जिन प्रासंगिक दृश्यों को दर्शाया जाता है उनमें सिनेमा के प्रसंगों से लेकर राजनीतिक प्रसंगों तक भी दृश्य होते हैं। इस तरह अपने भगवान और धर्म का परिहास चौराहे पर कोई करता होगा, ऐसा नहीं लगता। हरेक ने अपने धर्म के अनुसार देवदेवताओं के विधि का ज्ञान बहुजन समाज को हो इसलिये इन विधियों को जरूर करना चाहिये। लेकिन आज जब हम इन समारोहों को देखते हैं तो ऐसा अनुभव होता है कि गांव में हर दस कदम पर इस प्रकार सार्वजनिक समारोह चल रहे हैं और उनको मनाने के लिये आपस में प्रतिस्पर्धा लगी है। भाद्रपाद महिने में या अश्विन महिने के नवरात्रि के दिनों में इन देवताओं की स्थापना करने का जो मूल शास्त्रीय हेतु है वह न समझने के कारण इन समारोहों के प्रति पवित्रता या भक्ति हम लोगों में नहीं होती है। केवल चंदा इकठ्ठा कर गणेशजी या देवी के नाम पर साल में एक बार सार्वजनिक उत्साह उमड़कर आता है उनको रोकना जिन देवदेवताओं की आप स्थापना करते हैं, उनको भी मुश्किल हो रहा है।

अब शास्त्रीय दृष्टि से भाद्रपद महिने के शुद्ध पक्ष में चतुर्थी के दिन गणेशजी को आवाह्न कर दस दिन पूजन के लिये आमांत्रित करना होता है। इतने दीर्घ अरसे तक तथा लगातार दस दिन तक श्री गणेश की किसी भी अन्य विधि के समय पूजा श्री गणेश की किसी भी अन्य विधि के समय नहीं होती है। अपने परिवार में आप जब अलग-अलग धार्मिक विधि करते हैं, उस समय प्रथमतः श्री गणेश को अवाहनित इसलिये किया जाता है कि वह देवों का अधिपति हैं। आप जो विधि करने वाले हैं वह जिन देवताओं के प्रित्यर्थ होता है उस विधि के समय उस विधि के लिये श्री गणेश के साथ उपस्थित रहकर, वह देवतायें उस विधि को स्वीकार करें ऐसा कार्यकारण भाव इसमें होता है। यह विधि जब पूरी होती है तब गणेशजी को अक्षत

अर्पण कर कहा जाता है कि "पुनरागमनायच" अर्थात् मैं फिर से जब कोई धार्मिक विधि करूंगा तब आप उपस्थित रहिये। यह भाव इस कथन में होता है। भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी से अनंत चतुर्दशी तक जो विधि दस दिनों के लिये होती है उसकी महत्ता धार्मिक दृष्टि से बहुत महान् हैं। सूज्ञ भक्तगणों यदि आजतक इस शास्त्रीय विधि पद्धति की आपने जानकारी प्राप्त की होती और उसके अनुसार विधि करते तो आपके जीवन की बहुत सी समस्यायें, देवों का अधिपति जो गणेशजी है, उन्होंने सुलझाई होती। किन्तु आपने इस धार्मिक विधि की जानकारी प्राप्त न करने से इस देवता को ही उलझन में रखा है।

साल के बारह महिनों का काल दो भागों में विभाजित किया गया है। एक "उत्तरायण" और दूसरा "दक्षिणायन"। उत्तरायण की शुरूआत मकर संक्रांति के दिन जब सूरज मकर राशि में प्रवेश करता है तब से शुरू होती है। यह काल छह महिने का होता है। उसके बाद सूर्य का संक्रमण कर्क राशि से होता है। यह काल दक्षिणायन कहा जाता है इसी काल में सावन के महिने में व्यक्ति को अलग-अलग दिन उपवास आदि व्रत कर, भगवान का दर्शन कर, काया, वाचा और मन शुद्ध करना होता है। इसके बाद आने वाला मास भाद्रपद होता है। इस मास के शुक्त पक्ष के चतुर्थी के दिन गणेशजी के पूजन का जो महत्व है वह दस दिन का होता है। दसवें दिन अनंत यानी विष्णु का पूजन कर इसकी समाप्ति होती है। इन दस दिनों में गणेशजी और विष्णु का पूजन करने को बताया गया है। वह इसलिये है कि यद्यपि पूरे साल में भिन्न धार्मिक कार्यक्रमों में हम गणेश जी की पूजा करते हैं फिर भी इन दस दिनों के पूजन की महत्ता अलग है।

भाद्रपद शुक्ल पक्ष के बाद पितृपक्ष शुरू होता है, यह सब लोग जानते हैं। इस वद्य पखवाड़े में जो श्राद्ध विधि होती हैं, उनका हेतु खानदान में जो व्यक्ति दिवंगत हुये हैं उन व्यक्तियों को उनके मृत्यु के बाद के जीवन में सद्गति प्राप्त हो, यह होता है। यह सब विधि

यद्यपि आप लोग रूढीपरंपरा के अनुसार करते आये हो फिर भी उनको सद्‌गति देने का सामर्थ्य केवल खानदान में मृत व्यक्तियों के श्राद्धविधि करने से प्राप्त नहीं होता। इसके लिये देवदेवताओं का कृपाशीर्वाद आपके साथ होना जरूरी है। इसलिये शास्त्र ने यह शास्त्रशुद्ध व्यवस्था दी है, कि दिवंगत व्यक्तियों को सुलभता से सद्‌गति मिले इस हेतु से मृत व्यक्तियों के रिश्तेदारों ने सावन के महिने में देवदेवताओं के उपवास, दानधर्म, दानधर्म और परोपकार कर अपनी काया, वाचा, मन शुद्ध करना है। इस शुद्ध किये हुये काया, वाचा और मन से भाद्रपद महिने में गणेशजी की स्थापना कर अनंत चतुर्दशी के दिन श्री विष्णु का पूजन कर, गणेश जी और श्री विष्णु का कृपाशीर्वाद भाद्रपद के पितृपक्ष में जो विधि अपने घराने के दिवंगत व्यक्ति के लिये करनी है, उन्हें स्वर्ग में सद्‌गति दिलाने के लिये प्राप्त करना होता है। इसलिये गणेशजी की स्थापना के दस दिन का महत्व है। इस प्रकार संपूर्ण सावन का महिना और भाद्रपद महिने के पंद्रह दिन यानि पूरा डेढ़ महिना जब आप धार्मिक विधि का आचरण करेंगे तब पितृपक्ष के श्राद्धविधि सफल होंगे।

पुराने शास्त्रों के अनुसार जो लोग प्रयाग, काशी और गया इन तीन स्थलों की यात्रा कर सकते हैं, उन्हें इन तीनों स्थानों पर श्राद्धविधि कर अंतिम पिंडदान विष्णुपद पर करना होता है। इस समर्पण के बाद इन दिवंगत व्यक्तियों के ऋणों से हम मुक्त होते हैं और उन्हें भी मुक्ति प्राप्त करा देते हैं। ये तीनों क्षेत्र दूर के फासले पर होने के कारण पूर्वकाल में वहां जाकर धार्मिक कार्य करना मुश्किल था क्योंकि आज जितनी वाहनों और साधनों की सुविधा उपलब्ध है, उतनी उस काल में उपलब्ध नहीं होती थी। इसलिये समाज के हर व्यक्ति के लिये यह मुश्किल बात आसानी से हल करने के लिये तथा जो पुण्यकर्म त्रिस्थली यात्रा से और वहां श्राद्धविधि करने से प्राप्त होता था, वहीं पुण्य आप लोगों को अपने गांव में और घरों में आसानी से प्राप्त हो इसलिये यह डेढ़ महिना धार्मिक आचरण और धार्मिक कार्य में व्यतीत करना चाहिये, ऐसा शास्त्र में कहा गया है। यह शास्त्र का उपकार हमारे कल्याण के लिये कितना

बोधप्रद है इसका आप विचार करेंगे।

इस प्रकार डेढ़ महिना आप आस्थापूर्वक विचार कर अपने खानदान के दिवंगत व्यक्तियों के ऋण से मुक्त होने के लिये यद्यपि श्राद्धविधि करेगें तभी इस श्राद्धविधि से उनको मुक्ति प्राप्त होगी, यह जो शास्त्रों ने बताया है इसका आपको अनुभव होगा। आज अनेक व्यक्ति यह सवाल करते हैं कि घर के बाहर निकलने के बाद हमारे परिवार के स्त्री और बच्चों को बाधा होती है तो क्या इस तरह पूर्वकाल में नहीं होता था? और नहीं होता था। तो क्या आज ही इसका प्रमाण बढ़ा है? इस प्रश्न का सम्पर्क उत्तर यह है कि पूरे वर्ष में जो काल आपके लिये फायदेमंद है वह सावन शुद्ध प्रतिपदा से भाद्रपद महिने की पूर्णिमा तक का है। इस काल में जो धर्मकार्य और धार्मिक आचरण आपको करने के लिये बताया है उसको तो आपने अनदेखा किया ही है इतना ही नही तो आपके खानदान के दिवंगत व्यक्तियों को इच्छा और वासना से मुक्त करा कर उनको उत्तम लोक की प्राप्ति करा देने के लिये देवादिको ने भी अपना महात्य एक तरफ रख कर आपको इस कार्य के लिये यथोचित सहायता मिले इसलिये अपनी कार्य योजना का परिचय आपको करा दिया है। उस गणेशजी के महात्स्य को हम लोगों ने न परखकर उस महान देवता को गंदे रास्ते के चौराहे पर बिठाया है तब आपके परिवार के दिवंगत व्यक्तियो के मुक्ति का प्रश्न किस प्रकार और कौन सुलझायेगा? सामान्यतः परिवार में जब किसी एक व्यक्ति को बाधा होती है तब उसके लिये भी मंत्र-तंत्र और जादु-टोना करने की जरूरत होती है। उससे भी जब काम नहीं होता है तो तीर्थक्षेत्र में जाने का मार्ग अपनाया जाता है और वहां जाने के बाद भी उस बाधा का निवारण होगा ही यह विश्वास से कहना कठिन है। अगर ऐसा है तो खानदान में जिन दिवंगत व्यक्तियों को सद्‌गति प्राप्त नही हुई है और उनको मुक्ति प्राप्त होने के लिये हम श्राद्धविधि करते भी हैं, तो भी जब तक इस डेढ़ माह में आप धार्मिक आचरण, धार्मिक विधि देवदेवताओं

की इष्ट उपासना नहीं करते हैं तब तक ये मृतात्मायें इस दुनिया से अपना हित संबंध जोड़ते हुये अपनी इष्ट व दुष्ट वासना पूरी करने तथा आपके लिये आपके बाल-बच्चों द्वारा अपनी स्वयं की मुक्ति करा लेने के लिये बाधा बन कर विचरते ही रहेंगे।

भारत में इस देवता के बारे में यानी गणेशजी के संबंध में पूजनादि विधि का जो गैर तरीका अपनाया गया है, वह केवल महाराष्ट्र और गोमांतक में ही हुआ हैं। उत्तर भारत में तो यह देवता नाममात्र परिचित है। लेकिन दक्षिण भारत में इस देवता के अधिष्ठान का जतन उसके महात्म्य के अनुसार हो रहा है। आज महाराष्ट्र में गणेशजी की स्थापना की जो विधि की जाती है, उस सबंध में सार्वजनिक रूप से स्थापना के बारे में ऊपर बताया गया है। लेकिन गणेशजी की स्थापना जो परिवारों के घरों में की जाती है, उस गणेशजी की पूज्यता भी सार्वजनिक गणेश पूजन के समान ही हो रही हैं। जीवन के उद्धार के लिये यद्यपि गणेशजी आदितत्व है और उसकी स्थापना डेढ महिने के ब्रतस्थ काल के आरंभ से करनी है फिर भी अपनी सुविधा के लिये हमने उसे डेढ़ दिन इतने अल्प समय तक घरा दिया है। इस की अपेक्षा यदि डेढ़ दिन के लिये भी हम गणेशजी की स्थापना न करें तो भी उस कारण गणेशजी दुखी नहीं होंगे।

गणेशजी के पूजन के इन दस दिनों में, आपके जो इष्ट कुलदेव और देवता है उनका कृपाशीर्वाद भी आगे जो विधि होने जा रहा है उसके लिये आवश्यक है। इसलिये इन दस दिनो में जो गौरीपूजन बताया गया है वह कुलस्वामिनी के पूजन के रूप में करना है। ऐसा करने से खानदान की जो कुलदेवताएं है उनके कृपाशीर्वाद का लाभ प्राप्त होकर, उसका लाभ खानदान के दिवंगत व्यक्तियों को पितृपक्ष में मिलता है। गौरी की स्थापना विधि और पूजन के संबंध में मार्गदर्शन जो हर साल के पचांग में दिया होता है उसके अनुसार गौरी की स्थापना करनी चाहिये।

सुज्ञ भक्त उपरोक्त निवेदन पढ़कर ऐसा सोचविचार करेंगे कि

दिवंगत व्यक्ति के हित में आचार-विचार का बंधन मानकर उनको मुक्ति दिलाने का प्रयास एक हठ है। किन्तु इसका सही जवाब मार्गदर्शन में दिया गया है कि दिवंगत व्यक्ति अपनी मृत्यु के बाद जायदाद, पैसा, गहने आपके नाम कर जाते हैं। यदि उन दिवंगत व्यक्तियो को सद्‌गति प्राप्त होने के लिये आपको डेढ महिने का काल विकट लगता हो तो उनके पश्चात जो जायदाद आपको मिलती है उसको निःसंकोच रूप से दान क्यों न करें? इसके उपरान्त मार्गदर्शन में जो महत्वपूर्ण तात्विक भूमिका है वह यह है कि जब आपको अपने स्वयं के लिये पुण्यसंचय करना हो तो वह पुण्य संचय होने के लिये काफी समय लगता हैं। किन्तु जब आप दूसरों के कल्याण के लिये कुछ सेवा करते हैं जिसमें आपका कोई निहित स्वार्थ नहीं होता है, उस वक्त पुण्यसंचय दुगुना होता है। इसलिये इस डेढ़ महिने में जो धार्मिक कार्य और देवदेवतार्जन और परोपकार आपको करने होते हैं। वह आपके हित में तो होंगे ही, किन्तु मृत्यु के बाद के जीवन में मुक्तावस्था पाने के लिये जिन दिवंगत व्यक्तियों को देवादिकों का ऋणानुबंध कम होता है, उन्हें आपने जो दुगुना पुण्य अर्जित किया है उसमें से एक हिस्सा पुण्य देने के बाद, देवदेवताओं से ऋणानुबंध कम होने के कारण उन दिवंगत व्यक्तियों को इस दुनियां के साथ जो संबंध जोड़ना पड़ा उससे वे देवताओं की कृपा से तो मुक्त होती ही है, इतना ही नहीं अपितु आपका इस जन्म में जो विहित कर्तव्य है अर्थात इहलोक और परलोक इन दोनों अवस्थाओं की प्राप्ति आपको इस जन्म में ही अतिप्रयत्न से करनी है, उस प्राप्ति की नींव भी इस डेढ़ महिने से सेवा से डाली जाती है।

खानदान के दिवंगत व्यक्तिओं के ऋण से पितृपक्ष में अपना कर्तव्य कर जब आप ऋणमुक्त होते है तब तक आश्विन का महिना आता है। घर में जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है, तब दस दिन के लिये शोक का पालन होता है, इन दिनों को अमंगल माना जाता है। इसी प्रकार हर साल के सभी महिनों में भाद्रपद का वद्यपक्ष यानी पितृपक्ष का काल भी अमंगल माना गया है। सावन के महिने से लेकर

अनंतचतुर्दशी के दिन तक के मंगल काल में आपका प्राप्त किया पुण्यकर्म पितृपक्ष में व्यतीत करने के बाद जो आश्विन मास आता है उसके पहिले दस दिनों का महत्व अलग है जिन देवदेवताओं के कृपाशीर्वाद से प्राप्त डेढ़ महिने का पुण्य आपने भद्रपद वद्य यानी पितृपक्ष में खर्च किया है, उसमें से एक हिस्सा आपने उनको देकर एक हिस्सा आपके पास बचा है। यह जो परोपकार आपने दिवंगत व्यक्तियों के लिये किया है, इस परोपकारी धरोहर आपको व्यक्तिगत पुण्य के रूप में मिले इसलिये आश्विन शुद्ध प्रतिपदा से लेकर दशमी तक दस दिन का नवरात्रि होता हैं। इस काल में भी आप अपने कुलदेवदेवताओं का स्मरण कर साल के अन्य महिनों से अधिक प्रमाण में उनकी संभावना कर पूजनअर्चन आदि करते हैं उसके फलस्वरूप परोपकार के लिये की गयी जो सेवा आपके पास शेष है वह व्यक्तिगत सेवा में रूपांतरित होती है। परोपकार के लिये की गयी ऐसी सेवा का ब्रत जो व्यक्तिगत जीवन के साथ एकरूप होता है इसी विधि को सीमोलांघन कहा है।

इस प्रकार यह सीमोलांघन होने के बाद जो पुण्य आपने प्राप्त किया है उसको उस समय न भोगकर उसको आश्विन महिने के अन्त तक यानी धनत्रयोदशी के दिन तक जतन करना है। इस प्रकार जतन किये गये पुण्य एवं परोपकार का रूपांतर पुनश्च लक्ष्मी-सरस्वति में होकर भविष्यकाल सुख-शांति-समाधान से बीतने के लिये ध नत्रयोदशी के दिन लक्ष्मी और सरस्वती का पूजन करना है। इसी को "दीपावली" कहा गया है। यानी लक्ष्मी और सरस्वती के प्रकाश से आपका जीवनोद्धार हो, इसलिये दीपोत्सव मनाना हैं। इतनी शास्त्रशुद्ध भूमिका में आप जब अपने आचार और विचार के साथ निष्ठावान रहकर दीपावली तक का तीन महिनों का काल व्यतीत करते हैं तब ये तीन महिने भावी नव महिनों की सुख, शांति और समाधान संजोये रखते हैं। इसी को "दीपावली" कहते हैं।

संचार अवस्था :

अब नवरात्रि करने का जो महत्वपूर्ण कार्यकारण भाव है वह आप भक्तगणों को शास्त्रीय पद्धतिनुसार समझाने के बाद आप ही

ऐसा सवाल मुझसे पूछेंगे कि नवरात्रि के दिनो में स्त्रियो में जो देवदेवताओं का संचार होता है, ऐसा कहते हैं, क्या उसमें कोई सच्चाई है? इस प्रश्न के उत्तर में हम ऐसा कहेंगे कि इन दैविक शक्तियों का सर्वसामान्य मानव के माध्यम में प्रवेश होने के लिये उस माध्यम का देहिक विकास पूर्ण होना चाहिये। यानि ऊपर निर्दिष्ट रज, तम और सत्व गुणों के बारे में जो खुलासा किया गया है उसके अनुसार उस व्यक्ति में पचहत्तर प्रतिशत से सौ प्रतिशत सत्वगुण का विकास होना चाहिये। बाल्यावस्था में यानि जन्म होने के बाद सत्वगुण सौ प्रतिशत होता है, वह प्राप्त जीवन की धरोहर होती है किन्तु फिर से जब आप लोग देवदेवताओं की उपासना से, धर्माचरण से सत्वगुण प्राप्त करते हैं यह सत्वगुण आपके पास धरोहर न होकर वह एक नियति का सामर्थ्य होता है। इस तरह यह सामर्थ्य आप जब पचहत्तर से सौ प्रतिशत प्राप्त करते हैं, तभी इन देवदेवताओं की शक्ति देह में संचार करती है अन्यथा जो आपके पास देहिक शक्ति है वह प्रसंगानुरूप प्रकट होकर इस प्रकार आविष्कार करती है कि मानो वह देवता का संचार है। यदि उन दिनों में स्त्री और पुरूषो में संचारित तत्व देवदेवता का है, तो उनको जब लोग सवाल करते हैं, तब उनमें निहित परिपूर्ण सत्वगुण का अनुभव क्यों नहीं होता। इसके विपरीत बार-बार सवाल करने के बाद जो अपशब्द संचारित अवस्था के व्यक्ति के मुंह से निकलते हैं, ऐसे शब्दों का देवयुग से आज तक देवदेवताओं ने कभी उच्चारण नहीं किया है। इसलिये जब भगवान के नाम पर इस प्रकार के दृश्य का आप अनुभव करते हैं तो वह सत्य है या असत्य इसका अंदाज आप स्वयं लगा सकते हैं।

प्रसाद :

कुलधर्म और कुलाचार के अनुसार जो नित्य उपासना करनी है और जो महत्वपूर्ण वार्षिक उपासना करनी है, इसके बारे में निवेदन आपको ऊपर किया गया है। इसके अलावा हर घर में प्राय: भिन्न-भिन्न देवताओं की पोथियां, स्त्रोत, कवच आदि का संग्रह पढने के लिये भरपूर मात्रा में होता है और इनका नित्य पाठ भी किया जाता है। लेकिन ये स्त्रोत, कवच या पोथी हम क्यों पढ़ते हैं और

इससे सही लाभ क्या होता है इसका विचार कोई भी और कभी भी नहीं करता। कोई कहते हैं कि जीवन में जब साडेसाती आती है तब नवग्रह स्त्रोत, हनुमान स्त्रोत या शनिमहात्म्य पढ़ना चाहिये। किन्तु इन स्त्रोत या कवच का पाठ साडेसाती के दिनों में जिन्होंने किया है, उनकी साडेसाती का निवारण होकर उनको निश्चित रूप से सुख प्राप्त हुआ है, इस प्रकार का सिद्धांत आज तक जिन्होंने इन स्त्रोत और कवचों का पाठ किया है, क्या वह आत्म विश्वास के साथ बता सकते हैं? इस दुनिया में जिसने जन्म लिया है उसके जीवन में साडेसाती का काल तो आयेगा ही। किन्तु इसके लिये निश्चित रूप से क्या करना चाहिये जिससे इसकी पीड़ा न हो, इस प्रकार का सुनिश्चित मार्गदर्शन करना संभव नहीं है। किन्तु एक बात नजर में आती है कि आज लोगों की जीवन के बारे में भावना तथा श्रद्धा इतनी कमजोर हुई है कि साडेसाती के शुरू होते ही मामूली सर्दी-जुकाम भी हुआ हो तो साडेसाती के कष्टदशा की शुरूआत हुई है यह विचार आते ही आदमी हताश होता है। वास्तव में रूढ़ीनुसार साडेसाती के वजह से ऐसा हुआ है, वातावरण दूषित होने के कारण हुआ है या अपने खाने पीने में फेरबदल होने की वजह से हुआ है। इन बातों को न सोचकर ज्योतिषशास्त्र के अनुसार कोई ग्रह हमें प्रतिकूल है, इसका पता लगते ही इस साडेसाती की वजह से जीवन पर होनेवाले बुरे परिणामों की ओर ध्यान जाता है और क्या इन साडेसात सालों में ग्रहों की कुछ अनोखी पीड़ा है? या जीवन के बारे में जो अविचार है वे ही पीड़ित हैं? इसकी ओर किसी का भी और कभी भी ध्यान नहीं जाता। इसके विपरित इस काल में यदि आप इस तरह सोचेंगे कि "मैं परमेंश्वर का भक्त हूँ, और जिसकी मुझपर अखंड कृपा है ऐसे मुझ जैसे परमेंश्वर भक्त के लिये यह पीड़ा हानिकारक होने के बजाय कल्याणकारी ही होगी" और इस प्रकार का आत्मविश्वास यदि आप पैदा करें तो आपके देह में जो आत्मिक शक्ति है उसके प्रभाव से यानि आत्मविश्वास से, इस वातावरण से होने वाले ग्रहों के परिणाम और आपके स्थूल देह के माध्यम में

अवव्यवस्था निर्माण होकर आपको ग्रहों की जो पीड़ा भुगतनी पड़ेगी उससे आप बच सकोगे। इस प्रकार जिंदगी में अनेक प्रसंगों के कारण और ऐसे प्रसंग जो आपके जीवन में विभिन्न कारणानुसार कई बार आने वाले हैं, ऐसे हर समय पर यदि हम हर वक्त अगर आप ऐसा विचार करेंगे कि मेरा जीवन काल अब दुखमय होने वाला है, और यदि यह भावना मन में घर कर बैठी तो आप कभी भी आगे नहीं बढ़ सकेंगे। इसको इस तरह कहा जा सकता है "जैसे हमारे ही पैरों की आवाज से हमें यह आभास होता है कि हमारा कोई पीछा कर रहा है"। इस प्रकार जीवन में किसी कारणवश या जन्मकर्म के कारण या ग्रहपीड़ा से जो प्रतिकूल बाते हैं, उनका निवारण हमें ही स्वयं करना है। इसके लिये पोथियां, कवच या भिन्न-भिन्न देवताओं की उपासनाएं काम नहीं आती है। उदाहरण के लिये जिस हनुमान देवता का हमने जिंदगीभर स्मरण नहीं किया होता है, उसका स्मरण साड़ेसाती आने पर होता है और आप तुरंत उसके चरणों में जा गिरते हैं। उनके दर्शन के लिये हमारे जैसे अनेक अज्ञानी दर्शनार्थी पहले से ही उपस्थित हुये होते हैं। दर्शन के बाद हनुमान को प्रसन्न करने के लिये, अपरिचित ऐसे कुछ विधि जैसे हनुमान पर तेल डालना आदि प्रकार उन्होंने किये होते हैं। यह देखकर हमारी भावना होती है कि अन्य भक्तगण भी साड़ेसाती के फेरे में है। इसलिये हम भी हनुमान को तेल अर्पण करना शुरू कर देते हैं। वास्तव में हम लोग साड़ेसाती से भयभीत होकर हनुमान को तेल अर्पण कर रहे हैं, इसका हमारे जीवन से क्या संबंध है? इस तरह विचार न कर जो सालों तक देवतार्जन का अनुकरण हो रहा है वह कितना हास्यास्पद है इसका निर्णय आप स्वयं करें।

इसी प्रकार अनुकरण करने के कुछ प्रयोग हम देखते हैं जैसे बहुत सारे देवताओं के देवस्थानों के पास कुछ भक्त पशुपक्षियों की बलि चढाते हैं। वास्तव में बलि चढ़ाने से देवदेवताओं को संतुष्ट करने की विधि को किसी भी शास्त्र में आधार नहीं माना गया है। लेकिन किसी जमाने में किसी एक व्यक्ति ने बलि चढ़ाने का रिवाज डाला

हो, वह रिवाज तब से आज के सज्ञान युग तक जारी है। यद्यपि हम कहते हैं कि मनुष्य ज्ञानी हुआ है, फिर भी उसके वार्षिक कुलोपासना के आचार और विचार की तरफ हम देखें तो ऐसा लगता है कि उसके सुशिक्षित होने के लक्षण जो समाज को उसके सामाजिक कार्यो के रूप में दिखाई देते हैं। वह उसकी सुशिक्षितता देवदेवताओं और धर्म के सामने कैसी झुक जाती है यह बलि देने की प्रथा जो हमने अज्ञानवश अपनायी है उस के कारण अपने कुलदेवताओं के पवित्र स्थानों में क्या न्यूनता आयी है इसका क्या आपने सुझबूझ से विचार किया है? देवदेवताओं के युग से ऋषिजनों के द्वारा स्थापित और अधिष्ठित की हुई यह देवदेवताएं जिनमें एक अलौकिक सामर्थ्य निर्माण किया हुआ था और जिस सामर्थ्य का लाभ आपको, इन कुलदेव और देवताओं का चिंतन, उनके स्थानों से दूर रहकर भी कृपाशीर्वाद के रूप में प्राप्त होता था उन्ही देवदेवताओं के परिसर में आपने बलि चढ़ाने का रिवाज केवल रूढ़ी परंपरा और अज्ञानवश करने से स्वाभाविकत: देवदेवताओं के क्षेत्रों में दुषितता आयी है। इस प्रकार आपके पूछे हुये प्रश्नों का कौल यानि प्रसाद अगर उचित न मिले तो इसके लिये .देवदेवताएं जिम्मेंदार है या आप स्वयं जिम्मेंदार है इसका विचार सूज्ञता से करें।

ऊपर निर्दिष्ट बलि देने की प्रथा यद्यपि किसी अज्ञानी व्यक्ति के अनुकरण से आयी हो, यह बात सत्य है, फिर भी जो ज्ञानी है और शास्त्राधार तथा शास्त्रों से परिचित है, उन्होंने क्या यह देवदेवताओं का परिसर पवित्र और शुद्ध रखने की चेष्ठा की है? जिन परिवारों का उपाध्येयत्व जिन गुरूजनों के पास है वे इन कुलदेवताओं के सेवक होते है और वह उनकी सेवा करते रहते हैं। इन गुरूजनों का उपाध्येयत्व जिन खानदानों से जुड़ा हुआ है, उन खानदानों के दोषों के यानी विद्या, संपत्ति, संतान आदि के नाश को रोकने के लिये श्राद्धपक्ष, त्रिपिंड, नागबली, नारायण नागबली, पुत्रकामेंष्टी इत्यादि विधि दोष निवारणार्थ इन पवित्र कुलस्वामिनियों के परिसार में गुरूजन करते रहते हैं। एक तरफ बलि देने का रिवाज और दूसरी

ओर आपके खानदान के जिन दिवंगत व्यक्तियों को मृत्यु के बाद मुक्ति नहीं मिली है, उनको दोषमुक्त कर सद्गति देने की विधि भी इसी जगह होती है। इसलिये यह देवताओं का परिसर हम सुझबूझ वाले लोग कितना अपवित्र कर रहे हैं इसका विचार करना आवश्यक है। दोष के अनुसार करने के विधियों का विधिनिषेध शास्त्रीय और शास्त्रोक्त पद्धति के अनुसार यद्यपि बताया गया है, फिर भी उसका विचार दुर्भाग्य से न तो अज्ञानी कर रहे हैं और न ही सज्ञानी।

इस प्रकार आपको अपनी देवदेवताओं का कृपाशीर्वाद प्राप्त होने में देर होने के कारण जो प्रसाद या कौल लिया जाता है उसका अनुमान वहां के पुजारी ऐसा बताते हैं कि देवी या देवता की आपके परिवार पर अवकृपा है। वास्तव में दुनियां के उत्पत्ति से लेकर आज तक किसी भी देव और देवता ने किसी पर अवकृपा नहीं की है। किन्तु अवकृपा दर्शित करने वाला प्रसाद या कौल देवता का न होकर देवताओं के परिसार में जो अमंगल और अपवित्र कार्य किये गये हैं उसका साक्षात्कार देवदेवता ऐसे कौल के रूप में देते हैं! किन्तु प्रसाद के रूप में देवदेवता का व्यक्त भाव जानने की शक्ति न आप में है न गुरूजनों में। इसलिये वे बताते हैं कि आपके घर पर या परिवार पर देवदेवता की अवकृपा है। यह सुनकर आप संकटग्रस्त होने के कारण गुरूजन जो उपाय बताते हैं उस विधि को करने के लिये मजबूर होते हैं। इसलिये इस प्रसाद या कौल पर निर्भर न होकर इसकी सत्यासत्यता जानने के लिये अपने घर में स्थापित देवदेवता के सामने बैठकर प्रार्थनापूर्वक जो प्रश्न पहिले कौल लगाकर पूछा था उसे पूछना चाहिये। यह प्रार्थना करते हुये प्रश्न का सही उत्तर प्राप्त होने के लिये कुछ समय मांगना चाहिये। वह इस प्रकार कि "मां तू मेरे खानदान की रक्षणकर्ती हो और मैं यथाज्ञान और यथाशक्ति तुम्हारी आराधना कर रहा हूं। प्रसाद या कौल में तूने जो अवकृपा का निर्णय दिया है इस सत्य का यदि तू मुझे तीन या सात दिनों में बताने की कृपा करोगी तो मेरे अज्ञानवश मुझसे जो कुछ गलती हुई हो, उसका मैं यथाशक्ति और यथाज्ञान प्रायश्चित कर, तेरी कृपा प्राप्त करने के

लिये हमेशा तेरी सेवा में और चिन्तन में रहूँगा। "इस प्रार्थना का प्रतिसाद आपको निश्चित रूप से तीन या सात दिनों में मिलना चाहियें"। अगर यह बात सही है तो आपके धर्मकृत्य, व्रत और उपवास या देवताओं के कुलाचार गुरूजनों पर निर्भर न होकर आपके सुयोग्य आचार विचार पर निर्भर है। इसका साक्षात्कार देवदेवता द्वारा मिलता है यह स्पष्ट होता है। इस साक्षात्कार के बाद निश्चित रूप से आपके उर्वरित जीवन काल में संदेहग्रस्त भूमिका के कारण गुरूजनों द्वारा बताई गई पूजा और उपासना पर आपको निर्भर नहीं रहना पड़ेगा।

आप भक्तजनों को नित्य और आवश्यक कौन सी उपासना करनी चाहिये इसके बारे में योग्य मार्गदर्शन पहले ही किया गया है। अब आपको नित्य रूप से कुछ प्रार्थना करने की भी आदत डालनी चाहिये। इसके लिये आसान मार्गदर्शन यह है कि बाजार में "भक्तिमार्गप्रदीप" नाम की किताब मिलती है। यह आप जानते ही है, या आपके संग्रह में यह किताब हो भी सकती है। इस किताब में अनेक स्तोत्र, आरती, भक्तिगीत, अभंग, प्रातः गीत, भूपाली आदि छपे हुये हैं। रोज नित्य रूप से इस पुस्तक में छपे मंगलाचरण घर के सभी लोगों ने कंठस्थ कर, सुबह या शाम को एकत्र बैठकर पठन करने की उनको शिक्षा देनी चाहिये। इस मंगलाचरण में सभी देव और देवताओं का नाम-निर्देश किया गया है। अलग-अलग देवताओं के स्त्रोत, पोथी पाठ करने की अपेक्षा इस मंगलाचरण के नित्य पठन की आदत सब लोग यदि डाल लें तो आसानी से धार्मिक आचरण तथा भगवान की उपासना उचित समय पर प्रतिदिन होकर आपको अपनी काया, वाचा और मन को शुद्ध रखने में मदद होगी। इस प्रथमावस्था की उपासना और साधनों से जब नींव तैयार होती है तब जीवन में दोषों के कारण जब पीड़ा आती है और आप साधक के पास दुख निवारण के लिये जाते हैं तब जीवन में दुख निर्माण होने के जो कारण है उनका निराकरण किया जाता है। उस निराकरण के अनुसार आपके जीवन में या आपके परिवार में दुख तथा अशांति निर्माण होने

में जो दोष कारण बनते हैं, उनका निवारण करने के लिये साधक को उपाय योजना करनी पड़ती है। यदि जो भक्तभाविक प्रश्न पूछने आते हैं, उन्होंने अपने जीवन की नींव सुलभ उपासना से बनायी हो तो साधक की दी हुई उपाय योजना से दोष निवारण के लिये विलंब न होकर, उन्हे इच्छित सुख सहजता से प्राप्त होगा।

ऊपर निर्दिष्ट निवेदन और कार्यपद्धति जब आप पढ़ेगे तो यह बात आपके ध्यान में आयेगी कि इस कार्यपद्धति के निराकरण और उसकी शास्त्रीय मीमांसा यह तर्कशास्त्र पर आधारित नहीं है न ही जीवन के लिये निराधार भूमिका तैयार हो इस हेतु से ये निराकरण या उपरिनिर्दिष्ट कोई भी विषय सूचित किया गया है। आज भगवान के कृपाशीर्वाद से लोककल्याण का यह कार्य शुरू होकर कई साल बीत गये हैं। इन सालों में परमेश्वर की कृपा से जिन व्यक्तियों के अड़चनों का निराकरण करने के लिये मार्गदर्शन किया है उस मार्गदर्शन पद्धति के अनुसार मानव जीवन के सुख-दुखों का जो विचारावलोकन किया गया है, उसका विचार इस कार्यपद्धति में केवल एक अभ्यास विषय इस दृष्टि से ही किया गया है। जो निराकरण पद्धति आज आपको सूचित की जाती है वह सिद्धसिद्धांत पद्धति से सिद्ध है। जो निराकरण यहां सूचित किये जाते हैं वह नियुक्त सेवक के निजी विचारों से या इच्छानुसार नहीं होते हैं यह आप सूज्ञ भक्तगण ध्यान में रखकर यदि इस कार्य का लाभ शास्त्रीय पद्धति से उठाये तो आप स्वयं ही अपने सुख के हिस्सेदार बनेंगे।

कार्य की निराकरण पद्धति

इस कार्य पद्धति की तरफ देखने की आपकी इतनी ही भूमिका है कि यहां के साधक और नियुक्त सेवक परमपूज्य बाबा के अपने जैसे ही भक्त है, तथा हमारी अपेक्षा उन पर परमपूज्य साईबाबा की अधिक कृपा है, और इसके कारण वे हम भक्तों की मुश्किलें निवारण कर रहे हैं। ऐसे संकुचित विचारों के कारण इस कार्य पद्धति ने जो लोककल्याण का काम अपनाया है उसकी मूलभूत भूमिका आप भक्तों को ज्ञात नहीं होती है और इसके बारे में ना कभी सही जानकारी ज्ञात करने का अभी तक यत्न किया गया है।

इस कार्य के केंद्र आज दिल्ली, बम्बई, पुणे, कराड, पणजी और गोवा आदि स्थानों पर हैं, वहां इस कार्य के लिये स्वतंत्र स्थान हैं और वहां नियमित रूप से सुबह और शाम पूजा और आरती होती है। लेकिन इस नित्य होने वाली पूजा अर्चा में आप भक्तगण कितने सहभागी होते हैं? जब "कामकाज" और उसके दिन और तारीख जाहिर होती है तब इन केंद्रों पर बैठने के लिये भी जगह कम पड़ती है। किन्तु नित्य उपासना के लिये गिने-चुने ही भक्त उपस्थित होते हैं। आज इन कार्य केंद्रों को चालू रखने के लिये जो धन खर्च होता है उसकी आप भक्तों से कभी अपेक्षा भी नहीं की गयी है इसके विपरीत आप पारिवारिक लोग सुखी हो यही अपेक्षा ध्यान में रखकर इन कार्य केंद्रों का मासिक खर्चा करना पड़ रहा है, फिर भी इसलिये कभी भी दुख नहीं हुआ है क्योंकि जब एक बार लोक कल्याण का कार्य सेवा कार्य के रूप में हाथ में लिया जाता है तब सेवा करना यहीं प्रधान विषय रहता है वैसे ही आपसे धन या आपको प्राप्त सुख के बदले में अपेक्षा भी नहीं होती है। इन कार्य केंद्रों पर सुबह और शाम पूजा अर्चा विधि करने का जो रिवाज है वह आप उपस्थित न हो तो भी जारी रखा गया है। इसका कारण आपका कल्याण तो है ही इसके अलावा दूसरा कारण यह है कि जिस गुरूस्थान का हम लोग आज कृपाशीर्वाद लेते हैं उसकी अदायगी कर्तव्य के रूप में चुकानी

चाहिये, ऐसी जो शिक्षा गुरूकृपाशीर्वाद से मिली है उसका आदर रखने के हेतु भी वही व्रत आज तक जारी रखा गया है।

आप सब भक्तभाविक पारिवारिक जीवन बीता रहे हैं। आज की परिस्थिति में आपको भगवान के लिये, धर्म के लिये, शुद्ध आचार-विचारों के लिये, साधना और उपासना के लिये, आस्था निर्माण होने पर भी उसके लिये उचित स्थान, उचित समय और उचित वातावरण और योग्य आचार विचार का अभाव होने से उसे आप कर नहीं सकते हैं। कारणवश नित्य धर्माचरण और देवतार्जन जो आपको करना अत्यावश्यक है, वह नहीं होता। इसका आस्था से विचार करने के बाद इन कार्य केंद्रो के लिये किराये पर जगह ली गयीं है और वहां सब सुविधायें अर्थात् स्नानादि विधि से लेकर आरती, जाप, पारायण, प्रार्थना आदि और वह भी आपके समयानुसार करने की सुविधा किये देने के बाद भी आपको उसका लाभ उठाना मुश्किल लगता है। केवल कार्य के लिये सेवा करना इतना ही उद्देश्य होता तो सभी दिनों में किसी भक्तभाविक के घर में यह कार्य हो सकता था। इसके लिये इतना खर्च करने की जरूरत भी न पड़ती। आपके जीवन में जो बाधायें आती है उनका निवारण हो, आपके जीवन का विकास हो, आपके बाल बच्चों को योग्य धर्माचरण की आदत हो, उनके जीवन की नीव धार्मिक आचार-विचार की भूमिका पर सदृढ़ हो, इन सब हेतुओं से साकार हुआ यह कार्य दुनिया के दुखी लोगों के जीवन का उद्धार करने के लिये है। यह कार्य केवल इस कार्य मे जुटे हुये प्रमुख साधक और नियुक्त सेवकों के लिये न होकर वह आप सब लोगों के लिये हैं। यद्यपि केवल अपनी समस्याओं का निवारण हो इस भूमिका से यह कार्य की ओर आप देखते होंगे फिर भी यह कार्य आपको "संकटग्रस्त" नहीं मानता है। कार्य केंद्र पर जब आप उपस्थित होते हैं तब आपके सुखदुख की पूछताछ आदर से और पूज्य भावना से समझकर आपकी ऐहिक तथा पारिवारिक समस्यायें अपनी स्वयं की ही है ऐसा मान कर श्रीसद्गुरू के कृपाशीर्वाद से आपके हित की यह कार्यपद्धति कार्यान्वित की गयी है। इस कार्य की नींव यद्यपि श्री सद्गुरू कृपाशीर्वाद से लाभान्वित हुई है फिर भी इस कार्य का विशाल

विकास जो गत अनेक वर्षो में हुआ है वह आप भक्तों की इस कार्य में जो श्रद्धा है उसका प्रतीक और प्रचीति है। यह एक तरह से शुभाशीर्वाद है और जो निष्ठा आप लोगों ने इस कार्य के लिये व्यक्त की है उसका विस्मरण कदापि नहीं होगा। इसलिये आपके लिये जो स्नेहभाव है और आपके सुखदुख में सहभागी होने की भूमिका जिस कार्य ने अवलंबित की है, ऐसे कार्य के लिये सर्वस्व से एकरूप होकर आप भक्तगणों ने "प्राप्त जीवन यह केवल ऐहिक जीवन है" ऐसा न समझ कर "मुझे इस जन्म में परमार्थिक जीवन प्राप्त करने का आद्य कर्तव्य करना है" यह कभी भूलना नहीं चाहिये। आज आप भक्तगणों के जीवन में आपके रिश्तेदार और इष्ट मित्र के पूरे परिवार की श्रृंखला नित्य रूप से चलती आ रही है। इनमें से क्या किसी को आपके जीवन के लिये निराशक्त यानी निस्वार्थ आशक्ति अर्थात् अपनापन है? इसके बारे में जब आप सोचेंगे तो आपको अपना कहने की इस कार्य की जो निरपेक्ष भूमिका सद्गुरू कृपाशीर्वाद से अपनायी गई है वह आपके माता-पिता के समान लालन-पालन के लिये नित्य आपके सामने हाथ जोड़कर खड़ी है ऐसा अनुभव होगा। ऐसा होते हुये भी आज समाज में तथा-कथित गुरूजनों द्वारा केवल अपना पेट पालने के लिये देवदेवताओं का नाम और धर्म इस्तेमाल कर जो गुरूमार्ग का आभास आज पैदा किया जाता है उसको अच्छी तरह पहचान कर, योग्य क्या है और अयोग्य क्या है इसका निर्णय कर इस कार्यपद्धति का लाभ आप को उठाना चाहिये।

वंशविमोचन :

इस कार्यपद्धति में किये जाने वाले निराकरण देवदेवताओं से संबंधित है, उनका लाभ आपको अपने जीवन में कृपाशीर्वाद के रूप में लेना है। ऐसा कृपाशीर्वाद लेने के बाद उसका यथोचित लाभ आपको क्यों नहीं होता है? इसका कारण यह है कि आपके देहिक माध्यम के बाहर जो प्रतिकूल वलय होते हैं, इन वलयों की धारणा आपके परिवार के दिवंगत व्यक्तियों की इच्छा और वासना के अनुसार होती है। ऐसी इच्छा और वासना आपके सात पीढ़ियों तक की होती है। इन इच्छाओं और वासनाओं के वलय आपने प्राप्त किये

हुये कृपाशीर्वाद पर आघात करते हैं और आप भक्तों के जीवन में जो ऐहिक इच्छायें होती है, अर्थात् विद्या, संपत्ति, संतान और दीर्घायुष्य, इनको प्राप्त करने में एक तो दीर्घकाल लगेगा, या यदि इन वलयों को विमोचित करने का साधन आपको प्राप्त नहीं होता, तो आपकी अपेक्षायें इस जिंदगी में पूरी नहीं होती। यह जो क्रिया, वातावरण से इच्छा और वासनाओं के रूप में आपके देह के साथ एकरूप होती है इन वलयों को आपके जीवन से मुक्त कर, वंश में जो व्यक्ति दिवंगत हुये हैं और जिनकी इच्छा और वासनायें इहलोक में वलय के रूप में कार्य कर रही है इस प्रकार के इन वलयों को विमोचित कर मुक्तावस्था में या उच्चावस्था में जो मृतात्मायें नहीं पहुंची हो उनको सद्गति देने का जो साधन इस कार्यपद्धति में है उसको "वंशविमोचन" कहते हैं।

वंशविमोचन शब्द का उच्चारण करने से हम इतना ही अर्थ समझते हैं कि हमारे जीवन और वंश में जो दोष है उसका विमोचन सद्गुरू के द्वारा किया जाना। ऐसा विमोचन संज्ञा का अर्थ आप सूज्ञता से लगायेंगे फिर भी साधक के अवस्था में जो साधक है, उनके लिये इस साधन की प्राप्ति करना ही बहुत कठिन काम है। इसके अलावा साधन प्राप्त करने पर भी उसका लाभ दुनिया में सबको देने के लिये और जीवन में जो दोष है उनका निवारण करने के लिये साधक को बहुत कष्ट करने पड़ते हैं। इस कार्यपद्धति में हर साल जो विधि सम्पन्न की जाती है उसका लाभ हमको आसानी से मिलता है, इसलिये साधन सरल है ऐसा नहीं समझना चाहिये। कार्यपद्धति में यह साधन और उसकी प्राप्ति जो गुरूकृपाशीर्वाद से हुई है इसके पूर्वकाल में क्या इन दोषों के निवारण के लिये कोई साधन नहीं थे? तो आज भी इन दोषों से आपके परिवारजनों को मुक्त कराने के लिये धर्मशास्त्रानुसार कुछ विधि बताये गई हैं। उदाहरणार्थ होमहवन, जाप, व्रत, अनुष्ठान, इसके अलावा नवचंडी, शतचंडी, सहस्त्रचंडी, बाजपेय यज्ञ, त्रिपिंडी, नागबलि, इसके सिवाय पीपल की प्रदक्षिणा करना, औदुंबर के पेड़ की प्रदक्षिणा करना या कुछ दानधर्म इत्यादि करना। किन्तु ये सब धर्मकृत्य विधियों के रूप में किये जाते हैं। जीवन में

दोष निवारण के लिये जब कृपाशीर्वाद की प्राप्ति होती है तब कृपाशीर्वाद से प्राप्त हुये उन साधनो में और शास्त्रों द्वारा बताये गये विधियों में जमीन-आसमान का अंतर होता है। दोष निवारण के लिये जब गुरूकृपाशीर्वाद की प्राप्ति होती है, तब उन साधनों में गुरूसामर्थ्य का समावेश होता है। यानि यह साधन अस्त्र या शस्त्र जैसा प्रभावी होता है। जब यह साधन यानि सद्‌गुरू की शक्ति दोष निवारण के लिये कार्य करती है, तब इन दोषों के वलय तत्काल दूर होते हैं। किन्तु जब हम किसी विधि को व्यक्तिगत रूप से करते है तब वह धार्मिक विधि करते समय प्रथमतः इन दोषों का उच्चारण संकल्प विधि से करना पडता है। वास्तव में कोई भी धार्मिक विधि यह संकल्पयुक्त करनी चाहिये, ऐसा शास्त्र है यह यद्यपि सत्य है, फिर भी जो दोष वलय रूप में स्थित है तथापि जो अभी तक माध्यम में धारण नहीं हुये हैं उनका देह माध्यम से संकल्प के समय वाणी द्वारा जब उच्चारण किया जाता है, तब यह सब वलय जो आपके देह के बाहर होते है, वे देह के साथ एकरूप होते हैं। इसलिये दोष निवारण के लिये जब आप धार्मिक विधि करते हैं तब दोषों का वाणी से उच्चारण नही करना चाहिये। कारण जब आप विधि करने के लिये बैठते हैं उसके पूर्व इन प्रखर दोषों के परिणामों की अनुभूति आपको अपने जीवन में पहले ही हो चुकी होती है। ऐसा होते हुये जब आप वाणी माध्यम से इसका उच्चारण करते हैं, तब इन दोषों में से अधिक दोष आपके देहिक माध्यम के साथ एकरूप होते हैं। दोष निवारण के लिये संकल्पों का उच्चारण करने के बाद दोष निवारण के लिये जिन इष्ट देवताओं की आवश्यकता होती है, उनकी स्थापना कर पूजनादि विधि किये जाते हैं। इसके बाद जो प्रधान कृत्य है यानी होमहवन उसकी शुरूआत होती हैं शास्त्र के अनुसार होमहवन विधि करने के बाद पूर्णाहुति का संकल्प होता है। यह पूरा होने पर भी इस विधि के अनुसार आपके जीवन के दोषों में से केवल पचास प्रतिशत दोष जो आपके बाहरी वातावरण में होते है, उनका विमोचन होता है। किन्तु इस विधि के आरंभ करने से पूर्व, संकल्प रूप में आपने अपनी वाणी से आपको जो त्रासदि व्याधि होते

हैं उनका उच्चारण किया होता हैं। इसलिये उसके पचास प्रतिशत दोष आपके माध्यम में रहकर यह बचे हुये दोष यदि आप समझ न सके तो दिये हुये विधि से पचास प्रतिशत फल आपको मिलकर बचे हुये पचास प्रतिशत दोष आपके वंश की भावी पीढियों के जीवन में दुबारा कर्म करने के लिये कार्यान्वित होते हैं। उस दरम्यान एक पीढ़ी के बाद किसी की मृत्यु हो जाती है तो पुनश्च वातावरण में पितृत्रयी यानी पिता, पितामह और प्रपितामाह और मातृत्रयी निर्माण होती है। इस प्रकार इन दोषों का कार्य कालानुरूप अबाधित (बेरोकटोक) रहकर आपके खानदान की जो अधोगति होती है, वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी रहकर एक पीढ़ी ऐसी जन्म लेती है कि उसमें न विद्या, न संपत्ति, और न ही संतान होती है। इसलिये इस कार्यपद्धति में यह विधि गुरू द्वारा की जाती है क्योंकि यह विधि करने का अधिकार गुरू को दिये जाने पर यह वलय गुरू के सामर्थ्य के कारण उनके वाणी से इनका उच्चारण होने पर भी गुरू माध्यम से दूर रहते है यानि सौ प्रतिशत वलय आपके माध्यम के बाहर रहकर कृपाशीर्वाद पाने के लिये यह जो विधि की जाती है उसका लाभ आपको यथावकाश निश्चित रूप से शत प्रतिशत मिलता है।

इस विधि के संपादन के संबंध में पुराने शास्त्रों में यह कहा गया है कि यह विधि अपने निवासी वास्तू में करने से निवासी वास्तू दूषित होती है। अगर किसी ने अज्ञानवश यह विधि अपने वास्तू में किया तो पुनश्च उस वास्तू की वास्तूशांति करनी चाहियें। इसलिये पुराने शास्त्रों ने ऐसे विधियों को संपादन करने के लिये जो तीर्थक्षेत्र बताये हैं, वह हैं रामेश्वर, गोकर्ण, महाबलेश्वर, नरसोबा की बाडी, त्र्यंबकेश्वर, तथा मध्यप्रदेश में ओंकारेश्वर, और उत्तर भारत में काशी, गया, प्रयाग आदि। इन स्थानों पर ही विमोचन विधि वैदिक और याज्ञिक गुरूजनों से करा लेना चाहिये।

यह विधि हर परिवार को व्यक्तिगत रूप से करने के लिये बहुत खर्च और प्रयास करना पड़ता है। इतना करने पर भी यह विधि पूर्ण रूप से हितकारक होगी ऐसा यह निश्चित रूप से दावे के साथ नहीं

कहा जा सकता है। तो भी यह विधि अधिकांशतः परिवार के कल्याण के लिये होने से इसको अनदेखा भी नहीं किया जा सकता। इसलिये गुरूमार्ग में सद्‌गुरूकृपाशीर्वाद से इसकी व्यवस्था की गयी है, यह बताने के बाद हर भक्तभाविक को इसका आस्था से विचार कर हर साल किये जानेवाले इस विधि में सम्मिलित होना चाहिये। यह साधन प्राप्त करना कितना दुष्कर है इसके बारे में ऊपर बताया गया है। इस साल परमपूज्य बाबा की आज्ञानुसार श्री क्षेत्र नरसोबाबाडी में ये हवन विधि पूरी सिद्धता से किये गये थे। उस समय वहां उपस्थित वेदवैदिक व्यक्तियों को भी इस विधि के बारे में आश्चर्य हुआ था। इस विधि की समाप्ति होने के बाद उनके मुख से इस प्रकार उद्‌गार निकले, "लोक कल्याण के हित में इतना प्रखर साधन प्राप्त कर अपने भक्तो के भविष्य की व्यवस्था आज के कलयुग में अन्य किसी ने की हो ऐसा हमें नही लगता"। यह मेरा व्यक्तिगत अभिमान नहीं, किन्तु इस कार्य के लिये मिला हुआ जो गुरूकृपाशीर्वाद है, उस कार्य का यह अभिमान है। यह खुले मन से कहने में हमें अभिमान महसूस होता है।

यह विधि और वह करने के पीछे जो सद्‌हेतु है वह आप भक्तभाविकों को ऊपर निवेदन किया है। इस विधि में सम्मिलित होने के बाद कार्यपद्धति में मार्गदर्शन के अनुसार सब भक्तभाविकों को इस तरह बताया जाता है कि वह हर साल भाद्रपद महिने में जो पितृपक्ष आता है, उसमें किसी भी तिथि को या सर्वपितृ अमावस्या के दिन श्राद्ध पक्षादि न करें। मगर इसके पीछे जो सद्‌हेतु है वह अभी तक बहुत से लोग नहीं जानते हैं। आपके वंश की सात पीढ़ियों में जो व्यक्ति दिवंगत हुये हैं वह इस दुनिया के साथ अपना हितसंबंध अपनी इच्छावासना और ऋणानुबध के अनुसार जोड़कर अपनी इच्छा और वासनाओं की ही केवल पूर्ति करते हैं, इतना ही नहीं किन्तु उनके मरणोत्तर जीवन में जो अवस्था प्राप्त हुई है, उस अवस्थानुसार उनकी इच्छा और वासनाओं से जो वलय निर्माण होते हैं उनका समावेश आपके जीवन में होकर आपका काया, वाचा और मन दूषित होता है। अर्थात् गुरूमार्ग अंतर्गत वंशविमोचन विधि से उनकी जो इच्छावासना इस दुनियां के साथ जुड़ी है उसका ही विमोचन नहीं होता तो जिन वासनायुक्त अवस्था में वह होते है, उनको उत्तम

लोक प्राप्त कराने के लिये यह वंशविमोचन विधि होती है। इसके बाद उनकी जो स्थिति होती है उसमें स्थित्यंतर होकर वह उत्तम लोक प्राप्त करते हैं। इस स्थिति में अगर हम लोग पुनश्च यह मानेंगे कि हम लोग दिवंगत व्यक्तियों के ऋणानुबंधनों में है और परंपरानुसार श्राद्ध विधि करते हैं तो गुरूमार्ग में समाविष्ट वंशविमोचन विधि के बाद प्राप्त उत्तम अवस्था से उन दिवंगत व्यक्तियों को आप पुनःश्च कनिष्ठ अवस्था में आहुत करते हैं। इस आवाह्न से वंशविमोचन विधि के कारण उनको स्वर्गलोक प्राप्त होते हुये वार्षिक श्राद्ध में पिंडदान कर आप जो उनका आवाह्न करते हैं, उसके कारण उनको उत्तम अवस्था में पुनःश्च प्रवेश करना आसान नहीं होता।

ऊपर निर्दिष्ट प्रकार धार्मिक है इसलिये उसको "श्राद्धपक्ष" कहते हैं। उसी प्रकार आज समाज में "प्लंचेट" नामक एक विधि है, जिसमें अड़चनों के बारे में प्रश्न पूछने के लिये मृतात्माओं को आवाह्नित किया जाता है। प्लंचेट करने में यद्यपि आसपास के लोगों को मजा आता है किन्तु जो व्यक्ति यह करते समय उपस्थित होते हैं, उनमें से एकाद व्यक्ति ऐसा होता है कि जिसका देहिक माध्यम इन मृतात्माओं को प्रवेश करने के लिये बहुत ही अनुकूल होता है। इस प्रकार अनुकूल माध्यम में यह मृतात्मा प्रविष्ट होने के बाद जिस व्यक्ति में यह प्रविष्ट होता है उस व्यक्ति की इच्छित जीवन की अपेक्षाएं कार्यान्वित होने में उस की बाधा पैदा होती है। इतना ही नहीं अपितु उस मृतात्मा को मृत्यु के पूर्व जो व्याधि, जो रोग और जो बीमारी हुई हो उसी प्रकार की व्यथा इस प्लंचेट की वजह से उस माध्यम को होती है। इस प्रकार की बीमारी होने के बाद यदि डॉक्टरी सलाह ली गई और व्यक्तिगत जॉच करवाई गई तो भी मूल रोग की जॉच डॉक्टर भी नहीं कर पाते हैं। इसके कारण आपका पैसा तो अनावश्यक खर्च होता ही है और शारीरिक हानि भी होती है।

हर व्यक्ति को भूत और भविष्यकाल उसके कर्म के अनुसार होता है और वह कर्माधीन होने से उसका कार्य कर्म के अनुसार होता है, इस स्थिति में कर्मबंधन के कारण जब एकाध इच्छा अनुकूल

करना मुश्किल होता है तब वह प्रतिकूल कर्म अनुकूल करने का सामर्थ्य पूजनादि विधि पर या साधक के मार्गदर्शन पर निर्भर होता है। इसके विपरीत आप अन्य तरीके से प्लंचेट पर मृतात्माओं को आवाह्न कर जो अपने जीवन के लिये "भूत" होते हैं उनको सवाल पूछते हैं। परन्तु उनको भी जन्मप्राप्ति के समय इसी भूत और भविष्य काल से गुजरना पड़ा था और कारणवश उनको भी कर्म के अनुसार दुख उठाना पड़ता था। तब सूझबूझ से ऐसा सोचना चाहिये कि जिसमें भूत और भविष्य बदलने का सामर्थ्य या अधिकार होता है वही आपके मुश्किलों का निवारण कर सकता है। अन्यथा इन मृतात्माओं से आप जो सवाल पूछते हैं उससे सुख, शांति तो प्राप्त होती ही नहीं किन्तु उन मृतात्माओं का इहलोक पर आने से आपका देहिक माध्यम उनका वास्तव्यस्थान बनकर आप स्वयं अपनी अमूल्य जिंदगी का नाश करने के लिये जिम्मेंदार बनते हैं। इसलिये ऐसा कहना उचित होगा कि श्रद्धा से आप जो श्राद्धपक्ष विधि एक अनिवार्य धार्मिक विधि के रूप में आपके जीवन में करते हैं, वह प्लंचेट के समान ही होता है। यह विधि आपको एक दोष से मुक्त कर दूसरे अन्य दोषों की निर्मिती करता है तो क्या ऐसे दोष को विधि कह सकते हैं? तो इसलिये गहराई से अभ्यास करने पर और शास्त्रशुद्ध तरीके से इन दोषों के परिहार के लिये जो वंशविमोचन साधन समिति को प्राप्त हुआ है ऐसा अलौकिक साधन आपको अन्य जगह अनुभव में नहीं आयेगा।

इस साल पहली बार दूसरा एक अन्य महत्वपूर्ण विधि इस कार्यपद्धति में सम्मिलित किया गया है, उसको "ऋणविमोचन" विधि कहते हैं। यह विधि वंशविमोचन विधि जैसा आसान और सुलभ नहीं है। इसके लिये साधक माध्यम में यह विधि करने से हेतु पूर्व तैयारी के दृष्टि से अपनी दैविक शक्ति कुछ समय के लिये आरक्षित करनी पड़ती है। क्योंकि यह जो ऋणविमोचन विधि है, वह प्राप्त जन्म में जिस देहिक माध्यम से आप जीवन व्यतीत करते हैं, उस देह में जो पांच ऋणानुबंध अर्थात् जन्मकर्म, ऋणानुबंध, जन्मजन्मांतर ऋणानुबंध, मातृपितृ ऋणानुबंध और देवादिक ऋणानुबंध होते हैं

उन्हीं ऋणानुबंधो से संबंधित है। ये ऋणानुबंध कई बार एक दूसरे के अनुकूल या प्रतिकूल होते हैं। इसके फलस्वरूप आप अपना जीवन व्यतीत करते समय अपने परिवार के बारे में जो विभिन्न अपेक्षायें आप रखते हैं उनकी फलप्राप्ति होने में यह ऋणानुबंध बाधा पैदा करते हैं। इनका ऋणमोचन करना इसका मतलब इन ऋणानुबंधों को एक दूसरे के लिये अनुकूल करना है तथा जन्मजन्मांतर के अनुसार इन ऋणानुबंधों के कारणस्वरूप यदि कोई दोष प्राप्त जीवन में अन्य लोगों के जीवन की ओर देखकर पैदा किये गये हो उनका भी विमोचन करना पड़ता है।

इसके बाद महत्वपूर्ण निवेदन आप ज्ञान और अज्ञानवश जो श्राद्धपक्ष आदि विधि करते थे उनके बारे में है। आप भक्तगणों को उपासना दीक्षा, नामस्मरण दीक्षा, अनुग्रह दीक्षा, गुरूदीक्षा और कारण दीक्षा इनका लाभ गुरूकृपा से होने के बाद, भविष्य में श्राद्धपक्षादि विधि व इसी प्रकार तीर्थ क्षेत्रो में आपके खानदान के दिवंगत व्यक्तियों को सद्गति प्राप्त हो इसलिये श्राद्ध, त्रिपिंडी, नारायण नागबलि आदि विधि आपको करने की आवश्यकता नही रह जाती। यह सूचित करने का कारण क्या है इसका आप भक्तों ने योग्य विचार नहीं किया हैं। यह सूचित करने का मुख्य कारण यह है कि आपके खानदान में दिवंगत व्यक्तियों को मरणोत्तर जीवन में सद्गति प्राप्त करा देने का सामर्थ्य इन श्राद्ध पक्ष विधियों में नहीं है। श्राद्ध शब्द का मूल रूप श्रद्धा है। जिस खानदान में जो व्यक्ति दिवंगत हुए हैं और जिनके त्रणानुबंध से और हितसंबंध से हमने जन्म लिया है ऐसे व्यक्तियों के लिये श्रद्धा व्यक्त करने का कर्तव्य हमें करना होता है। यदि उनके प्रति कृतज्ञ होकर श्रद्धा व्यक्त करने का कार्य आप भक्तगण सालो तक श्राद्धपक्षादि विधि कर और पिंडदान कर व्यक्त करते होंगे तो ऐसा करने के बाद भी आपके खानदान के दिवंगत व्यक्ति सद्गति प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिये जब आप भक्त संकट निवारण के हेतु गुरूमार्ग की ओर आये तब आप भक्तों को प्रारंभ में ही कारणदीक्षा नहीं दी गयी। इसका कारण यह है कि आप भक्तों

को प्राप्त जीवन में पारिवारिक कर्तव्यो की पूर्ति और जीवन की सार्थकता करनी है और जिस कारणदीक्षा से ये दो उद्देश्य आप भक्तगण प्राप्त करने वाले हो, इस कर्तव्य के मार्ग में प्राप्त जीवन का अन्य कोई भी कारण रूकावट नहीं बन पाना चाहिये। इसलिये आप भक्तों के हित में और कल्याण के लिये वंशविमोचन, कर्मविमोचन और ऋणविमोचन विधि कारणदीक्षा से पूर्व किये गये। वह इसलिये कि इस जन्म का मुख्य कारण जीवन की सार्थकता करना होता है। यह जिस कारणदीक्षा से सिद्ध होता है, इस कारणदीक्षा के मार्ग में आप भक्तों के जीवन का या आपके अपने परिवार का कोई अन्य कारण रूकावट पैदा न कर पाये, इस प्रकार की आप भक्तों के कल्याण की योजना और सार्थकता जिस उपासना में है उस उपासना को कारणदीक्षा कहते हैं।

इस प्रकार की व्यवस्था आप भक्तों के जीवन में गुरूकृपाशीर्वाद से की गयी है। अब आप भक्तगण ऐसा सवाल पूछेगें कि जब हम भक्त लोगों के प्राप्त जीवन में निरंतर सुख-शांति-समाधान की गुरूकृपाशीर्वाद से व्यवस्था हुई है तो फिर समय-असमय पर दुख तथा अशांति क्यों पैदा होती है? तो इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि श्रीसद्गुरू ने कृपावंत होकर हम भक्तों को कल्याण के लिये कृपाशीर्वाद दिया है, उस कृपाशीर्वाद से एकनिष्ठ रहकर, प्राप्त कृपाशीर्वाद से ही हमारा जीवन सार्थक होगा, इस प्रकार की श्रद्धा हम भक्तगण निर्माण नहीं कर पाते हैं। और दूसरा कारण यह है कि आप ज्ञान-अज्ञानवश, मिन्नतें मानकर इसका भी अंदाज लगाते है कि क्या इनसे जल्दी ही कुछ अधिक सुख की प्राप्ति होती है? श्राद्धविधि के बदले में आपने वशंविमोचनादि किये हुये हैं इसलिये अब श्राद्धविधि न करने के लिये आपको सूचित किया था। लेकिन यह सूचित करने के बाद भी जब इन विधियों को आप करते हैं, तब इन विधि यों को करते समय जिन दिवंगत व्यक्तियों का उच्चारण इन श्राद्धपक्षादि विधि में मातृत्रयी या पितृत्रयी कहकर होता है, इन सभी को वंशविमोचन द्वारा सद्गति पहले ही प्राप्त हो चुकी है यह जानने

का सामर्थ्य आप भक्तगणों में नहीं है। इसलिये इन व्यक्तियों को सद्गति प्राप्त हो ऐसी इच्छा रखकर जब आप श्राद्ध विधि करते हैं, तब स्थिति में वे आपके आवाहन को स्वीकार नहीं कर सकते। उनके स्थान पर अन्य दिवंगत व्यक्ति, जिनको सद्गति प्राप्त नहीं हुई है और जो मरणोत्तर जीवन के बाद उनकी इच्छावासनानुसार इस जगत के साथ हितसंबंधित है ओर जिनका आपके परिवार के साथ कोई भी हितसंबंध नहीं है, ऐसी मृतात्मायें सद्गति प्राप्त करा लेने के इस आवाह्न को स्वीकार कर श्राद्ध में उपस्थित होते हैं और यह विधि आपके द्वारा होने के बाद वे अदृश्य रूप से आपके जीवन परिसर में ही विचरते रहते हैं। इस कारण आपको आपने परिवार में दुख तथा अशांति महसूस होती है। मगर आपने स्वयं ही गलत मार्ग का अवलंब कर अपने जीवन में दुख या अशांति पैदा की है, इसको अनदेखा कर, श्रीगुरू ने आपको जो कृपाशीर्वाद दिया है उसी से ही कोई बाधा पैदा हुई है इस प्रकार की श्रद्धा आप निर्माण करते हैं। गुरूमार्गदर्शन के अनुसार आप भ्क्तों का जीवन गुरूरूप हो इस प्रकार की आपकी सही तीव्र इच्छा और प्रबल श्रद्धा हो तो गुरूमार्ग के साथ आप लोगों को इतना निष्ठावान होना चाहिये कि अगर परमेश्वर भी आपके सामने आकर यह पूछे कि "जो चाहिये वह मांग लो" तो आपके मुंह से यह जवाब निकलना चाहिये कि मुझे क्या चाहिये या नहीं चाहिये इसको जानने का सामर्थ्य मेरे गुरू में है और वह जो मुझे देंगें उसी में मेरा निरंतर कल्याण है। "इतनी दृढ़ भूमिका यदि श्रद्धाभक्ति से आपके जीवन में पैदा करेंगे तब प्राप्त जीवन में सुख और शांति की अपेक्षा न करते हुये मेरे प्राप्त जीवन की सार्थकता किसमें है और किस मार्ग से वह मुझे प्राप्त होगा?" केवल यही विचार आप हमेशा गुरू के साथ बैठकर करेंगे।

इस अवस्था से यद्यपि आप स्वयं को ही इस साधना से पारमार्थिक अवस्था का लाभ हुआ होगा फिर भी जिस पारिवारिक कर्तव्य के लिये हमने जन्म लिया है उन कर्तव्यों की पूर्ति की ओर दुर्लक्ष नहीं करना चाहिये। साधन अवस्था के बाद जो साधक अवस्था

प्राप्त होती है उस में जो महत्वपूर्ण लाभ हमें जीवन में होता है वह यह है कि, इस अवस्था प्राप्ति के पूर्व अपना पारिवारिक कर्तव्य निर्विघ्न रूप से हम कर नहीं पाते थे। किन्तु जब साधक अवस्था में आप अपनी काया, वाचा और मन साधना से एकरूप करते हैं तब यह दैहिक माध्यम आपकी नित्य साधना से साधनामय होता है। किन्तु यद्यपि इससे आप अपने पारिवारिक कर्तव्य निर्विघ्न रूप से करने में समर्थ बनते हो फिर भी इन कर्तव्यों को निभाने में देवादिक और गुरूआशीर्वाद की जिस साधना को आपने स्वीकार किया है उसे मजबूर नहीं करना चाहिये। क्योंकि यदि आप पारिवारिक कर्तव्यो के लिये नित्य रूप से की जाने वाली सेवा खर्च करोगे, तो आपको आगे जो महत्वपूर्ण अवस्था अर्थात् साध्य अवस्था प्राप्त करनी है, वह अनेक जन्मों तक मार्गदर्शन होने पर भी प्राप्त नहीं होगी।

ऊपर निर्दिष्ट तीन अवस्थाएं अर्थात् साधक, सिद्ध और साध्य इनको प्राप्त करने का उद्दिष्ट ध्यान में रखकर अनेक साधक दीर्घकाल तक अपनी इच्छानुसार भगवान की भिन्न-भिन्न उपासनाएं या सेवाओं को अंगीकार करते हैं। जब ऐसा करने पर भी उन्हें जीवन में इस मार्ग का अशंमात्र भी बोध नहीं होता है ऐसे समय वे निराश होकर अपने जीवन के बारे में विपरीत तरीके से सोचना शुरू करते हैं। किन्तु इस मार्ग के आरंभ में पहले जो साधना करनी होती है उसके बारे में शास्त्रीय मीमांसा के लिये भक्तगण किसी अधिकारी व्यक्ति से मार्गदर्शन नहीं लेते हैं। इसके अलावा जिस काया, वाचा और मन से यह साधना करनी है उस काया, वाचा और मन के हितसंबंध गत अनेक जन्मोनुसार के जिन ऋणानुबंधों से संबधित होते है, उन ऋणानुबंधों की मुक्तता यानी विमोचन अत्यावश्यक होता है। इस प्रकार का विमोचन गुरूकृपाशीर्वाद से ही इस जीवन में विमोचनादि विधि कर, यदि इन तीनों साधनाओं का अंगीकार किया जाता है तभी इस प्राप्त जीवन में पारमार्थिक अवस्था का लाभ होता है।

इहलोक में हमारा जन्म पूर्व जन्मकर्म और जन्मजन्मांतर के अनुसार प्राप्त होता है। पूर्व जन्मकर्म और जन्मजन्मांतर में ज्ञात और

अज्ञातवश जो पातक प्रमाद होते हैं उनकी प्रखरता के अनसुार पुनश्च जन्म प्राप्ति के समय इन दोषों का पुनर्जीवन होकर वह यथोचित तरीके से विमोचित होंगे इस प्रकार का व्यापक सद्विचार जन्मजन्मांतर में जन्मप्राप्ति से पूर्व निर्माण होता है और इस विचार के अनुसार जन्म प्राप्ति के लिये धर्म या जाति आदि ध्यान में न लेकर, यह जन्मजन्मांतर अपना प्राप्त कर्तव्य और प्राप्त हुये जन्म के दोषों का, जहां सुलभता से विमोचन होगा वहां जन्म लेने में कार्यकारी होता है। जन्मजन्मांतर में की जन्मप्राप्ति से संबंधित जो भिन्न-भिन्न कार्यकारण मीमांसाएं हैं, वह हमारे पढ़ने में न आने के कारण जिस धर्म में जिस जाति में या जिस वंश में हमने जन्म लिया होता है उन्ही की पूज्यता और श्रेष्ठता मानना यही हमारा बड़प्पन बन जाता है। लेकिन यह ऐसा नहीं है। प्राप्त जन्म में, जो भी धर्म, जाति या परिवार जन्मप्राप्ति के लिये सुलभता से प्राप्त हुआ हो उस प्राप्त जन्म में भी जन्म का सार्थक करने का कर्तव्य निभाना सहज संभव है। इसके लिये किसी उच्च धर्म या उच्च जाति में ही जन्म होना जरूरी नहीं है और उच्च धर्म या जाति में जन्म हुआ है इसलिये हम उच्च है ऐसा आभास निर्माण करना यह भी अज्ञान का लक्षण है।

अब इस हितसंबंधों में जन्म प्राप्ति के बाद प्राप्त जन्म जिस धर्म, जाति और वंश के अनुसार हुआ है उसका आस्थापूर्वक विचार कर उस धर्म के अनुसार प्राप्त जन्म में जो कर्तव्य करना है वह यथायोग्य रीति से कर इस जन्म को सार्थक करना चाहिये। इस कर्तव्य को सूज्ञ लोग भूलकर अन्य धर्म के अन्य जाति के या अन्य परिवार के व्यक्तियों को जो सुख, शांति प्राप्त हुई है उसका लाभ हमें नहीं हुआ है यह सोचकर "यदि इस प्रकार का जन्म स्वयं को मिलता तो हम अधिक सुखी हुये होते" ऐसी प्रकार ईर्ष्या मन में बनाये रखते हैं। तब ऋणानुबंधों में कमी आती है और यह ऋणानुबंध इस तरह के विचारों के कारण विकसित न होकर कर्तव्य पूर्ति में बाधक बन कर अधिक दुख निर्माण करने के जिम्मेंदार बनते हैं।

जन्मकर्म ऋणानुबंध :

हालांकि आप को अन्न, वस्त्र और मकान जन्मकर्म के अनुसार जरूरत से ज्यादा मात्रा में प्राप्त होने पर भी उस सुख में किस प्रकार आनंद मनाना चाहिये इसका विचार न कर जब आप अपने सुख की अपेक्षा दूसरों को प्राप्त हुये सुख से मोहित होकर अपने को प्राप्त सुख समाधान का अनादर करते हो तब मन से असंतुष्ट रहने की दैहिक स्थिति आप अकारण पैदा करते हैं। इस प्रकार सुख प्राप्त होकर भी उस सुख में आनंद न मनाने का जो दोष आप पैदा करते हैं, यही दोष आपके पुनश्च जन्म प्राप्ति के समय जन्मकर्म में समाविष्ट होता है और उस समय यह दोष पुनश्च कार्यान्वित होकर यद्यपि आपको सुख शांति और समाधान प्राप्त हुआ भी तो आपको उस सुख का लाभ नहीं लेने देते।

जन्मजन्मांतर ऋणानुबंध :

आज हम लोगों को जो जन्म प्राप्त हुआ है वह भिन्न-भिन्न जाति या धर्म में प्राप्त हुआ हो, किन्तु हमें ऐसा जन्म प्राप्त होने पर भी प्राप्त जन्म से समाधान नही हैं। जब-जब हम जन्म लेते हैं उससे पहले ही भगवान ने हमें जन्म प्राप्ति के बाद कौन सा धर्म, कौन सी जाति प्राप्त जन्म का सार्थक करने योग्य है, इसका विचार करके ही जन्म दिया है। फिर भी इस जन्म के प्रति आदर न रखकर हम अपने आसपास के लोगों की सुख, शांति, संपत्ति और संतान को देखकर “यदि इन लोगों के घर में मेरा जन्म हुआ होता तो मैं कितना भाग्यवान होता” इस तरह के उद्‌गार हम व्यक्त करते हैं। वास्तव में इस प्रकार का जन्म आपके हित में होता तो भगवान ने आपको ऐसा जन्म अवश्य प्रदान किया होता। अब प्राप्त जन्म का अनादार कर के दूसरे व्यक्ति का जन्म अधिक अच्छा है यह सोचकर जो चिंता आप लोग पैदा करते हैं वही चिंता अगले जन्म में जन्मजन्मांतर में आकर पुनश्च जब आपको जन्म प्राप्त होता है, उस जन्म में सुख, शांति, संपत्ति और संतान आदि प्राप्त होने पर भी आप

हमेशा चिंताग्रस्त रहते हैं। फलस्वरूप खुशी के मौको पर भी आपको चिंता है, संकट में तो चिंता होती ही है और चिंता के समय में भी आप चिंताग्रस्त रहते हैं।

इतरेजन ऋणानुबंध :

आज इस दुनिया में जन्म लेने पर केवल हम ही इस दुनिया में अकेले हैं ऐसा नहीं। जब हम प्रौढ अवस्था प्राप्त कर लेते हैं, उसके बाद हमारे जीवन का परिचय स्वयं के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों से होता है और हम भी उनके लिये इतरेजन जैसे होते हैं। इस प्रकार जीवन में आपके साथ जिनका परिचय हुआ है ऐसे इतरेजनों के साथ आपके कुछ समय तक रोचक हितसंबंध बनते हैं और आगे किसी कारणवश वह बिगड़ते हैं। जिस प्रसंगों के कारण से ये हितसंबध बिगड़ते हैं उन प्रसंगों के अनुसार उन लोगों को भूल जाना अपना कर्तव्य है। इन लोगों के साथ हितसंबंध बिगड़ने से पहले जो आनंद के सुख क्षण इनके साथ हमने भोगे हैं, उनका स्मरण हम कदापि नहीं करते। किन्तु उनके साथ बेबनाव होने पर जिंदगीभर उनके प्रति हम अनादर व्यक्त करते हैं या उनकी अवहेलना करते रहते हैं और उनके बारे में अपशब्द उद्‌गारते हैं। इस प्रकार के दोषों के कारण जब आप फिर से जन्म प्राप्त करते हैं तब ये दोष दूसरे लोगों को न लगकर आपके परिवार में आपको इस तरह हानिकारक होते हैं कि जन्म देनेवाले मां-बाप और भाईबहनों के प्रति मन में प्रेम न होकर आपस में एक दूसरे के प्रति विरोध की भावना निर्माण होती है और ऐसी भावना के कारण पूरा परिवार तितर-बितर होने के लिये आप स्वंय जिम्मेंदार होते हैं। इसको ही आपसी वैमनस्य का नाटक कहते हैं।

मातृपितृ ऋणानुबंध :

अपने समाज में जो बुजुर्ग व्यक्ति, यानी जो आपसे उम्र, ज्ञान, अनुभव उपासना में श्रेष्ठ होते हैं और साधना या लोककल्याण की सेवा के लिये अपने जीवन का त्याग कर लोगों का हित हो इस

विचार से वे अपना जीवन व्यतीत करते हैं उन सब के प्रति आदरभाव, पूज्यता और नम्रता व्यक्त करना हमारा कर्तव्य है। इसके विपरीत होता यह है कि जब हम प्रौढ होते हैं तब अपने ज्ञान तथा संपत्ति के बल पर खुद को अन्यों से बहुत श्रेष्ठ समझने लगते हैं और व्यर्थ गर्व से सब बुजुर्ग लोगों की भर्त्सना करते हैं और उनकी ओर अनादर के भाव से देखते रहते हैं। इस जीवन में औरों की तुलना में हमें विद्या और धन अधिक प्राप्त हुआ है, इसका गर्व होकर आप अपने से कम मात्रा में जिन्हें सुख प्राप्त हुआ है ऐसे लोगों की ओर तुच्छता से देखते हैं। वास्तव में यद्यपि यह दोष देह में नहीं होता है, फिर भी जीवन व्यतीत करने के जो साधन दिये गये हैं वे साधन ही सब कुछ हैं ऐसा समझकर जो व्यक्ति यह जीवन अंहकार से व्यतीत करता है उसको इस दोष का परिणाम अगले जन्मों में भुगतना पड़ता है। इसलिये जो हम से उम्र में बड़े हैं उन्हें हमें अपने माता-पिता के समान मानना चाहिए जिन्होंने हमें विद्या दान किया है, वे भी हमारे माता-पिता के समान होते हैं और जो अन्य कोई कर्तव्य बुद्धि से इस दुनियाँ में कार्य कर रहे हो उनकी भी मातृपितृवत संभावना करनी चाहिये। इसी शिक्षा को मातृदेवोभव, पितृदेवोभव, आचार्यदेवोभव यह वचन सार्थक करता है। इस वचनोवित का पालन न करने से इन दोषों का परिणाम अगले जन्म में यह होता है कि ऐसे व्यक्ति को जन्म देने वाले मां-बाप को सुख से तो वंचित होते ही हैं किन्तु अन्य लोग भी उसे विद्यावान, धनवान होने पर भी उसका आदर नहीं करते। इतना होते हुये भी ऐसे अंहकारी व्यक्ति पुनश्च अभिमान से कहता है कि मेरी इस दुनिया में किसी से नहीं बनती।

देवादिक ऋणानुबंध :

प्रत्येक मानव को जिस धर्म के अनुसार इहजन्म प्राप्त होता है, उस धर्म में जन्म देने की जो व्यवस्था भगवान ने की है उसका कार्यकारण भाव इस प्रकार है कि पहले के अनेक जन्मों से हम जिन ऋणानुबधों से हितसंबंधित होते हैं, उनका विमोचन उचित ध र्माचरण से होना चाहिये। ऐसी ही जगह भगवान जन्म देते हैं किन्तु

आज समाज में किसी एक धर्म के व्यक्ति की हर अन्य धर्म के प्रति ऐसी भावना है कि जिस धर्म में उसने जन्म लिया वही धर्म उच्च है और अन्य सब धर्म उच्च दर्जे की हैं। इस प्रकार से सोचकर बदला लेने की भावना से अन्य धार्मियों की तरफ देखने की बुरी प्रवृत्ति हम लोग निर्माण करते हैं। पहले यह देखना चाहिये कि जिस धर्म में हमने जन्म लिया है उस धर्म के अनुसार क्या हमारा आचरण कम से कम दस प्रतिशत भी उस धर्म को शोभादायक है या नही? अगर वह नहीं है तो अन्य धर्म की निंदा करना मेरा कर्तव्य नहीं है। आज समाज में कुछ लोग स्वयं देवधर्म, दानधर्म तो करते ही नहीं, किन्तु उन्हे करने में जिनको आस्था है या जिनको इस प्रकार की इच्छा है या जिनको पूर्वजन्म से वैसी प्रेरणा होती है, उनकी निंदा, मजाक और उनके प्रति अविश्वास का भाव प्रकट करते हैं, ऐसा दिखाई देता है, वास्तव में भगवान धर्म, परोपकार, या दानधर्म, इन्होंने, आपका कभी भी बुरा नहीं किया है। ऐसा होते हुये जिसमें आपको दिलचस्पी नहीं है, किन्तु जिन लोगों को इसके लिये प्रेम, आदर और अपनापन हो उनका अनादर कुत्सित भाव से न कर "जिनको जो मार्ग हितकर है वह वे अपनाये"। केवल इतनो ही सोच-विचार आप करेगें तो अन्यों के हित का आपने चिंतन किया है ऐसा विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है। क्योंकि इहजन्म में अन्यों के प्रति गलत ख्यालों के आचार-विचार से व्यतीत किया हुआ जीवन भावी जन्मों में आपको प्राप्त होता है और उन भावी जन्मों के आयु में उत्पन्न हई बाधाओं के निवारण के लिये जब आपको देवधर्म, धर्माचरण, गुरूभक्ति आदि करने की इच्छा होती है तब यह ऋणानुबंध, आपको इष्ट कर्तव्यों में एकरूपता प्राप्त करा देने में तथा मानसिक स्थिरता लाकर मन:शांति निर्माण करने में अवरोध निर्माण करता है।

इसके अलावा एक महत्वपूर्ण विषय है। वह यह है कि आप जिन देवदेवताओं की पूजाअर्चा, जपजाप, ध्यानधारणा आदि करते हो उनका कृपाशीर्वाद इस जन्म में या अगले जन्म में प्राप्त होने में जो अवरोध होता है वह उससे सम्बन्धित है। आप जब देवदेवताओं के लिये काया, वाचा और मन से विचार और आचरण कर जिन विधियों की विधिवत् समाप्ति करते हैं, वह विधि भगवान को अर्पण करने के

बाद पुनश्च उसका लाभ होने के लिये उन देवदेवताओं के गुण-प्रकृति के अनुसार आपके देहिक माध्यम में वे होने चाहिये। अगर यह देवदेवताओं के गुण आप में विकसित न हुये तो आपके द्वारा की गयी उपासना को कृपाशीर्वाद के रूप में पाने में आपको इह जन्म की आयु भी कम पड़ेगी। कदाचित भावी पीढी में कोई व्यक्ति देवताओं के यह अनुकूल गुण प्राप्त नहीं कर पाया तो देवदेवतार्जन करने पर भी आप या आपके परिवार में कोई भी उसका लाभ नहीं ले पाते हैं। वह लाभ आपको मिले और गुणों के अभाव की स्थिति में जो सेवा आपने की हो और जिसका लाभ आपको अपने देहिक माध्यम के गुणों के अभाव के कारण प्राप्त नहीं हो पाता इन गुणों का अभाव होते हुये भी समिति पुरस्कृत ऋणमोचन विधि द्वारा आपको देवादिक ऋणानुबंध प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार इन पाँच ऋणानुबंधों के दोषों से परिवार के किसी एक ही व्यक्ति को इसके परिणाम व्यक्तिगत रूप में भुगतने पड़ते हैं ऐसा नहीं, किन्तु इन दोषों का हितसंबंध परिवार में जन्म लेने वाले हर एक व्यक्ति के साथ जुड़े होते हैं। यह हितसंबंध जीवन में स्थल, काल और चरमसीमा के अनुसार कार्य करते हैं। इन अड़चनों के निराकरण के लिये आज के समाज में किसी भी साधक ने यह आधि-भौतिक निराकरण प्राप्त किया होगा ऐसा नहीं लगता। इसलिये कुछ भक्तभाविक जिनके जीवन में इस प्रकार के दोष विद्यमान होते हैं उनको स्वयं को और बाहरी साधकों को, जिनके पास निवारण के लिये वे जाते हैं, ज्ञात होते हैं। जब मार्गदर्शन के लिये ऐसे व्यक्ति कार्य केन्द्र पर आते हैं तब उनको यह आधिभौतिक निराकरण बताने पर उनके मन में संभ्रम निर्माण होता है क्योंकि उनको प्रथमतः साफ बताया जाता है कि वह जिन देवदेवताओं की उपासना या उपवास आदि करते हैं वह बंद करें, क्योंकि जब इन दोषों का हितसंबंध वे खुद ही है तब उनके निराकरण के लिये देवदेवताओं का कृपाशीर्वाद उनको यश प्राप्ति दिला नहीं सकता। इसलिये जिन भक्तों को इस प्रकार का निराकरण बताया जाता है उन्होंने उसी क्षण वह गरूआज्ञा

है ऐसा मानकर सभी देवदेवताओं प्रित्यर्थ की जाने वाली उपासना और परंपरानुसार की जाने वाली उपासना बंद करनी चाहिये। कारण आपके देहमाध्यम में जो ऋणानुबंध प्रतिकूल हैं वे एक-दूसरे के लिये अनुकूल होकर आपको कृपाप्राप्ति हो इस हेतु सद्‌गुरू आज्ञा से जो मार्गदर्शन सूचित करना है उसके लिये आपका देहिक माध्यम अन्य किसी भी उपासना के बंधन में नहीं होना चाहिये।

यह ऋणानुबंध स्थल, काल तथा चरमसीमा के अनुसार कार्य करते हैं। इसका मतलब यह है कि जिस व्यक्ति का जन्म जिस गांव में हुआ हो वह उसकी जन्मभूमि है, किन्तु ऐसा संभाव्य है कि उसकी कर्म भूमि यानी सुख, शांति, विद्या और संपत्ति उसके जन्मभूमि में नहीं होती है। ऐसे समय उसकी कर्मभूमि जन्मभूमि से सौ मील से पांच हजार मील के फासले तक हो सकती है। इसलिये उसे मार्गदर्शन करते समय सही निदान करना पड़ता हैं। जब किसी की कर्मभूमि यानी उसका भाग्योदय १५० मील उत्तर या दक्षिण दिशा में हो तो वैसा सूचित करना पड़ता है। इसलिये ये जो गणित बतलाना होता है वह कागज पर लिखकर या स्वयं के बुद्धिमाध्यम के द्वारा आंकड़ो की सामग्री से नाप तोल कर निश्चित नहीं किया जा सकता। इसलिये साधक को दिव्यज्ञान और दिव्यदृष्टि की प्राप्ति हुये बिना यह गणित सुलझता नहीं है, वही मार्गदर्शन के रूप में बताया जा सकता है। इसी प्रकार जिन बाल बच्चों का भाग्य माता-पिता की छत्रछाया में उदित नहीं होता है ऐसे बच्चों को मार्गदर्शन करते समय उनके भाग्योदय का स्थान, दिशा और मां-बाप से विलग होकर कितने दूरी पर उन्हे रहना होगा आदि मार्गदर्शन सविस्तार सूचित करना होता है।

कई बार जीवन में आकस्मिक संकट पैदा होता है, ऐसे समय माँ-बाप से बच्चें, पति-पत्नी से पति या पत्नी, इष्टमित्र से इष्टमित्र आदि के एक-दूसरे से जो हितसंबंध होते हैं, ऐसे हितसंबंधों में से ये संकट निवारण करने होते हैं। किन्तु इस भौतक निराकरण का अर्थ सूज्ञ भक्तगणों की समझ में न आने से सद्‌गुरू कृपाशीर्वाद के सामर्थ्य से हमें इहजन्म में क्या प्राप्त होता है इसका ज्ञान भी उन्हे

नही हो पाता है। ऐसे अज्ञान के फलस्वरूप इहजन्म में प्राप्त गुरूकृपाशीर्वाद यदि भावी जीवन में प्राप्त करना पड़े तो अनेक जन्म बीत जाने पर भी इस कार्यपद्धति की यही सिद्धसिद्धांत पद्धति और सद्सद्विवेक बुद्धि भक्तगणों में निर्माण होना कदापि संभव नहीं है। अपने आप्तों से निश्चित समय तक विभक्त रखने के इस निराकरण पद्धति के बारे में भक्तगणों द्वारा जो छिछला और मायूसी अर्थ लगाया जाता है वह यह है कि परमपूज्य बाबा की आज्ञा से हमें कुछ समय तक विभक्त या अलग स्थान पर रहने के लिये कहा था। इतना सीधा-साधा अर्थ भी यदि सूझबूझ से लगाया जाये तो भी वह समाधान कारक बात होगी। दुदैव से भक्तगणों के विचारो की अध ोगति इससे भी कही अधिक होती है और एक दूसरे के ऋणानुबंध जिस अवधि तक उनको आपस में मारक होते हैं उस अवधि तक उनका निवारण हो इस हेतु से किये गये मार्गदर्शन का नितांत गलत अर्थ लगाया जाता हैं। यह देखकर मुझे असीम दुख होता है, और लगता है कि "जन्ममरण के द्वार से जिनका उद्धार करने के लिये आया हूँ वह न कर यदि उन्हें उनके दुःख में ही रहने दिया होता और उस दुःख का उन्हे अनुभव लेने दिया होता, तो मेरे प्रति उनकी जो श्रद्धा है, किमान वह श्रद्धा तो उनके साथ चली जाकर चिरस्थायी हो जाती" किन्तु गुरूमार्गी बनने पर यद्यपि आप अपना जीवन गुरूचरणो में समर्पित नहीं करते हो फिर भी गुरू ने अपना जीवन आप भक्तों के कल्याण के लिये समर्पित किया होता है यह बात आप भक्तगणों को कभी भी भूलनी नही चाहिए। संभ्रम के कारण श्रद्धा में विकल्पो का मन में निर्माण होना यह मनुष्य जन्म का यद्यपि स्थायी भाव है तो भी किसी भी विकल्प के लिये प्रसंग और कारण का आधार होना चाहिये। अगर निराधर और निराश्रित विकल्प को यदि आप अपने ज्ञान की धरोहर मानते हैं तो आपके इस धारणा का एक ही निष्कर्ष है कि आप के जिन संकटों का पहले निवारण किया गया है उन्हें आप पुनश्च आमंत्रित कर रहे हैं।

आप यहां जब मार्गदर्शन के लिये आते हैं तब यहां की कार्यपद्धति और मार्गदर्शन से आपके परिवार का हुआ हित देखकर

सहजता से आपको यह मोह होना संभव है कि आपका जीवन पूर्ण रूप से कृतार्थ हो और आपकी पूरी आयु इस कार्य में ही व्यतीत हो। तथापि यह परोपकारी वृत्ती का मोह जो आप में उत्पन्न हुआ है उसकी आर्तता, यथोचित तथा निश्चित रूप से प्राप्त हुये सुख के कारण है, या अड़चनो के निवारणार्थ जो कृपाशीर्वाद मार्गदर्शक सिद्ध हुआ है उसके कारण है, यह गुरू तुरन्त पहचान लेते हैं। आपका अंत:करण तल से लेकर किनारे तब गुरूभक्ति की आर्द्रता से लबालब भरा हुआ है और मर्मस्पर्शी है ऐसी चमक दमक बाहरी दिखावे से प्रदर्शित करने का कितना भी प्रयास आपने किया तो भी साधक पूर्णावस्था में पहुंचे होते हैं उनको आपकी गुरूभक्ति यदि आभासत्मक हो तो उसे पहचानने में क्षण का भी विलंब नहीं लगता है। इसलिये जब ऐसे भक्त गुरूदीक्षा या अनुग्रह, गुरूद्वारा प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करते हैं तब उन्हें देने की कार्यपद्धति के लिये साधक कदापि तैयार नहीं होते हैं। क्योंकि यह निरपेक्ष बुद्धि की तथा परोपकार के भाव की आद्रता का हुआ उदभव जिस परिस्थिति के कारण हुआ होता है इसका पूरा ज्ञान गुरू को होता है। संपूर्ण जीवन अर्पित करने की जो भूमिका ये भक्तभाविक व्यक्त करते हैं उन्हें दुर्भाग्य से गुरू सन्निध रहकर भी सद्गुरू ने किस भक्तिभावना से नहलाया है इसकी भी पहचान नहीं होती है।

भक्तों ने ऐसी स्थिति में आत्मनिरीक्षण कर यह समझना चाहिये कि जिंदगी में उन्होंने स्वार्थ के लिये अन्य व्यक्तियों की भले ही वंचना की हो किन्तु गुरू वंचना का महापाप इस जन्म में नहीं करना चाहिये। आपके जीवन में ज्ञान अज्ञानवश होनेवाले हर पाप-प्रमाद के लिये धर्मशास्त्र और वेदशास्त्र में प्रायश्चित बताया गया है। किन्तु गुरूभक्ति में जब आप विचलित होकर भक्ति का आभास प्रकट करते हैं तब उस पातक के लिये किसी भी शास्त्र में प्रायश्चित नहीं है। गुरूभक्ति जितनी चखने में अमृतमय है उतनी ही वह आचरण में लाना मुश्किल है।

ऊपर निर्दिष्ट सभी निराकरण ऋणमोचन से हितसंबंधित हैं। आपको इस विषय में जानकारी हो इसलिये वह निवेदित कि गयी हैं।

किन्तु इससे भी अधिक प्रखर साधन आगे प्राप्त करना है। ज्ञानातीत ऐसा अनिश्चित काल गुरू सेवा में व्यतीत कर उनको प्राप्त करना है और वह साधन आपके भावी परिवार के लोगों के हित में ही होंगे। अनेक परिवारों में जब लड़के या लड़कियाँ जन्म लेती हैं, तब वे उनके जन्म के साथ विद्या, संपत्ति और संतान साथ में लेकर आते हैं। उनके प्रौढ़ अवस्था तक, जिस परिवार में वह जन्म लेते हैं, उस परिवार की प्रगति, विद्या संपत्ति, संतान आदि से होती है। बाद में प्रौढ अवस्था में ये लड़के-लड़कियां शादी कर दूसरे घर जाती हैं या परिवार से अलग होती हैं तब उनके जन्म प्राप्ति के समय जो विद्या, सपत्ति और संतान परिवार में आती हैं, वह नये घराने में चली जाती है और जिस घराने में उन्होने जन्म लिया होता है, उस घराने के अन्य व्यक्तियों को उस प्रगति की प्राप्ति के लिये यद्यपि बहुत श्रम उठाने पड़े हो तथापि वह श्रम करने के बाद भी वह सुख और सपंत्ति फिर से उनके हिस्से में नहीं आती हैं। दूसरी और ऐसी स्थिति में इस परिवार के व्यक्तियों को शादी करने के लिये मना करना या स्वतंत्र रहने के लिये मना करना इस तरह का बंधन लगाना भी उचित नहीं लगता है। किन्तु सुख और शांति का तराजू दोनों परिवारों में समान रूप से कार्यान्वित हो इसलिये इस कार्यपद्धति में यह आवश्यक साधन भविष्य में प्राप्त करने के लिये इस कार्य में मुख्य साधक द्वारा गुरू आज्ञानुसार जो प्रखर सेवा करवाई जाएगी उसका सानंद स्वीकार किया जायेगा। वह केवल इसलिये कि आप भक्तभाविकों के जीवन में इस दोष से जो आपत्ति अनजाने में आयी हो उसका निवारण होकर दोनों में घरानों में सुख शांति संपत्ति और संतान चिरकाल बनी रहे और परिवार के लोग तथा उनके भावी संतान सुख, शांति और समाधान से इस दुनियां में जीवन व्यतीत करें। यह सदिच्छा सद्गुरूचरणों में हम व्यक्त करते हैं।

प्राप्त जीवन में हमें सुख, शांति, संपत्ति और समाधान प्राप्त हो केवल इस अपेक्षा से यद्यपि आपने इस कार्य का लाभ आजतक लिया हो, फिर भी गुरू आज्ञा से इस जगत में जब इस प्रकार के कार्य की स्थापना होकर वह कार्यान्वित होता है, तब उस कार्य के

पीछे सद्गुरू का हेतु यह होता है कि हम मानवों को जो यह अमूल्य जीवन प्राप्त हुआ है, वह केवल ऐहिक विषय सेवन के लिये व्यतीत न हो, तो प्राप्त जीवन का यथार्थ ज्ञान होकर, इस जन्म प्राप्ति का जो कारण है वह कार्यान्वित होकर, प्राप्त जन्म सार्थक हो। यह योजना यद्यपि इस कार्य का मुख्य उद्देश्य है, फिर भी वह प्राप्त करने की सही लगन आने वाले सभी भक्तभाविकों में है, ऐसा अनुभव न होकर, उलटे आवश्यकता से ज्यादा सवाल जवाब कर अपना जीवन व्यवहार में अधिकाधिक समृद्ध कैसे होगा इसी विषय के चिंतन में ही ये भक्तभाविक इस कार्य का लाभ लेते हैं। आज इस कार्यपद्धति से भक्तगणों की अड़चनो का निवारण करने के लिये मार्गदर्शन होता है यह इस कार्य का मूल उद्देश्य न होकर वह साध न केवल लोकसंग्रह के लिये इस्तेमाल करना होता है। इस कार्य का जो प्रधान हेतु है उसका लाभ सहजता से घर बैठे और बिना किसी प्रखर साधना हो रहा है इसका प्रत्येक भक्त अपने जीवन का निजी कर्तव्य इस दृष्टि से यदि आस्थापूर्वक विचार नहीं करेगा तो संसार के परिवर्तन शील परिस्थितीनुसार भविष्य में हम परिवारियों के जीवन के संबंध में विद्यमान आशा अपेक्षाएं साकार होगी या नहीं यह सवाल स्वाभाविक खड़ा होगा, और इसका विचार सूज्ञता से आज ही करना यही भविष्योत्तर जीवन के यश की सही नीव होगी।

आज तब सैंकड़ों भक्तों को गुरूकृपाशीर्वाद से प्राप्त हुये सिद्धसाधन पद्धतिनुसार निराकरण कर मेंने अपने यथाज्ञान और यथाशक्ति सुखी करने का प्रयत्न काया, वाचा, मन और तन, मन और धन से किया है फिर भी उसके बदले में मेंने आप लोगों से कोई भी अपेक्षा रखी नही। किन्तु जिस सिद्धसाधन पद्धति के निराकरण से आपकी अड़चने दूर होती हैं, उन सिद्धसाधन पद्धतियों को प्राप्त करने के लिये प्रारंभ में मुझे प्राप्त जीवन में बहुत त्याग करना पड़ा यह आप भक्तों को भूलना नहीं चाहिये। आप लोगों को मार्गदर्शित किये गये निराकरण यह मेरा ऐच्छिक विषय नहीं है ना तो उस दृष्टि से निराकरण मेंने किये हैं। इस तरह के स्वैच्छिक निराकरण मनुष्य के दुख निवारण में कार्यान्वित भी नही होती हैं।

निराकरण का अर्थ भक्तों की व्यक्तिगत समस्याओं का यथार्थ निदान करना या कारण स्पष्ट करना ऐसा नहीं है। निराकरण तो साक्षात गुरू कृपाशीर्वाद ही होते हैं। उसके उपलक्ष्य में आप भक्तों के कल्यानार्थ निराकरण के समरूप-जो कृपाशीर्वाद दिया है उसके बारे में यथायोग्य आस्था, आचार विचारों की शुद्धता तथा उसका अनुरक्षण कर उसे बनाये रखने के लिये नित्य से मार्गदर्शित सेवा करना अत्यावश्यक होता है। किन्तु उसे करने के लिये आप द्वारा योग्य आचार-विचारों से जीवन में यह धरोहर बनाये रखने का प्रयास कदापि न होने से महत प्रयास से प्राप्त हुई सिद्धसिद्धांत पद्धति को तथा निराकरणों को मलीनता आती है और आपके ऐसे आचरण के कारण उसकी कार्यक्षमता निराकरण करते समय किये हुये शब्द के बराबर जब शत प्रतिशत नही होती है तब आप भक्त ऐसा संकुचित विचार करते हैं कि अब गुरू माध्यम के सामर्थ्य में कुछ कमी आई है।

वास्तव में साधक माध्यम का महिमा इस तरह है कि गुरूकृपाशीर्वाद प्राप्त होने के पूर्व गुरूद्वारा साधक की योग्य परीक्षा की जाती है। इसके बाद ही गुरू कृपावंत होकर कृपाशीर्वाद प्रदान करते हैं। गुरूकृपा अविनाशी और अक्षय होने से साधक उसके जीवन में कभी गुरूकृपा के लिये अपात्र होता है या कृपा में अंतर आता है यह सोचना आप भक्तों का अज्ञान है। सिद्धसिद्धांत पद्धति में जो मलीनता आती है वह आप भक्तो के अज्ञान, अविचार और नासमझी से तथा गुरू मार्गदर्शन के अनुसार योग्य आचार और विचार न करने से आती है। इस प्रकार की मलीनता इस कार्यपद्धति के लिये भविष्य में बाधा पैदा करनेवाली होगी यह जब श्री गुरू को महसूस हुआ उसी क्षण यानी गुरूपूर्णिमा १९७७ के दिन मुझे आप भक्तों को मार्गदर्शन करना बंद कर पुनश्च वह सिद्धसाधन निराकरण के लिये सिद्ध करने की आज्ञा हुई। उस आज्ञानुसार एक साल सेवा में रहकर जो होम हवन विधि किये गये, वह मैंने अपने हित में या स्वयं की पारमार्थिक उन्नति होकर मुझे मोक्ष मिले इस हेतु से नहीं किये थे। भविष्योत्तर जीवन में आज तक लिये हुये निराकरण का लाभ आपके समस्त

परिवारजनों को पीढ़ियों तक हो, इसके लिये ये सब सिद्धसाधन पुनश्च सिद्ध करने होते हैं। सब भक्तों की यह श्रद्धा है कि एक बार कृपाशीर्वाद प्राप्त करने से वह जिंदगीभर आपको उबारने वाला होता है। किन्तु यह तब संभव होगा जब गुरू आज्ञानुसार आप उसका पालन करते हैं, तथा किसी भी विषय में फंसकर इस आज्ञा की अवहेलना नहीं करते हैं तभी यह आशीर्वाद आपको और आपके परिवारजनों को भविष्योत्तर जीवन में तारने वाला होता है।

आज आप भक्तों को प्राप्त हुये इस जीवन में सुख, शांति, संपत्ति, दीर्घायुष्य आदि का अभाव निर्माण होकर जीवन जीने के लिये मानव असमर्थ होता है, तभी इन सब अड़चनों के पीछे क्या कारण परंपरा और कारणमीमांसा है और उसका निराकरण करा लेने के लिये आप साधक या देवभक्तों की खोज इधर-उधर कर इसकी पूछताछ करते हैं। किन्तु आज बड़े दु:ख से यह कहना पड़ता है कि आपके जीवन में पैदा हुई अड़चनों को शास्त्रीय मीमांसानुसार पूरी तरह से समझकर उसका निवारण अल्प मूल्य में कोई साधक करते होंगे ऐसा मेरा व्यक्तिगत अनुभव नहीं है। क्योंकि आप भक्तों को अड़चनों के निवारण के लिये समय-समय पर अनेक साधकों के पास जाना पड़ता है। उनके द्वारा किये गये निराकरण आप कार्यकेंद्र पर उपस्थित होने के बाद जब बताते हैं तब ऐसे अनुमान का अनुभव होता है कि जिन साधकों के पास आप निराकरण के लिये गये थे, उन साधकों की लोककल्याण की भूमिका यद्यपि बहुत बड़ी हो फिर भी उसके लिये जिस साधन और सिद्धता की जरूरत होती है वह उनमें यद्यपि बाल्यावास्था से ही हैं, फिर भी उससे भी बढ़कर किसी भी अवस्था की प्राप्ति न होते हुये भी भूत, भविष्य और वर्तमान आदि तीनों ही कालों के बारे में वह सर्वज्ञानी है ऐसा मानकर जो साधक भूत, भविष्य और वर्तमान के विषय में मार्गदर्शन करते हैं, उनके इस मार्गदर्शन के अज्ञान के बारे में आश्चर्य होता है। क्योंकि प्राप्त मानव जन्म या तो पूर्वजन्म की निश्चित धरोहर हो सकती है या पूर्वजन्म के ऋणानुबंध पूर्ण करने के कर्तव्य करने के लिये होता है। इस प्रकार

जन्मजन्मांतर या जन्मकर्तव्य के अनुसार पैदा हुये यह दोष इस जीवन में जब दुख तथा अशांति पैदा करते हैं तब इन दोषों का हितसंबंध के दोषों का हितसंबंध केवल कर्म की प्रतिकूलता पर निर्भर है, ऐसा सीमित विचार न कर, उस कर्म के हितसंबधों के दोषों का हितसंबंध कौन से ऋणानुबंध के हितसंबंध में है यह जानने की दृष्टि और ज्ञान साधक को होना चाहिये और वह ज्ञान होने पर भी उन दोषों के विमोचन के लिये उनके पास सिद्धसाधन सिद्धवस्था में होना चाहिये। ऐसा होने पर ही इन दोषों का विमोचन निश्चित रूप से होकर भविष्यकाल सुख, शांति और समाधान में व्यतीत होगा। केवल कोई बाधा पैदा हुई है इसलिये उसको प्रतिकार के लिये यद्यपि मंत्र, तंत्र और यंत्र का उपयोग कर आपने अपनी रक्षा की तो भी इन सब विद्याओं से दुखों का जो निवारण होता है वह क्षणिक होता है, क्योंकि मंत्र, तंत्र और यंत्र आदि साधन और उनमें समायी हुई शक्ति का कालानुसार क्षय होता है। इसलिये जिन दु:खों से छुटकारा पाने के लिये आपने यह मार्ग अपनाया, उससे यद्यपि आपको तुरंत सुख का आभास हुआ भी तथापि निरंतर रूप में जिन सुखों का लाभ आपको लेना था वह लाभ पाने में इन क्षणिक सुखों के मोह से आप असमर्थ बन गये। श्रीसद्गुरूकृपा प्राप्त होने के लिये या प्राप्त करने के लिये काया, वाचा, मन, नि:स्वार्थ बुद्धि और इष्ट संकल्प से सेवा करनी पड़ती है। इस सेवा का लाभ केवल अड़चने निवारण करना इसी सीमा तक सीमित नहीं हो सकता है। उसका लाभ प्राप्त जन्म में तो होता ही है और दूसरी ओर परिवार के अनेक पीढ़ियों के लिये और हर जन्म में जीवनोद्धार के लिये भी यह कृपा आपके काम आती है। इतना ही नहीं तो उस कृपाशीर्वाद से प्राप्त जन्म का यथायोग्य सार्थक भी होता है।

आपके इस प्राप्त जीवन का संबंध पांच ऋणानुबंधों के साथ हित संबंधित है। वह पांच ऋणानुबंध यानि देवादिक, मातृपितृ, इतरेजन, जन्मजन्मांतर और जन्मकर्म है। यह ऋणानुबंध पहले कई जन्मों के साथ हितसंबंधित होने से प्राप्त जन्म में आपकी इष्ट सुख,

शांति उन ऋणानुबधों की अनुकूलता-प्रतिकूलता पर निर्भर होती हैं। इसी प्रकार उन ऋणानुबंधों में ज्ञान अज्ञानवश समाये हुये पातकप्रमाद के कारण या इन ऋणानुबंधों के अनुसार आपके इष्ट कर्तव्य जन्म प्राप्ति के बाद न करने से या इस जन्म में यह ऋणानुबंध यद्यपि पंचभौतिक देह के हितसंबंध में कार्य कर रहे हैं, फिर भी इन ऋणानुबंधों का यथोचित विकास काया, वाचा और मन पर न होकर, इन देहिक माध्यमों को विकसित अवस्था तक ले जाने का साधन प्राप्त न होने पर, इन सब दोषों के अनुसार प्राप्त हुआ जीवन, उसकी इच्छा और अपेक्षाओं की पूर्णता नही कर पाता और वे अधूरी रहकर हमें यह दुनियां विवश होकर छोड़नी पड़ती है

मानव जन्म के अनुसार आप भक्तभाविक ऐसे दोषों के हित संबधों से संबंधित जन्म प्राप्त कर केवल अड़चनों के कारण मजबूर होकर उनके निवारण के लिये गुरूमार्ग की ओर आते हैं। तथापि योग्य गुरू का उचित कार्य दुनिया के कल्याण के लिये हमेशा जारी रहता है आप गुरू माध्यम से अपनी अड़चनों के निवारण के लिये मार्गदर्शन लेते हैं, उस वक्त गुरू माध्यम का सद्हेतु कभी भी आपकी अड़चनों के साथ हित संबधित नहीं होता है। उनको आप जैसे भक्तजनों को प्राप्त हुये जन्म को सार्थक कर जन्मप्राप्ति का जो कारण है, वह इस संसार के और आपके परिवार के कल्याण के लिये सिद्ध करना होता है। इसलिये उनको अपने कल्याण के लिये अपना जीवन सद्गुरू के सानिध्य में बिताना होता है। उनके इस जीवन का प्रत्येक क्षण गुरू की आज्ञानुसार बिताये बिना कोई भी सिद्धसाधना सिद्धावस्था तक नहीं पहुंचती है। इसलिये गुरूमाध्यम को काया, वाचा और मन के ऐहिक विषयों को अपने निजी जीवन से दूर रखना होता है। इसका आप ज्ञानी भक्तों ने सोच-विचार क्या कभी किया है? जिस गुरूमाध्यम से आप भक्तों को कई जन्मों के ऋण से मुक्ति मिल कर तथा प्राप्त जन्म विकसित होकर, आप सुख, शांति और समाधान की चोटी तक पहुंचने वाले हैं, वह माध्यम स्वयं के पूर्व पुण्य और गुरूकृपाशीर्वाद से प्राप्त धरोहर जब आप भक्तों के

कल्याण के लिये लोककल्याण की धरोहर के रूप में बिताते हैं तब उनकी इस सदिच्छा में कभी भी भक्तों से कुछ प्राप्त हो इस तरह की भौतिक लालसा नहीं होती है। ''केवल पारमार्थिक लोभ आप भक्तों की ओर से रहे यह विनती'' इन उदगारों का उनकी आत्मिक प्रेरणा वश प्राप्त आचार विचारों में सदैव हमें अनुभव होता रहता है। दूसरी ओर सामान्यत: ऐसा दिखाई देता है कि आम भक्तों का जीवन तो लोभ के साथ ही अधिकतम जुड़ा हुआ है। उदाहरणार्थ फटे पुराने कपड़े भी दीन दुखियों को दान में देकर उनका सदुपयोग न कर ''द्वार पर आने वाली बर्तनवाली से उनके बदले में क्या कुछ बर्तन मिल सकेंगे।'' इस विचार से हम उन कपडों को सहजते रहते हैं। ऐसे विचारों से प्रभावित रहने वाला हमारा जीवन गुरूमाध्यम की परीक्षा लेने में भी हिचकिचाता नहीं है। इसलिये सूज्ञ भक्तों को यही सोच विचार करना है कि, मेरे कल्याण के लिये दिन में एक घंटा देवादिकों की या सद्गुरू की सेवा करने के लिये मुझे बताया गया है, क्या मैं अपने जीवन के चौबीस घंटों में से एक घंटा त्याग भावना से कर सकता हूँ? इस प्रकार का त्याग यद्यपि आप न भी करें तो भी अनादिकाल से वेदवेदांतों ने और धर्मशास्त्रों ने श्री सद्गुरू कृपावान और दयालू होते हैं, ऐसा उनका गुणगान किया है और उसकी अनुभूति काल के अनुसार होती ही रहती हैं।

प्राप्त जन्म में ऋणानुबंध से संबंधित दोषों के निवारण के लिये जिस साधना पद्धति से आज निराकरण किये जा रहे हैं, उस निराकरण पद्धति में आज तक आपको जिनका लाभ करा दिया गया है। वे निराकरण यानी 'कर्मविमोचन', वंशविमोचन और 'ऋणविमोचन' है। ये निराकरण केवल सूचित करने से इन दोषों का परिमार्जन कदापि नहीं होता। आप भक्तों को गुरूकृपाशीर्वाद का लाभ आपके काया, वाचा और मन को होकर, यह पंचभौतिक देह इन ऋणानुबंधों को विमोचित करने में समर्थ हो, इसलिये सद्गुरू ने आप भक्तों को "उपासना दीक्षा", "नामस्मरण दीक्षा", "अनुग्रह दीक्षा" और गुरू दीक्षा आदि देकर कृतार्थ किया है। फिर भी इन दीक्षाओं

शांति उन ऋणानुबधों की अनुकूलता-प्रतिकूलता पर निर्भर होती हैं। इसी प्रकार उन ऋणानुबंधों में ज्ञान अज्ञानवश समाये हुये पातकप्रमाद के कारण या इन ऋणानुबंधों के अनुसार आपके इष्ट कर्तव्य जन्म प्राप्ति के बाद न करने से या इस जन्म में यह ऋणानुबंध यद्यपि पंचभौतिक देह के हितसंबंध में कार्य कर रहे हैं, फिर भी इन ऋणानुबंधों का यथोचित विकास काया, वाचा और मन पर न होकर, इन देहिक माध्यमों को विकसित अवस्था तक ले जाने का साधन प्राप्त न होने पर, इन सब दोषों के अनुसार प्राप्त हुआ जीवन, उसकी इच्छा और अपेक्षाओं की पूर्णता नही कर पाता और वे अधूरी रहकर हमें यह दुनियां विवश होकर छोड़नी पड़ती है

मानव जन्म के अनुसार आप भक्तभाविक ऐसे दोषों के हित संबधों से संबंधित जन्म प्राप्त कर केवल अड़चनों के कारण मजबूर होकर उनके निवारण के लिये गुरूमार्ग की ओर आते हैं। तथापि योग्य गुरू का उचित कार्य दुनिया के कल्याण के लिये हमेशा जारी रहता है आप गुरू माध्यम से अपनी अड़चनों के निवारण के लिये मार्गदर्शन लेते हैं, उस वक्त गुरू माध्यम का सद्हेतु कभी भी आपकी अड़चनों के साथ हित संबधित नहीं होता है। उनको आप जैसे भक्तजनों को प्राप्त हुये जन्म को सार्थक कर जन्मप्राप्ति का जो कारण है, वह इस संसार के और आपके परिवार के कल्याण के लिये सिद्ध करना होता है। इसलिये उनको अपने कल्याण के लिये अपना जीवन सद्गुरू के सानिध्य में बिताना होता है। उनके इस जीवन का प्रत्येक क्षण गुरू की आज्ञानुसार बिताये बिना कोई भी सिद्धसाधना सिद्धावस्था तक नहीं पहुंचती है। इसलिये गुरूमाध्यम को काया, वाचा और मन के ऐहिक विषयों को अपने निजी जीवन से दूर रखना होता है। इसका आप ज्ञानी भक्तों ने सोच-विचार क्या कभी किया है? जिस गुरूमाध्यम से आप भक्तों को कई जन्मों के ऋण से मुक्ति मिल कर तथा प्राप्त जन्म विकसित होकर, आप सुख, शांति और समाधान की चोटी तक पहुंचने वाले हैं, वह माध्यम स्वयं के पूर्व पुण्य और गुरूकृपाशीर्वाद से प्राप्त धरोहर जब आप भक्तों के

की प्राप्ति के बाद आप भक्तों ने अपने देहिक माध्यम को पवित्र आचार-विचार एवं आहार द्वारा उन्हें अनुकूल कार्य करने योग्य ऐसे तरीके से शरीर का शुद्धिकरण करने का कर्तव्य न करने के कारण वह दोष पर्यायत: जब गुरू माध्यम की ओर आते हैं तब भक्तों के ज्ञान अज्ञानवश आचरित सेवाओं के बदले में गुरू माध्यम को प्रायश्चित लेना पड़ता है। ये दीक्षांतपद्धतियां नाथ परंपरा या दत्त परंपरा में यद्यपि अनादि काल से सूचित की गयी है फिर भी नाथपरंपरा या दत्त परंपरा के साधक कहलाने वाले किसी भी साधक ने उसका आस्था से विचार कर स्वयं प्रायश्चित न लेकर अपने भक्तों को ही प्रायश्चित दिया है। आप भक्त आज जिस कार्यपद्धति का लाभ ले रहे हैं, उस कार्य पद्धति में दत्तपंथ, सूफी पंथ और नाथपंथ सम्मिलित होने से और उनकी कार्यकरण यंत्रणा एक ही सिद्धसिद्धांत पद्धति पर आधारित होने से साधक को कितना भी महान श्रेष्ठपद सिद्धावस्था में जाकर प्राप्त हुआ और उस अवस्था के अनुसार उसको समाज में नाम और बड़प्पन प्राप्त भी हुआ हो, फिर भी प्राप्त किये गये साधन लोककल्याण के लिये बारह साल से अधिक मार्गदर्शन के लिये सूचित करने के बाद पुनश्च उन साधनों को सिद्ध करने के लिये प्रायश्चित लेकर, जिन निराकरणों का संबंध देवादिकों से हैं, उन देवताओं को आवाह्नित कर, उनका हवन विधि करना पड़ता है। इसलिये जो हवन विधि श्री क्षेत्र नरसोबाबाड़ी में हुये उनका संबंध ऊपर निवेदित शास्त्रीय मीमांसा के साथ जुड़ा हुआ है। ये विधि करने के पीछे मेरी केवल व्यक्तिगत ऐच्छिक भूमिका नहीं थी। आगे आनेवाले समय में आप भक्तों को जो सहायता आवश्यक है वह आपको मेरे सिद्धावस्था में ही प्राप्त हो इसलिये गुरूआज्ञा के अनुसार यह सब सेवा कर, गुरूपूर्णिमा के दिन मेंने वह सब सेवा गुरूदक्षिणा के रूप में श्रीगुरू को समर्पित की हैं, यह बात भी आप भक्तगणों को बताने में मुझे खुशी होती है।

वास्तव में जन्म उत्पत्ति मीमांसा के अनुसार यद्यपि प्राप्त जन्म पांच ऋणानुबधों से, यानि देवादिक, मातृपितृ, इतरेजन जन्मजन्मांतर और कर्म प्राप्त होता है, फिर भी ये पांच ऋणानुबंध एक दूसरे से

संबंधित और पोषक होते ही है, ऐसा नहीं है। इसके अलावा प्राप्त जन्म में जो कुछ इच्छायें और अपेक्षायें हम करते हैं वे साकार होने के लिये अगर ये पांचों ऋणानुबंध एक दूसरे से अनुकूल हो तो विद्या, संपत्ति, संतान, अन्न, वस्त्र, मकान इन ऐहिक जरूरतों की पूर्तता होती है। किन्तु कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो केवल इस तरह के वैभवशाली जीवन का लाभ सदैव लेते रहना यही जीवन का सारसर्वस्व है इस विचार के अनुसार अपना जीवन व्यतीत नहीं करते हैं। जीवन में देवादिक ऋणानुबंध के अनुसार इस पंचभौतिक देह में कुछ सात्विक गुण की अवस्था जन्मतः ही अपने और संसार के हित के लिये अपने पंचभौतिक देह में होती है इसका ज्ञान ऐसे व्यक्तियों को होकर उस गुण का अधिक विकास किस तरीके से प्राप्त किया जा सकेगा इस संबंध में मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिये ऐसे व्यक्ति अपना जीवन व्यतीत करते हैं। किन्तु बहुधा ऐसा होता है कि इन गुणों की धरोहर यद्यपि इन व्यक्तियों के देह माध्यम में जन्मतः प्राप्त हुई हो, फिर भी योग्य मार्गदर्शन के अभाव में और गुरूकृपा के अभाव में, ये गुण उनके स्वयं के और संसार के कल्याण के हित में होते हुये भी उनका यथोचित विकास नहीं हो पाता। ऐसे होने से उसका लाभ स्वयं को और अन्य लोगों को न देते ही ऐसे अनेक लोग उनके प्राप्त जन्म के लिये या संसार के लिये कुछ भी कार्य किये बिना ही दिवंगत हो गये हैं।

हर मानव को पांच ऋणानुबंध के अनुसार जन्म प्राप्त होता है। उन ऋणानुबंधों में जो एक प्रधान ऋणानुबंध होता है वह जन्म का कारण होकर जन्म लेता है। उदाहरण के लिये, पांच ऋणानुबंधों में जन्मकर्म, जन्मजन्मांतर, इतरेजन और मातृपितृ ये चार ऋणानुबंध प्राप्त जीवन के आधार है, जिस तरह हमारे मकान की चार दीवारें उस मकान का आधार है। इन चार ऋणानुबंधों के ऊपर छत अर्थात् आश्रय यह देवादिक ऋणानुबंध हैं इस प्रकार का यथोचित जीवन जब हमें प्राप्त होता है तब उस समय जीवन की इष्ट अपेक्षाएं यानी विद्या, और संपत्ति से लेकर दीर्घायु तक की अपेक्षाएं पूर्णावस्था प्राप्त करते हैं। किन्तु जब

इन ऋणानुबधों में से एक ही ऋणानुबंध अधिक प्रखर होकर जन्म लेता है तब जीवन में निम्नलिखितनुसार अशांति और दुखों का अनुभव होता है। वास्तव में पारिवारिक कर्तव्य और परमार्थ यह जीवन के दो अंगों को यदि संसार में स्त्री और पुरूष इन दोनों ने एक ही आचार तथा एक ही विचार से स्वीकार किया तो ये दोनों अंग शोभायमान होकर खुशी और आनंद का अनुभव होता है। किन्तु जब किसी व्यक्ति का प्रधान गुण जन्मकर्म होगा तब उस व्यक्ति को खाना-पीना और ऐशो-आराम के अतिरिक्त जीवन में देवधर्म, परोपकार, धर्माचरण आदि करने की कदापि इच्छा नहीं होती है। जिस व्यक्ति का प्रधान गुण जन्मजन्मांतर होगा वह व्यक्ति पारिवारिक कर्तव्य और परमार्थ उतनी ही आस्था से करते हैं। यह करने में उनको न सुख की अनुभूति होती है न दुख की। क्योकि उनका ऐसा जीवन कर्तव्य करने में व्यतीत होता है। जिस व्यक्ति का प्रधान गुण इतरेजन होता है, उस व्यक्ति का जीवन इष्टमित्र और समाजिक समस्या के विचार में अधिकतर व्यतीत होता है। किन्तु वह अपने परिवार के लिये अपना कोई कर्तव्य है इसका जरा भी आस्था से विचार नहीं करते हैं। इसी वजह से ऐसे व्यक्ति मित्र परिवार और समाज में यद्यपि मान्यता प्राप्त करते हैं। फिर भी अपने परिवार की ओर ध्यान न होने से भविष्य में परिवार निराधार होते हैं। जिस व्यक्ति का प्रधान गुण मातृपितृ होता है, वह व्यक्ति अपना हित और अहित का विचार न कर माता-पिता का कहना ही प्रमाण मानते हैं या कई व्यक्ति ऐसे होते हैं कि उनके मां-बाप होते हुये भी उनके बीच जरा भी आपसी सामंजस्य नहीं होता है। इसके अलावा इस गुण का एक महत्वपूर्ण दोष यह है कि जिन व्यक्तियों को जन्म से ही उत्कर्षकारी जीवन प्राप्त हुआ है उनका यह जीवन उनके माता-पिता के जीवनोपरान्त क्षय होने लगता है, या कुछ व्यक्तियों का भाग्योदय उनके माता-पिता के जीवनान्त के बाद होता है।

जिन व्यक्तियों में "देवादिक" गुण अधिक प्रखर और प्रधान होता है ऐसे व्यक्ति हमेशा देवदेवतार्जन, पाठ, नामस्मरण, कीर्तन आदि में

अपना समय व्यतीत करते हैं, और इनसे भी समाधान न मिला तो किसी तीर्थक्षेत्र में जाकर रहते हैं। इस वास्तव्य में इनकी यह भूमिका होती है कि वह भगवान के आज्ञानुसार उनकी सेवा के लिये वहां रहे हैं। ऐसे वक्त कई वर्ष सेवा करने पर भी फल नहीं मिलता क्योंकि इनमें यद्यपि देवादिक प्रधान गुण होता है फिर भी प्राप्त जन्म में कर्तव्य करने के लिये जो चार ऋणानुबंध शेष हैं, उनसे संबंधित कर्तव्य न करने से, इन कर्तव्यों के अनुसार जो कर्म करने होते हैं वे कर्म उनके तीर्थक्षेत्र के वास्तव में उनकी उपासना में बाधा पैदा करते हैं। ऐसे व्यक्ति जन्म लेकर न तो प्रपंच का सुख पाते हैं और ना ही परमार्थ का।

जन्म के जो प्रधान गुण व्यक्तिगत होते हैं, उनके बारे में ऊपर मार्गदर्शन किया है। किन्तु जब इन व्यक्तियों का विवाह होता है तब जिस स्त्री के साथ उनकी शादी होती है उस स्त्री के गुण ऊपर किये गये विवरणानुसार यदि भिन्न-भिन्न होते हैं तब परिवार में हमेंशा दुःख और अशांति पैदा होती है। मिसाल के तौर पर अगर कोई व्यक्ति जन्मकर्म गुण प्रधान होकर जन्म लेती है और उसकी पत्नी का जन्मजन्मांतर यह प्रधान गुण हो, तो पत्नी के आचार-विचार स्वभावतः धार्मिक प्रवृत्ति और परिवार कल्याण के लिये पोषक हो इसलिये देवदेवतार्जन की ओर कार्यान्वित हुये होते हैं, किन्तु पत्नी द्वारा किया गया देवधर्म अपने परिवार के पोषण और रक्षण के लिये है, यह सूज्ञ विचार उसके पति के मन में निर्माण न होने से उसको लगता है कि उसकी पत्नी देवधर्म का आडंबर कर रही हैं। इससे उस स्त्री के जन्मजात गुणों का विकास नहीं होता है और उसके इस विकास में उसका पति जिसने जन्मकर्म यह प्रधान गुण लेकर जन्म लिया है वही बाधा बनता है। इसकी एक अधिक महत्वपूर्ण पहचान यह है कि इस तरह के परिवार की कुछ स्त्रियों में उनके कुलदेवताओं का संचार होता है। किन्तु इन स्त्रियों के पतियों को यह मार्ग ठीक नहीं लगता इसलिये अन्य किसी के घर जाकर यह संचार अवस्था व्यक्त करनी पड़ती है। इसके विपरीत दूसरी और यह अनुभव होता है कि यदि पति का प्रधान गुण जन्मजन्मांतर और पत्नी का प्रध

न गुण जन्मकर्म होता है तब ऐसे समय पति स्वाभाविकतः देवधर्म कर धर्माचरण करता है, कारण उसको प्रपंच की जिम्मेदारी कृपाशीर्वाद से निभानी होती है और प्राप्त गुण के अनुसार इस जन्म का सार्थक करने की भी उसकी इच्छा रहती है। किन्तु जब पत्नी का प्रध न गुण जन्मकर्म होता है तब पति ने स्वीकार की हुई देवादिकों की और गुरूभक्ति की सेवा में स्त्री सहयोग न देकर, अपनी माहवारी अवस्था में भी उसको अपने हाल का पकाया अन्न सेवन करने से मजबूर कर उसके पारमार्थिक उन्नति को हानि पहुंचाती है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न गुणों से जन्म लिये मानव जीवन जब एकत्र होकर उनके विसंगत गुणों की वजह से प्रपंच और परमार्थ में वे दु:ख का कारण बनते हैं, इन सबको सूज्ञता से यह कहना है कि यद्यपि आपने इह जन्म में प्रपंच अपनाया हो या परमार्थ को अपनाया हो तो भी जब तक एक दूसरे के प्रधान गुण एक-दूसरे के लिये पोषक नहीं होते हैं, तब तक इन दोनों अवस्थाओं के कर्तव्यों का पालन इस जन्म में करने के बाद भी, उसका लाभ अगले जन्म के लिये जरा भी होना कदापि संभव नहीं हैं।

ऊपर निर्दिष्ट विषय का आपको परिचय कराने के बाद, आपकी महत्वपूर्ण जिम्मेंदारी यह है कि जिन गुणों से आपके परिवार में पति-पत्नी से लेकर बच्चों तक यह भिन्नता है, और यद्यपि इन गुणों के अनुसार होने वाले कार्य एक दूसरे के लिये पोषक नहीं है, तथापि उसके लिये एक दूसरे ने आपस के गुणदोषों की छान-बीन में कालापव्यय न कर जीवन को जिस महत्वपूर्ण गुण का यानी देवादिकों के गुण का आधार है उसके साथ सभी को एकरूप होना चाहिये। इसलिये आप भक्तों को कुलदेवदेवताओं की, उपास्य देवताओं की अथवा गुरूदेवताओं की आराधना करनी चाहिये। किन्तु कभी भी यह आराधना करते समय एक दूसरे के बीच किसी एक को भगवान के लिये अधिक प्यार है, उसके लिये अधिक भक्ति है उसके बारे में अधिक निःस्वार्थ भाव है या उसमें परोपकार करने की इच्छा क्यों

होती है इस तरह विचार कर उस व्यक्ति के गुणों के विकास में बाधा पैदा नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार इन भिन्न गुणों को समान स्तर पर लाकर उनका हितसंबंध देवादिको के साथ गुरूकृपाशीर्वाद से जोड़ा गया तो आज जीवन में विचार अविचार से होने वाली छोटी-छोटी घटनायें और उससे होनेवाला अशांत मन ओर आत्महत्या की छोर तक पहुँचने वाली अवांछनीय विचारों की दिशा जो इन गुण भिन्नता से पैदा होती है, उन विचारों को देवादिकों से संबंधित करने से आप बुद्धि से कितना भी अविचार करेंगे तो भी उन अविचारों को काबू में रखने के लिये मन का सामर्थ्य अधिक हुआ है यह आपको महसूस होगा।

आप भक्तों की अड़चनों के निवारण के लिये सुलभ और आसान मार्गदर्शन पद्धति द्वारा आप सबको प्राप्त जीवन में सुख शांति, समाधान का योग्य लाभ हो इस सद्हेतु से इस कार्य का आरंभ हुआ यद्यपि इस कार्यपद्धति का मार्गदर्शन आचार और विचार में लाने के लिये सुलभ तरीके से मार्गदर्शित किया गया, तो भी यह साधन पद्धतियां प्राप्त करना इस गुरूमार्ग में आप समझते हैं उतना सुलभ साधन नहीं है। कयोंकि यद्यपि किसी व्यक्ति को अपनी खुद की साधना से या उपासना से गुरूकृपाशीर्वाद की प्राप्ति हुई हो, फिर भी प्राप्त हुआ कृपाशीर्वाद किस निर्णायक साधन माध्यम में इस्तेमाल करने से आप भक्तों का कल्याण होगा, यह निर्णय करना और प्रत्यक्ष में उसकी अनुभूति होना यह एक दिव्य साधन गुरूमार्ग में साधक को ध्यान में लेना पड़ता हैं।

हरेक मानव का जन्म अनादि जन्मों के कर्म परंपरा से उदित होने से तथा प्रत्येक जन्म में उस मानव के हाथों से कर्मक्षय और कर्मवृद्धि होती रहती है तब अनजाने में ऋणानुबंधों के हितसंबंध उसके जीवन के साथ जोड़ें जाते हैं। बाद में अनेक जन्मों के पश्चात् जो जन्म प्राप्त होता है वह प्राप्त कर्मो के अनुसार प्राप्त होता है। उन कर्मो की अपेक्षा यदि ऋणानुबंध की प्रखरता अधिक होगी, तो यद्यपि जन्में हुये उस व्यक्ति के भूत भविष्य दर्शाने वाली जन्मपत्री भले ही राजयोग बताती हो, तो भी उसके कर्म के अनुसार प्राप्त

होने वाले फल उसे न प्राप्त होकर, ऋणानुबंध से प्राप्त हुये दोष ही इह जन्म में भुगतने पड़ते हैं। इस प्रकार ऋणानुबंध से जो दोष होते हैं उनका निवारण हो इसलिये हम अपने वंश की इष्ट देवदेवताओं के उपलक्ष में उपवास, मिन्नते, व्रत, होमहवन, जाप आदि मार्गो का सहारा लेकर, यद्यपि सुख की अपेक्षा करते हैं, फिर भी इन दोषों की प्रखरता इतनी तीव्र होती है, कि इस तरह किया गया देवदेवतार्जन यह केवल उन देवदेवताओं का स्मरण होता है और उन विभिन्न तरीकों का ऋणानुबंध से निर्माण होने वाले दोषों के निवारण करने के लिये उपयोग नहीं हो सकता।

इसी कारण से अनंत कालतक देव और देवताओं के कृपाशीर्वाद का आधार लेकर भी भक्तों के जीवन निराधार होते हैं। इसलिये इन दोषों का निवारण योग्य कार्यपद्धति और मार्गदर्शन से कर लेने का मार्ग यद्यपि जीवन के आरंभ में मुश्किल लगता है, फिर भी भविष्य के लिये वह निरंतर सुख की धरोहर होती हैं। इस प्रकार के जो साधन हैं उनको शास्त्रों के "विमोचन" कहा है। उसमें पचास प्रतिशत साधन गुरूमार्ग में साधक को प्राप्त होते है और इस प्राप्त

साधन के अनुसार जब आप भक्त आपकी अड़चनों का निवारण करने के लिये उस साधक से किए हुये मार्गदर्शन से लाभ लेते हैं, उस वक्त विमोचन के लिये जो विधि सूचित की जाती है जैसे त्रिपिंडी, नारायण नागबलि, ये विधि यद्यपि अलग-अलग तीथक्षेत्रों में करने के लिये सूचित किया गया है, तो भी केवल विधि करने से इन दोषों का निवारण नहीं होता है। कारण ये विधि तीर्थक्षेत्र में किये गये हैं केवल इसी कारण फलप्राप्ति होगी ही ऐसा नहीं है। इस विधि को करने वाले व्यक्ति संपूर्ण रूप से गुरूरूप और गुरू अंकित होने चाहिये, और इन दोषों का निवारण करने का सामर्थ्य भी उस साधक में होना चाहिये, तभी इन दोषों का निवारण हो सकता है। इस शास्त्रीय पद्धति के अनुसार आप भक्तों के कल्याण के लिये इक्कीस साल तक जो वंशविमोचनादि विधि, ऋणविमोचनादि विधि गुरूदीक्षा तक विधि किये गये, उनका समापन जिस विधि से किया गया वह विधि महारूद्र स्वाहाकार विधि है।

कर्मविमोचन :

प्राप्त जीवन में अड़चने दूर करने के लिये गुरूमार्गदर्शन के लिये आने पर निराकरण पद्धति से अड़चने दूर होकर सही अर्थ में भक्ति करने की योग्य शिक्षा गुरूमार्गदर्शन से मिलती है, लेकिन इसके पूर्व इन्हीं अड़चनों को दूर करने के लिये ज्ञान अज्ञानवश और विचार-अविचार से पहले भी कोशिशे की हुई होती हैं। किन्तु इन कोशिशों को सफलता न मिलने का कारण यह है कि वे कोशिशें निराकरण न होकर निराकरण के लिये किया हुआ एक प्रयत्न होता है। किन्तु गुरूमार्ग में सही अर्थ में भक्ति करने की निरंतर लगन पैदा होने के बाद जब कोई व्यक्ति निष्ठा से गुरू की भक्ति करता है, किन्तु कभी भी उपवास, व्रत ओर जाप करने का फिर से विचार नहीं करता है, यह जो बदलाव गुरू कृपाशीर्वाद से प्राप्त होता है, उसी को "कर्मविमोचन" कहते हैं। किन्तु गुरूमार्ग में भक्तभाविक इस विमोचन का अर्थ अज्ञानवश इस प्रकार करते हैं कि अनेक पूर्वजन्मों में अज्ञानवश जो पातक और प्रमाद व्यक्ति करता है उनका विमोचन यानि कर्मविमोचन हैं। किन्तु कर्मविमोचन यह साधन केवल जन्मजन्मांतर और जन्मकर्म से हितसंबंधित न होकर, प्राप्त जीवन में जिन आचार और विचारों का असर आपके नित्यकर्तव्य करने में बाधा पैदा करता है, ऐसे वक्त तत्परता से वैसा न करने का एहसास जिस माध्यम के जरिये होता है ऐसी माध्यमिक अवस्था को कर्मविमोचन कहते हैं। तात्पर्य कर्म विमोचन यह साधना, भगवान के लिये की जानेवाली नित्य साधना से भी अधिक नजदीक की होने की वजह से दिन भर, में आप अपना कर्मविमोचन, गुरूकृपाशीर्वाद से किस सीमा तक करने पाये इसका जायजा लेना यानि पुनःसंचय करना है।

ऋणविमोचन :

ऊपरनिर्दिष्ट दोनों अवस्थाओं के हितसंबंध में जीवन में प्रतिकूल कर्मों से शारीरिक, मानसिक और आर्थिक रूप में जो पीड़ा होती है उनके लिये जो विमोचन किया जाता है, उसके कारण कर्मों

की प्रखर प्रतिकूलता का लय होकर आपको अनुकूलता का लाभ मिलता है। ऋणामोचन इसका मतलब पूर्वजन्म में हम एक दूसरे के कर्मकार्य से ऋणी होते हैं, ऐसा हितसंबंध न होकर, प्राप्त जन्म में जिस परिवार में हम जन्म लेते हैं उस परिवार के हमारे रिश्तेदारों तथा संबंधियों के हितसंबंध पूर्वजन्म में रिश्तों से या कर्मो से आये ही है ऐसा आवश्यक नही हैं। इसी तरह इह जन्म में एक ही परिवार के छत्र के तले आपने जन्म लिया इसलिये आपके दैहिक रिश्ते के हितसंबंध भाई-बहन, माँ-बाप, पुत्र-पौत्र इत्यादि विषयानुसार जोड़े जाते हैं। इसके अनुसार एक ही परिवार की छाया में जन्म प्राप्त हुआ है इस कारण यह हितसंबध दैहिक स्वरूप में हमें रिश्तों के रूप में यद्यपि अनुभव देते भी है या उस साहस विचार हम करते हैं फिर भी पूर्वकर्मो के अनुसार प्राप्त हुये इह जन्म में इनमे से हर एक व्यक्ति के साथ आपके हित के हितसंबंध कर्मानुसार होंगे ही, ऐसा आवश्यक नहीं। इसी कारण अनेक परिवारो में से सगे भाई-बहनों के बीच उनके इस रिश्ते के हितसंबध अनुभव न होकर उनमें परायापन ही अधिक दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि प्राप्त जन्म में केवल दैहिक रूप में ही नाता जुड़ा हुआ होता है और उससे स्नेहभाव और आदर पैदा नहीं होता है। इसलिए एक दूसरे को पोषक ऐसे कर्म के हितसंबंध यदि जीवन में हितसंबंधों के रूप में कार्यान्वित होंगे तभी आपस में अपनापन और प्यार का अनुभव पैदा होगा। जीवन की यह विसंगति गुरूकृपाशीर्वाद से निवारण होकर, परिवार के हर व्यक्ति को अपना इष्ट कर्तव्य अपने स्वयं के तथा परिवार के कल्याण के लिये करने का जो अवसर कृपाशीर्वाद से प्राप्त होता है उस क्रियाकर्म के लिये जो अवस्था कृपाशीर्वाद के रूप कारणभूत होती है, उसी को ऋणानुबंध कहा गया है। ऋणानुबंध का मतलब एक दूसरे में आपसी लेन-देन का व्यवहार, ऐसा न होकर प्राप्त जन्म में प्रेम और कर्तव्य से जीवन व्यतीत करने का कर्तव्य निभाना है।

जीवन की उत्पत्ति के कारण के बारे में ऊपरनिर्दिष्ट शास्त्रशुद्ध जानकारी मिलने के बाद आपको यह बात स्पष्ट रूप से समझनी

चाहिये कि अनेक बार परिवार के लड़के-लड़कियों के नाम गत पीढी में दिवंगत व्यक्तियों के नाम से हितसंबंध जोड़कर उन्हीं व्यक्तियों ने परिवार में फिर से जन्म लिया है ऐसा मानकर उनके ही परंपरागत नाम बच्चों को नामकरण विधि में अनेक बार दिये जाते हैं। वास्तव में परिवार में जन्म लेनेवाला बालक आपके रिश्तेनाते के हितसंबंध की वजह से जन्म लेता है ऐसा न होकर, उस जीव को जन्म प्राप्ति के बाद अपने जीवन का पूर्णत्व प्राप्त करने के लिये योग्य परिवार, तथा समय सोचकर जन्म लेना होता है, या पूर्व में अनेक जन्मानुसार जो कर्मप्रवृत्ति शेष होगी, उस प्रवृत्ति के अनुसार जीव को जन्म लेना अनिवार्य होता है। ऐसी परिस्थिति में जन्म लेने वाले रिश्तेनाते के है या परिवार के अन्य व्यक्ति के हितसंबंध में हैं, ऐसा समझकर जो नामकरण विधि होती है, उन बालकों के इस तरह के नामकरण विधि से, जिन दिवंगत व्यक्तियों के साथ उनका हितसंबध अज्ञानवश जोड़ा जाता है, ऐसे व्यक्तियो के कर्मपरंपरा के साथ हितसंबंध जोड़े जाने से जन्म में यद्यपि उन बच्चों की प्रतिकूल कर्मो की तीव्रतक प्रखरता न भी हो, फिर भी इन नामकरणो की वजह से अनावश्यक कर्म का हितसंबध उदित होने से उन्हें अपना जीवन नाममात्र ही व्यतीत करना पड़ता है। इसके बारे में तात्विक विवेचन की जानकारी आप भक्तों को हो इसलिये क्रमशः इस विमोचन के बारे में जो निवेदन लिखा गया है उसका अभ्यास करना महत्वपूर्ण है।

इस निराकरण पद्धति में आपके प्राप्त जन्म में जो अड़चने पैदा करने वाले दोष ऊपर निर्दिष्ट कारणों से होते हैं, इसका ज्ञान आमतौर पर अड़चनो में फंसे भक्तभाविकों को न होने से हमें अड़चने पैदा हो रही हैं इसका कारण किन्हीं रिश्तेदारों ने या मित्रों ने हमारे ऊपर जादूटोना या किसी भूतप्रेत आदि प्रकारो से हमें सताने का प्रयास किया है इस प्रकारों की विचारधाराएं बहुसंख्य भक्तों की होती है। इस तरह के दुर्बल और संशयों से घिरे हुये विचार के कारण बाहर के साधको को आप भक्त स्वंय ही पैसा कमाने के लिये योग्य अवसर अज्ञानवश देते हैं। वास्तव में मंत्र, तंत्र, भूतप्रेत आदि विद्या आजकल मौजूद नहीं हैं ऐसी बात नहीं है। किन्तु उनका

आसानी से इस्तेमाल यह किसी को सहज प्राप्त होनेवाला साधन नहीं है। केवल अपनी अड़चनों के कारणों की खोज नहीं हो रही है इसलिये हम इन मार्गों का अवलंब करते हैं।

दीज्ञाविधि :

आप भक्तो-भाविकों को योग्य मार्गदर्शन की दिशा निराकरण के रूप में सूचित करने के बाद, आपके और आपके परिवार के कल्याण के लिये जो दीक्षायें गुरूआज्ञा से दी जाती है, वे दीक्षाये हैं उपासना दीक्षा, नामस्मरण दीक्षा और अनुग्रह दीक्षा। इन तीनो ही दीक्षाओं का लाभ लेनेवाले भक्तभाविकों को उपासना दीक्षा में उनकी इष्ट कुलदेवताओं की उपासना प्रथम सूचित की जाती है उसके उपरान्त आजतक उनके द्वारा न किये गये देवदेवताओं का कुलधर्म और कुलाचार, आसान तरीके से करने का मार्गदर्शन किया जाता हैं। नामस्मरण दीक्षा विधि में किसी निश्चित संख्या में नामस्मरण तथा इस नामस्मरण के पहले किसी खास इष्टसंकल्प का उच्चारण भक्तों द्वारा करना होता है। इस पद्धति से यह दीक्षा दी जाती है। तीसरी दीक्षा अनुग्रह दीक्षा है यह दीक्षा यानि प्रत्यक्ष जिस गुरूतत्व के हम उपासक हैं या पूजक हैं उस तत्व के साथ हम एकरूप हुये हैं, ऐसा न होकर आगे आपको जो गुरूदीक्षा दी जाने वाली है, उसकी यह पूर्व तैयारी होती है। इस प्रकार की कार्यपद्धति होते हुये भी जिन भक्तभाविकों को इन तीनों दीक्षाओं को लेने का लाभ हुआ है, उनकी श्रद्धा और विचारधारणा ऐसी है कि ये तीनों ही दीक्षायें हमें जीवन में पारमार्थिक उन्नति के हेतु दी गयी है, या जिन देवदेवताओं के हमने पहले पूजनादि विधि किये हैं और जिस गुरूतत्व को आज हम गुरू स्थान पर मानते हैं, इनके दिव्यदर्शन, साक्षात्कार या दिव्यज्ञान के लिये ये दीक्षायें हैं। इस प्रकार की मान्यता धारण करने से इन दीक्षा से जो लाभ होने वाला है वह किस हेतु से लेना है, इस सद्हेतु को विचार में न लेकर, अब हमारे पारमार्थिक जीवन का आरंभ हुआ है इस प्रकार का आभास पैदा कर अनेक व्यक्ति अपने नित्य जीवन के इष्ट कर्तव्यों से अलग होकर इन उपासनाओं से हम कोई खास अद्‌भूत

चीज प्राप्त करने वाले हैं ऐसा मानकार जीवन का बहुमूल्य समय अधिक से अधिक उपासना करने में व्यतीत करते हैं। वास्तव में मार्गदर्शन पद्धति के अनुसार इन तीनों ही दीक्षाओ का हितसंबंध पारमार्थिक जीवन का लाभ जोड़ने के लिए या देवदेवताओं का साक्षात्कार और दृष्टांत प्राप्त करने के लिये न होकर इन उपासनओं का यथार्थ हितसंबधं प्राप्त जीवन के देहिक माध्यम यानी काया, वाचा, और मन के साथ है।

आज प्राप्त हुआ काया, वाचा, मन अर्थात जो देहिक माध्यम है, उसी माध्यम से आज प्राप्त जन्म में आप भक्तों को ऐहिक जीवन और पारमार्थिक जीवन का यथोचित लाभ प्राप्त करना है। लकिन इस प्रकार प्राप्त देहिक माध्यम, का अस्तित्व यद्यपि हमें महसूस होता है, फिर भी प्राप्त हुआ यह देहिक माध्यम पूर्व के अनेक जन्मों के ऋणानुबधों के साथ हितसंबंधित है। इन संबंधों के हितसंबंध यानि आपके लिये हुए पूर्व के अनेक होते हैं। इन जन्मों के अनुसार हम विभिन्न परिवारों में धर्मो में, अथवा देवदेवताओं के ऋणानुबधों में जन्म लेते हैं। ऐसे समय-समय पर लिये हुये जन्म तथा वर्तमान प्राप्त जन्म इन्हें देहिक माध्यम के परिसर में होने वाले हितसंबंधों के वलयों का हितसंबंध यद्यपि प्राप्त हुये काया, वाचा मन से होता है फिर भी उन सभी ऋणानुबंधों को पोषक ऐसा माध्यम यानी प्राप्त हुआ काया, वाचा मन यदि हो तो प्राप्त जन्म में आप जिस सुख, शांन्ति समाधान की अपेक्षा करोगे उसकी पूर्ति में किसी कारणवश अवराध निर्माण नहीं होगा।

किन्तु यदि आज प्राप्त हुआ देहिक माध्यम यानी काया, वाचा और मन इन ऋणानुबंधों को धारण करने के लिये पोषक नहीं होगा, तो प्राप्त जन्म में ऋणानुबंधों के अनुसार सुख, शांति और समाधान की व्यवस्था होने के बावजूद भी केवल कष्ट करने के अलावा प्राप्त जन्म और कुछ अधिक सुख प्राप्त नहीं कर सकता। इस प्रकार की दोष परंपरा प्राप्त जन्म में ऋणानुबंधों के साथ जुड़ी हो और ये ऋणानुबंध आज प्राप्त इस जन्म के साथ जुड़े हुये हो ऐसे समय में

सुख, शांति और समाधान प्राप्त करने के लिये आप भक्त निरंतर जो कोशिश करते हैं उसकी फलप्राप्ति होने के लिये कृपाशीर्वाद के रूप में कोई माध्यम की आवश्यकता होती है। ऐसे माध्यम का लाभ आप भक्तों को बिना किसी प्रयत्न के करा देना यानि दूसरे शब्दों में आपके प्राप्त जीवन का देहिक माध्यम ऋणानुबधों के लिये अनुकूल करना या वे ऋणानुबंध प्राप्त जीवन में देहिक माध्यम के साथ अनुकूल बना देना इस प्रकार के जिन साधनों का कार्यभार आप भक्तों के कल्याण के लिये गुरूआज्ञानुसार किया जाता है उस साधना पद्धति को दीक्षा विधि कहते हैं।

इन तीनों दीक्षा विधियों का लाभ जब आप लेते हैं तब इसका संबंध देवदेवताओं के साथ जोड़ने में अथवा पारमार्थिक जीवन में हुये लाभ का हिसाब करने में अपना समय जाया न करें न ही उसके बारे में विचार करते रहे। इसके बजाय आपके परिवार के सदस्यों को आपके दीक्षा विधि के उपरांत के आपके आचार, विचार और उच्चारणों में दीक्षा विधि के पूर्व के आचार, विचार तथा उच्चारों की तुलना में अनुकूल परिवर्तन हुआ है ऐसा यदि एहसास होता है तो इस तरह से आप में हुये परिवर्तन से वह सदस्य और आप स्वयं ये पारिवारिक प्यार के मेलजोल की लाभ पायेंगे। यदि ऐसा होता है तो इस आपसी स्नेह भाव को पारमार्थिक उन्नति कहा जा सकता है।

इन प्राथमिक अवस्था की तीनों दीक्षा विधियों का लाभ होने से आप भक्तों की "काया, वाचा और मन" इस देहिक अवस्था को एकरूपतव्त प्राप्त होता है। इसके उपरान्त आप भक्तों को गुरूदीक्षा यह जो विधि दीक्षा के रूप में दिया जाता है उसी क्षण से आपका जीवन पारमार्थिक होना शुरू होता है। इसी कारण इन तीन दीक्षा विधियों के पूर्व कई बार आपने यह महसूस किया होगा कि काया यह माध्यम यद्यपि देवदेवताओं का है या उसे उपासना का बंधन मानकर आप भगवान के सामने बैठे हो लेकिन यह क्रिया करने के लिये जो मन की एकाग्रता उस समय होनी चाहिये वह मन उसी समय अप्रत्यक्ष रूप से अन्य विषयों के अधीन हुआ है। इस प्रकार भक्ति करने की

यह झूठी क्रिया है। इससे आप तत्वत: भगवान को तो ठगते है ही, इतना ही नहीं अपितु आप अपने आपको भी ठगते हैं। इस प्रकार की भक्ति में दिन का जो समय हम इशचिंतन में खर्च करते हैं ऐसा मानते हैं वह देवदेवताओं के लिये था स्वयं के लिये न होकर वह समय का व्यर्थ अपव्यय हैं पारमार्थिक उन्नति की नींव काया, वाचा, और मन की शुद्धता है। वह जब परिपक्व होती है, तब भगवान को की गयी पुकार भगवान तक पहुंचना और उसकी कृपा आप तक पहुंचना यह क्रिया पूर्ण होना यही साक्षात्कार है।

ऊपर निर्दिष्ट किये गये और आप भक्तों ने भक्तिभाव से स्वीकार किये हुये इन तीन दीक्षा विधियों द्वारा आपने आपकी काया, वाचा और मनकी ऋणमुक्ति, देहिक अवस्था का विमोचन और सही अर्थ में गुरूकृपाशीर्वाद का लाभ इन तीनों की प्राप्ति से जीवन सार्थक बनाया। इन दीक्षा विधियों को भविष्य में सिद्धस्वरूप प्राप्त कर, वह परंपरा भविष्य काल में दुखी जनों के कल्याण के लिये कार्यान्वित होने का कार्यकारण भाव ही श्री महारूद्र स्वाहाकार है।

हो सकता है कि इस प्रकार का स्वाहाकार विधि कहीं और जगह पहले हो गया या आगे इससे भी बड़े स्तर पर किया जायेगा, फिर भी यह विधि जिस मुख्य संकल्प माध्यम से करना होता है यह संकल्प संसार के सभी दुखी लोगों के सुख, शांति और समाधान के लिये है, इस प्रकार केवल जाहिर कर, सुख, शांति और समाधान की फलप्राप्ति नहीं होती है। कारण यह विधि करने से पहले आप भक्तों की अड़चनों में से जो मुख्य अड़चनें हैं उनकी विस्तृत जानकारी स्पष्ट होनी चाहिये। प्राप्त जन्म में सुख, शांति और समाधान के लिये जो कोई अपेक्षायें और इच्छायें है उनकी प्राप्ति न होने में जो दोष कारण हैं उन्हे यदि समझदार न समझ पाया तो किया गया संकल्प केवल धार्मिक विधि मात्र रहकर इसका लाभ भक्तों को नहीं होगा।

ऊपर निर्दिष्ट विवेचन से आप सूज्ञ भक्तों को यह अवगत होगा कि जीवन में जो दिक्कतें पैदा हुई हो उनके निवारण के किये केवल देवदेवताओं पर उनके उपलक्ष्य में धार्मिक विधि और आचरण

करने से आपको और आपके परिवार को अपेक्षित ऐहिक सुख इस जन्म में प्राप्त होंगे ऐसा कोई भी शाश्वत रूप से नहीं कह सकता। इसका कारण आप भक्तों के जीवन में सुख, शांति में बाधा पैदा करने वाले जो दोष होते हैं उन्हे गुरू कृपाशीर्वाद से और निराकरण पद्धति से प्रथमतः अनुकूल कर इन दोषों के अनुसार उनकी जो सहज कर्मप्रवृत्ति होती है अनुकूल होनी चाहिये। ऐसी अनुकूलता प्राप्त होने के बाद जो दोष रह जाते हैं उनके विमोचन के लिये आगे गुरूआज्ञानुसार जो विधि हो उससे आप भक्तों के भवितव्य का इन्तजाम होता है। किन्तु आज साधक अवस्था में जो व्यक्ति होते हैं उनके बारे में हुआ अनुभव बताता है कि "त्रिकालज्ञान प्राप्ति और उसी प्रकार भूत और भविष्य के बारे में भविष्य बताना यही गुरूमार्ग है" ऐसा वे कहते हैं। लेकिन हे सूज्ञ भक्तों, जो सही गुरूमार्ग है और जिसको वह गुरूकृपाशीर्वाद से प्राप्त हुआ है, वह भूत भविष्य बताने की अपेक्षा भक्तों का भक्तित्व बनाकर उसे साकार करते हैं। इस प्रकार कार्य करने वाला ही सही गुरूभक्त होता है और ऐसे गुरूभक्तों का कार्य भक्तभाविकों के लिये इतना परिपूर्ण होता है कि भक्तों के प्राप्त जीवन से लेकर आगे भविष्य में उन्हें जो अनेक जन्म प्राप्त होने हैं उनका भी इन्तजाम उनके जीवन में कृपाशीर्वाद से किया जाता है। इसका योग्य अनुभव प्राप्त करा देने की जिम्मेदारी यद्यपि गुरू की होती है फिर भी उसका अनुभव लेने की जिम्मेदारी गुरूभक्त की होती है। यह गुरूभक्तों को भूलना नहीं चाहिये।

आप भक्तों के कल्याण के लिये यह कार्य बीते कई साल से मैंने अपनाया है, वह मेरे जीवन का एक ऐहिक विषय इस दृष्टि से नहीं है। प्राप्त जन्म में जीवन सार्थक बनाने के लिये हर मानव को जो बहुमूल्य जन्म प्राप्त होता है, उस प्राप्त जन्म के प्रति कृतज्ञ होने के लिये उस भक्त को संपूर्णतः अपने गुरूतत्व की शरण में जाना आवश्यक होता है। इतना ही नही अपितु सेवाकार्य का कार्य पूर्णतया कृतार्थ करने के लिये यद्यपि मृत्यु को भी स्वीकार करना पड़े तो भी इस प्रकार की दिव्यता स्वीकार करने की निष्ठा जब भक्त में परिपूर्ण

पैदा होगी तभी वह गुरू यह विषय तत्व को सुलभता से प्राप्त कर सकता है। इसी मार्गदर्शन पद्धति के अनुसार गत अनेक साल में गुरूकृपाशीर्वाद से जो आपके कल्याणार्थ योग्य मार्गदर्शन गुरू द्वारा गुरू आज्ञा से किया है, वह आज्ञा आप भक्तों के जीवन में कार्यपद्धति इस दृष्टि से साकार करने का जो छोटा सा प्रयत्न हुआ है उसी को समिति का कार्य कह सकते हैं।

केवल देवदेवतार्जन करना और घंटो तक भगवान के सामने बैठना या तीर्थ क्षेत्र मैं रहकर मैं भगवान के आज्ञानुसार सेवा कर रहा हूँ इस प्रकार कहने से साधक अवस्था का शुभारंभ होना मुश्किल बात है। साधक के जीवन के साधक अवस्था का मूल्यांकन करना देवताओं को भी संभव नहीं हुआ है। इस अवस्था में जब आप भक्त, अपने जीवन के इष्ट कर्तव्य की जिम्मेंदारी भूलकर, इस संसार में अन्य कोई भी देवभक्त आपको बिना श्रम के सुख, शांति और संपत्ति प्राप्त करा देने वाले हैं इस आशा में इधर-उधर भागकर, अपने जिंदगी का बहुमूल्य समय फिजूल खर्च करते हैं और प्राप्त जीवन में सुख, शांति और समाधान का जो आभास पैदा करते हैं, उससे स्वाभाविक रूप में भगवान, धर्म और प्राप्त जन्म के इष्टकर्तव्य के प्रति होने वाली श्रद्धा का क्षय होता है। इस प्रकार के अश्रद्धा की सूझबूझ स्वयं को प्रथम होनी चाहिये। वास्तव में ऐसी अश्रद्धा पैदा करने में देव और धर्म जिम्मेदार ना होकर हम स्वयं ही उसके जिम्मेदार होते हैं। इसका कारण हमारे जीवन परिसर में हमारे अतिरिक्त जो अन्य व्यक्ति हैं उनको प्राप्त होने वाला सुख, शांति और समाधान हमें स्वयं को अभी तक क्यों प्राप्त नहीं हो रहा है इसके बारे में सूझ-बूझ का ख्याल न कर अन्य व्यक्तियों को प्राप्त हुए सुख का अनुकरण करने की ओर ही हमारे जीवन का झुकाव होता है।

इस प्रकार की निकट समस्याएं यद्यपि कर्म के अनुसार प्राप्त नही हुई होती है, फिर भी आपको प्राप्त जीवन के बारे में सही जानकारी न होने से सुख के स्वप्नों में जो दीर्घकाल अपव्यय होता

है, उसके कारण ये समस्यायें योग्य गुरू और गुरूमार्ग की ओर जाने के बाद भी, आपको सही कृपाशीर्वाद का लाभ प्राप्त कराने में बाधा पैदा करती है। जीवन में आप भक्तों को दो बातों का ध्यान रखना चाहिये। एक बात यह है कि आपको अपने नित्य उपासना से प्राप्त जीवन के बारे में ज्ञान स्वयं प्राप्त करना चाहिये। दूसरी बात यह कि यदि आप गुरूमार्ग को अपनाये तो गुरूमार्गदर्शन के अनुसार अपना जीवन गुरू को समर्पित करना चाहिये। तभी आपको प्राप्त जन्म का सार्थक क्या है इसका अनुभव होगा। इसमें जो प्रथम मार्ग है जिसमें नित्य उपासना से आपके प्राप्त जन्म का ज्ञान स्वयं कर लेना है यह मार्ग सर्व सामान्य व्यक्ति के सामर्थ्य के बाहर की बात है, यह अवस्था आपको इस जन्म में प्राप्त होगी ही, यह कह नहीं सकते। लेकिन दूसरा मार्ग आसान और सहज साध्य होकर भी इस मार्ग में पूर्णतः एकरूप होने का जो कर्तव्य है वह बहुसंख्य भक्त नहीं करते हैं। इसके जो कारण हैं वह गुरूकृपाशीर्वाद के सामर्थ्य के परे न होते हुये भी उसके बारें में जो भय है उसका परिहार गुरूमार्गी होकर भी नहीं होता। मिसाल के तौर पर अनेक भक्त-भाविक उनके कुल की जो रूढी, परपंरा, धार्मिक रीति-रिवाज, कुलधर्म, कुलाचार और श्राद्ध आदि धार्मिक विधि होते हैं उन्हें न करने को बता देने के बाद भी उनको करने का मोह वह एक या परंपरा है इसकी वजह से वे छोड़ नही सकते! इस प्रकार की समस्याएं अनादि काल से हम मानवों के जीवन में इतनी गहरी बैठी है कि यद्यपि गुरूकृपाशीर्वाद के सामर्थ्य से कुल की गत सात पीढ़ियों और आगे आने वाली सात पीढ़ियों को अन्न, वस्त्र और मकान की पूर्ति करने की गुरू साक्ष दे रहें हैं फिर भी उनके कृपाशीर्वाद की यह साक्षात् भेंट स्वीकारने का तथा साथ देने का मनोधैर्य भक्तभाविकों में न होने से हर एक जन्म में और हर पीढ़ी में वही पुराने धर्मकृत्य, संस्कार और धार्मिक विधियों को फिर से दोहराना और कर्म के अनुसार प्राप्त जीवन को अधिक विकट बनाना, इसी प्रकार का जीवन आज हम मानवों के जिम्मे आया है।

आप भक्त आज तक जिस गुरूकृपाशीर्वाद का लाभ ले रहें हैं, यह भाग्य पाने का कारण केवल आज जीवन में पैदा होने वाली अड़चनें यह न होकर अनेक पूर्व जन्मों में उसे प्राप्त करने की लालसा नित्य से बूंद-बूंद पैदा होते-होते आज पूर्ण रूप से गुरू प्राप्ति के द्वार पर आप आसानी से आकर खड़े हुये हैं। ऐसे समय विचार अविचार या ज्ञान-अज्ञान से घिरकर, उसमे प्रवेश करें या न करें, इस तरह का भ्रम आप में पैदा होना इससे बड़ा पाप हो ही नहीं सकता है। आज तक मेरे अनुभव से और सिद्ध-सिद्धांत कार्यपद्धति के अनुसार आप भक्तों के कल्याण के लिये योग्य और आवश्यक साधन और निराकरण सूचित किये जाने से यदि आनेवाले समय में आप निरंतर सुख, शांति समाधान की प्राप्ति चाहते हैं तो, जो रूढी परंपरा आपने ज्ञान-अज्ञानवश अपनाकर उसको धर्मकृत्य मानते आ रहे हो, उसे त्याग दें। तभी आप भक्तों को प्राप्त गुरूकृपाशीर्वाद क्या है, इसका ज्ञान होकर आगे आनेवाली पीढ़ियो को उसका लाभ होगा।

गुरू आज्ञा से जो विधि आप सबके कल्याण के लिये किये गये, यह योजना केवल ऐहिक सुख प्राप्ति के लिये न होकर, उसमें प्राप्त जन्म में पारमार्थिक सुख का भी यथोचित लाभ हो इस सद्हेतु किये हुये है इसलिये आप भक्तों को आने वाले समय में मार्गदर्शन के अनुसार ही देवधर्म और दानधर्म करना हितकारी होगा। प्राप्त जीवन में जन्म का सार्थक करने की इच्छा आपके वृद्धाकाल में हुई इसलिये अधिक समय ईशभक्ति में व्यतीत करने से जन्म का सार्थक होगा", इस प्रकार की अंधश्रद्धा मन में रखकर बार-बार भगवान का नामस्मरण करने से परमार्थ प्राप्ति नहीं होगी। गुरूमार्ग में मार्गदर्शन अति महत्वपूर्ण और प्रभावी साधन होता है क्योंकि भक्त के कल्याण के लिये या उसके उद्धार के लिये कौन सा साधन उसको जल्दी से फलप्राप्ति देगा, वही साधन सूचित किया जाता है। इसलिये इस मार्गदर्शन पर अटल विश्वास रखकर। अपने मन से या किसी के कहने पर या संत साहित्य, धर्मग्रंथ पढ़कर उसका निर्णय नहीं करना चाहिये। क्योंकि आप इस तरीके से जो साधन अपनायेंगे यह सिद्ध न

होने से उसका फल आपको किसी जन्म में फलदायी नहीं होगा। किन्तु गुरूमार्ग और गुरू माध्यम सिद्ध अवस्था का साक्षात्कार होने से उनके मुख से निकला शब्द आपको फल की प्राप्ति करा देता है। उसको अपना सर्वस्व मानकर जो स्वीकार करेगा और उसके अनुसार आचरण करेगा वही भक्त गुरूपद में लीन हो सकेगा।

ऊपर निर्दिष्ट सब निवेदन आप भक्तों के मार्गदर्शन के लिये इसलिये सूचित किया गया है कि श्रीदत्तक्षेत्र, नरसोबा की बाड़ी, आदि तीर्थस्थानों में जो महारूद्र स्वाहाकार समाप्ति की गयी उसका स्वीकार श्री दत्तप्रभु ने अत्यंत भक्तिभावना से किया है इसकी गवाही देना यानी अपनी प्रशंसा आप करने जैसी बात होगी। मगर आप भक्तों को यह कहने में मुझे खुशी हो रही है। इसका कारण यह है कि इस कार्य के आरम्भ में मैंने ढाई साल श्रीदत्त सेवा में श्रीदत्तक्षेत्र औदुंबर में व्यतीत किये और उन्ही की आज्ञा से कार्य के लिये जब निकला तब उनके चरणों में एक ही मांग की थी कि "आपके दिये हुये कृपाशीर्वाद के अनुसार यह कार्य मेरे हाथों से निःस्वार्थ और निरपेक्षबुद्धि से हो। आपके कृपाशीर्वाद से यह कार्य करते हुये मुझे अन्य लोगों से बड़प्पन, नाम और सामाजिक संपत्ति की अभिलाषा नहीं है। "मेरा यह कार्य मैंने आपके कृपाशीर्वाद से यथायोग्य किया है और में इस जन्म में आपकी सेवा से कृतज्ञ हुआ हूँ" इसकी गवाही आपको ही देनी चाहिये।"इस इच्छानुसार महारूद्र स्वाहाकर विधि करने के बाद मुझे श्रीदत्तक्षेत्र नरसोबा की बाडी के देवस्थान के कमेटी ने आमंत्रित कर श्रीदत प्रभू के मूर्ति पर चढ़ाया हुआ महावस्त्र आशीर्वाद के रूप में पाना यह मेरे जीवन में हुई घटना कितनी महान है इसकी अनुभूति का अंदाजा केवल शब्द के रूप में सुनने से नहीं होगा। गुरूभक्ति सेवा की यह धरोहर जो मुझे मेरे इस प्राप्त जन्म के प्रारंभ में मिली वह मेरे अपने इसी जन्म में फलस्वरूप होना इतना महात्भाग्य त्रिभुवन में भी नहीं मिल सकता। इस प्रकार का मेंरा संपूर्ण विश्वास श्री गुरू चरणों में होने से मैंने यह निवेदन आप भक्तों के हित के लिये आज गुरू आज्ञा से आप सब के सामने किया है। गोवा

में "साईधाम" वास्तु को बनाकर उसमें "गुरू शक्तिपीठ" की स्थापना की गयी है यह आप सभी भक्तभाविकों को विदित है, इस शुभारंभ के अवसर पर बहुत से भक्त भाविक उपस्थित भी थे। गुरूशक्तिपीठ की चिरप्रतिष्ठा गोवा के साईधाम वास्तु में करने के बाद इस शक्तिपीठ के प्रतीक हर कार्यकेंद्र को दिये गये हैं, यह यद्यपि आप भक्त जानते हैं, फिर भी शक्तिपीठ की स्थापना करने का शास्त्रोक्त विधि क्या है इसकी जानकारी आप भक्तों को देना महत्वपूर्ण बात है। केवल आप लोगों के कल्याण के लिये मैं गुरू आज्ञानुसार कोई विधि साधन के दृष्टि से कर रहा हूं इस पर विश्वास कर और हर केंद्र को दिये हुये शक्तिपीठ की ओर आप यद्यपि आदर भावना से देख रहे होंगे, फिर भी गुरूमार्ग में ऐसा शक्तिपीठ स्थापित करने की विधि कितनी मुश्किल है इसकी सही जानकारी आप को होनी चाहिये।

आज हमलोग जिस विश्व में रहते हैं वह विश्व ब्रम्हाण्डशक्ति का एक प्रतीक अर्थात् पिंड है यह ब्रम्हाण्डशक्ति त्रिगुणात्मक शक्ति से युक्त है। ऐसी ब्रम्हाण्डशक्ति से ही पिंड की यानी इस पृथ्वी का रखरखाव त्रिगुणात्मक शक्ति से अर्थात् उत्पत्ति, स्थिति और लय इन तत्वों से होता है। जब इसी पृथ्वी पर हम मानव जन्म लेते हैं तब हम भी इस ब्रम्हाण्डशक्ति का ही एक अंश यानी पिंड है। यदि ऐसा है तो जन्म लेने के बाद प्राप्त हुये इस जीवन को व्यतीत करने के लिये हमें भी इस त्रिगुणात्मक शक्ति की धारणा काया, वाचा और मन से करनी पड़ती है। इस त्रिगुणात्मक शक्ति में "उत्पत्ति" शक्ति के धर्म के अनुसार हम जन्म लेते हैं। जिस काया को हम धारण कर जन्म लेते हैं, उसी काया में "स्थिति" अवस्था के अनुसार स्थित्यंतर होकर हमारा देहिक माध्यम इस संसार को जानने के लिये समर्थ होता है। इन दो शक्तियों से यद्यपि मानव देह की धारणा होकर कर्म के अनुसार यह देहिक माध्यम कार्यान्वित होता है फिर भी इन माध्यमों की अविकसिकतता अर्थात् इन दो शक्तियों का एकरूपत्व न होने से लय अवस्था धारण नहीं होती है। जिन दो अवस्थाओं के अनुसार हम जन्म लेते हैं और देहिक माध्यम से जीवन

व्यतीत करते हैं, उस जीवन को और देह को विकसित करने का कार्य लय अवस्था का है। लय अवस्था का मतलब अंत न होकर प्राप्त हुये इस देहिक माध्यम का पूर्णतः विकास यानी अनंत ऐसा है। किन्तु यह जन्म उत्पत्ति मीमांसा और उसका कार्यकारण बहुजन समाज को विदित न होने से, उत्पत्ति और स्थिति इन दो अवस्था में ही उनका जीवन व्यतीत होता है और इस प्राप्त हुये जन्म की सार्थकता अर्थात् जीवन को अनंतरूपी बनाना, इसके विपरीत जीवन का अंत होकर पुनश्च जन्म लेने का कारण हम लोग स्वयं ही इस जन्म में पैदा करते हैं। इस प्रकार इस लय अवस्था के बिना हम मानव जो जीवन जी रहे हैं, ऐसे जीवन में लय अवस्था के अभाव से जो शून्यता पैदा होती है उससे यह जीवन संतुलित तरीके से कार्यान्वित नहीं होता है। इसके कारण जरूरत के अनुसार सुख प्राप्त हुआ हो तो भी उसका अनुभव लेने में हम असमर्थ होते हैं।

जब आप गुरूमार्ग की ओर या देवादिकों के कृपाशीर्वाद के लिये जाते हैं तब जिस लय तत्व का अभाव आपके काया, वाचा, और मन में होता है, वह धारण हो इसलिये गुरू या देवादिक, कृपाशीर्वाद से लय अवस्था यानी शक्ति का संक्रमण आपके देहिक माध्यम में करते हैं। किन्तु लय अवस्था भक्तों में प्रथम मुलाकात में ही संक्रमित करना संभव नहीं होता है। क्योंकि देह के ईर्दगिर्द विचार-अविचार के वलय धारण हुये होते हैं। इस प्रकार आपके अनजाने में जिन वलयों की धारणा आपके विचार, विकार और आचार की वजह से होती है उनसे गुरूकृपाशीर्वाद से जो लय शक्ति आपके देहमाध्यम में धारण होनेवाली है, उस शक्ति को उसके इष्टकार्य करने में बाधा पैदा होती है। इसलिये अलग-अलग दीक्षायें समय-समय पर देकर उनके अनुसार सूचित की गयी साधना के द्वारा दीक्षांत विधि से गुरू भक्त के देह के ईर्दगिर्द एक कवच पैदा करते हैं और इस वलय का हितसंबंध देह के साथ रहे इसलिये आवश्यक सेवायें सूचित करते हैं। इन दीक्षांत विधि से गुरूकृपाशीर्वाद का कवच धारण होकर जब गुरू के द्वारा लय शक्ति संक्रमित करने की क्रिया जारी रहती है तब प्रतिकूल वलयों का दुष्परिणाम प्राप्त होनेवाले गृरूकृपाशीर्वाद पर न हो इसलिये जो विधि

या सिद्धसिद्धांत पद्धति है उसको "गुरूदीक्षा" कहते हैं। केवल कोई व्यक्ति के लिये हमारे मन में पूजनीय भाव है और उस व्यक्ति के प्रति हम आप आदर व्यक्त्त कर रहे हैं इससे हम गुरूमार्गी हो गये हैं या हमारा दीक्षांत विधि हुआ है ऐसा नहीं होता है। जो कार्य भक्तों की इच्छानुसार गुरू नहीं करते हैं किन्तु गुरू मार्गदर्शन के अनुसार आये हुये भक्त का इह जन्म और आगे होने वाले जन्मों का अनुसंधान जिस विधि से प्राप्त कर देते हैं वह गुरू मार्ग में एक "अभिवचन" होता है। यह उनकी ब्रहम वाचा से निकले हुये शब्द आप भक्तों ने ब्रम्हवाणी मानकर गुरू के बारे में शत-प्रतिशत विश्वास, श्रद्धा और भक्ति संपादन करनी चाहिये। केवल कार्यक्रेंद पर सूचनापट लगाये जाते हैं इसलिये इन दीक्षांत विधियों का लाभ लेने के लिये आप भक्तों ने अंधश्रद्धा से और अज्ञान से अनुकरण करने की गलती कदापि नहीं करनी चाहिये।

आज दुनिया में अपने आसपास ऐसे व्यक्ति हम देखते हैं जिनको उनकी अपेक्षा से बहुत ज्यादा सुख और सम्पन्नता प्राप्त है। ऐसे व्यक्तियों को हम लोग भाग्यवान कहते हैं। ऐसी वस्तुस्थिति उनके जीवन में देखकर ऐसे सुख का अभाव हमारे जीवन में किन कारणों से है इसकी खोज तथा सीख हमें नहीं होती है। इसलिये जो व्यक्ति सुखसंपन्न है उनके प्रति यद्यपि अन्य लोगों को जलन होती है फिर भी उनकी सुख संपन्नता में किसी प्रकार की कमी नहीं आती। इसका कारण यह है कि पूर्व के किसी एक जन्म में उनको प्राप्त जन्म का बोध किसी न किसी ने कर दिया होता है इसलिये जिस लय तत्व से जीवन में पूर्णता आती है उस लय तत्व को यह व्यक्ति हर जन्म में जोड़ते रहते हैं और जब पूर्णतः उत्पत्ति और स्थिति अवस्था में वह जन्म लेते हैं तब यह दोनों अवस्थाएं लय तत्व में विलीन हुई होती हैं, इसलिये उनका जन्म पूर्णतः लय अवस्था का होता है और उनकी इच्छानुसार इस जन्म में वे सुख के हकदार होते हैं। ऐसी अवस्था जिन्हें प्राप्त है ऐसा गुरू माध्यम इस जन्म में आप भक्तो को मिलता है तब यद्यपि वह आपके समान मानव देह के रूप

में होता है फिर भी उनके भी पूर्व के अनेक जन्मों के अनुसार वे प्राप्त हुई उत्पत्ति और स्थिति अवस्था को लय अवस्था में विलीन कर जिस लय अवस्था द्वारा यह ब्रम्हाण्ड पिण्ड का जतन करते हैं उस ब्रम्हाण्ड शक्ति के साथ यह व्यक्ति लय अवस्था द्वारा एकरूप हुये होते हैं। इसी कारण इस संसार में जो कोई व्यक्ति लय शक्ति के अभाव के कारण दुखी और कष्टी होते हैं उन्हे अपने दैहिक माध्यम के द्वारा लय शक्ति का लाभ कृपाशीर्वाद से कराकर उनका दुखी और कष्टमय जीवन ये सुखमय करते हैं। इस अवस्था के द्वारा जब यह कार्य होता है तब ऐसे समय ब्रम्हमाण्ड शक्ति उस गुरूमाध्यम में अवतीर्ण होती है, इसलिये उनको भगवान का अवतार मानते हैं।

ब्रह्मांड शक्ति जब इस तरह से पिंड के साथ एकरूप होती है, तब यह गुरू माध्यम संसार के दुखी और कष्टी लोगों का जीवन सुखावह करने के साधन (निराकरण) निर्माण कर, इस संसार को सुख, शांति और समाधान की दिशा प्राप्त करा देता है। इस प्रकार का यह अवतारकार्य जिस मानवी देह माध्यम से होता है, उस जीवन परिसर में ब्रह्मांड शक्ति का वलय उनके अंत तक कार्य करता रहता है। किन्तु जब वह व्यक्ति दिवंगत होता है तब जिस देहिक और आत्मिक तत्वों की एकरूपता से ब्रह्मांड शक्ति के साथ देहिक माध्यम यानी पिंड जुड़ा हुआ होता है, वह ब्रह्मांड शक्ति उनके अंत के बाद पुन: अपने आप में निराकार होती है। इस प्रकार यह पिंड और ब्रह्मांड की लेनदेन अनंत काल से चली आ रही है और आजतक अनेक अवतारी पुरूषों ने पिंड और ब्रह्मांड को एकरूप कर अवतार कार्य किया है। किन्तु केवल उनके जीवन के अंतकाल तक ही जिस लय माध्यम से उन्होंने ब्रह्मांड शक्ति इस जगत के कल्याण के लिये अवतीर्ण की थी वह ब्रह्मांड शक्ति फिर से अपने स्थान में गमन करती होती है। इस अवतारी पुरूष का लय तत्व जो यह क्रिया करने में समर्थ होता है, वह इस जगत में उस अवतारी पुरूष की "समाधि" के रूप में अस्तित्व में है। इस शक्तिमाध्यम के सान्निध्य में हमलोग जब जाते हैं तब स्वाभाविकता से हमारे में होनेवाली लय

तत्व की कमी यद्यपि पूरी होती है, फिर भी हम लोग इस प्रकार प्राप्त किये इस लय शक्ति का विनियोग भगवान के साथ यह जीवन जोड़ने के लिये न कर ज्यादा से ज्यादा ऐहिक सुख की आसक्ति के कारण प्राप्त हुये कृपाशीर्वाद का यानी लय शक्ति का गैर-तरीके से इस्तेमाल करते हैं।

शक्तिपीठ :

जगद्गुरू श्री साईनाथ महाराज के कृपाशीर्वाद से ऊपरी अवस्थाओं की परंपरा का ज्ञान समय-समय पर होने से जिस लय शक्ति से यानी कृपाशीर्वाद के माध्यम से मेंने गत कई सालों से यह लोककल्याण का कार्य आप भक्तो के लिये किया है, इस ब्रह्मांड शक्ति की जरूरत आनेवाले समय में हम मानवों को इस संसार में सुख, शांति और समाधान के निर्माण के लिये है। इसलिये वह शक्ति प्रतीकात्मक करने के लिये आप भक्तों द्वारा गत पांच सालों में उँकार की साधना करवाकर उस ब्रह्मांड शक्ति का प्रतीक गुरूपीठ के रूप में "निर्माण किया। यद्यपि यह सही है कि इस पीठ की स्थापना तक श्रीसद्गुरू का कृपाशीर्वाद और आप भक्तों का सहयोग इस पीठ की स्थापना के लिये हुआ, फिर भी इस विधि के पूरा होने तक मैं बहुत ही चिंताग्रस्त था। इसका कारण यह है कि इस प्रकार का दिव्या या साहसी कार्य जिस अवधि तक जारी रहता है उस अवधि में उसका आवाह्न का उसकी चिरप्रतिष्ठा होन तक वह शक्ति प्रथमत: आवाह्न करनेवाले साधन का अंत कर उसके भक्तों का जीवन भी ध्वस्त कर देती हैं। यह ज्ञान इसके पहले अनेक अवतारी परंपरा के सत्पुरूषों को हुआ है, इसलिये उन्होनें यह सिद्धसाधना हम मानवों के कल्याण के लिये नहीं की।

आज यह स्थापित शक्तिपीठ शत प्रतिशत ब्रह्मांड शक्ति यानी लय अवस्था है और जो कोई इस लय अवस्था के अभाव के दुखी और कष्टी है उनके जीवन को पूर्णत्व दिलाने के लिये यह शक्ति कार्यान्वित होने वाली है। आजतक आपने पोथियों और पुराणों का पठन किया होगा। उनमें लिखा है कि संसार के कल्याण के लिये

समय-समय पर देवताओं ने और सत्पुरूषों ने अवतार लेकर इस संसार का पालन किया है उन देवदेवताओं की स्थापना होकर, जिस लय तत्व ने मानव कल्याण के लिये अवतीर्ण होकर यह कार्य किया है, उनके पीठ आज देवदेवताओं के नामों के रूप में अस्तित्व में है फिर भी उस शक्ति के इष्ट कार्य को जतन करने की जिम्मेंदारी को ध्यान में न लेकर इन शक्तिपीठों के परिसर में निषिद्ध धार्मिक विधि किये जाते हैं उनसे इन पीठों के शक्तिकार्य में आज बाधा निर्माण हुई है। इसके कारण यद्यपि परिवार के इष्टदेवता के दर्शन के लिये परिवार के सदस्य वहां जाते हैं और वार्षिक कुलाचार और कुलधर्म करते हैं फिर भी जीवन कल्याण के लिये इष्ट कृपाशीर्वाद का लाभ आज नहीं होता है इसके जिम्मेंदार हम लोग ही है। देवदेवताओं के दर्शन के लिये जाने पर क्या मांगना है इसका ज्ञान हमें नही होता इसलिये हमारे जीवन में जिन सुखों की कमियां है उन सुखों की हम याचना करते हैं। इसके विपरीत ऐसा होना चाहिये कि दर्शन के लिये जाने पर उन देवदेवताओं की कृपा हम पर हो इस तरह की प्रार्थना, याचना या कोई धार्मिक विधि होनी चाहिये। इसको ध्यान में लेकर हम अपने खानदान की देवदेवताओं के लिये विधि करेंगे तो निश्चित ही हमारे जीवन की समस्यायें दूर होकर हमें इष्ट सुख समाधान और शांति प्राप्त होगी। इसके साथ ही जब उस देवता का कृपाशीर्वाद के रूप में आगमन अर्थात् लय शक्ति आपने अपने परिवार में प्राप्त की है तब आपके खानदान में अपने आप विद्या, संपत्ति, संतान, सुख, शांति और समाधान की जो कमी है वह दूर होकर अनजाने में आपकी सत्प्रवृत्ति भी जागृत होकर पारमार्थिक सुख का लाभ लेने के लिये आप भक्त समर्थ होंगे।

इस संसार की उत्पत्ति से लेकर हम मानवों के कल्याण के लिये लय शक्ति ने अवतार रूप में समय-समय पर अवतीर्ण होकर इस संसार की देखभाल देवदेवताओं के शक्तिपीठ माध्यम के द्वारा की थी, ऐसे शक्तिपीठ दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत तक हम मानवों के कल्याण के लिये है। इन शक्तिपीठों के दर्शन के लिये जाकर जिस अनादिकाल में इन शक्तिपीठों की स्थापना जिस उद्देश्य को लेकर

की गयी थी उन उद्देश्यों के अनुसार इन शक्तिपीठों की कार्यक्षमता आज तक कार्यरत है या नहीं, यह आजमाने के लिये में स्वयं जब शक्तिपीठों के दर्शन के लिये गया था तो मैंने यह अनुभव किया कि शक्तिपीठों में यद्यपि अधिकारी व्यक्तियों ने लय तत्व का आवाह्न कर उसकी प्राणप्रतिष्ठा की थी फिर भी इन शक्तिपीठों के परिसर में अनजाने में जो धार्मिक विधि हुये उनसे वहां के वातावरण में मलीनता आयी है। इसकी वजह से इन शक्तिपीठों का लाभ जो शत-प्रतिशत होना चाहिये वह लाभ भक्तों को होने में एक तो विलंब लगता है या पुनश्च उन शक्तिपीठों की शक्ति का लाभ होने के लिये बार-बार वहीं धार्मिक विधि वर्षो तक करने पड़ते हैं। इस प्रकार यह एक जमाने की सुवर्ण भूमि जिसका रक्षण इन शक्तिपीठों के माध्यम से होकर हम मानवों का जीवन सुख, शांति और समाधान से समृद्ध होता था, इसके विपरीत अब यह शक्तिपीठ नाममात्र ही अस्तित्व में है, और वहां उन-उन खानदान की पीढ़ियां वही-वही धार्मिक विधि बार बार कर रहे हैं। इतना होते हुये भी जब कोई मामूली सी ऐहिक सुख की मांग करने जाते हैं तब उनकी इतनी याचना भी पूरी क्यों नहीं होती है? इस प्रकार का विचार कोई भी अधिकारी व्यक्ति नहीं करते उलटे इस तरह का मार्गदर्शन किया जाता है कि "तुम्हारे उसी शक्तिपीठ कुलदेवदेवता की आराधना आपको और आपके परिवार के सदस्यों को करनी चाहिये" नियति नियम के अनुसार अच्छी या बुरी कोई भी शक्ति जिसका अस्तित्व इस भूमि पर हो तो उसका स्पंदन (Vibrations) साधक अवस्था में साधक को महसूस होना चाहिये। मैं जब दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत तक इन शक्तिपीठों के दर्शन के लिये गया था तब मूल शक्ति के शुद्ध स्वरूप के स्पंदन महसूस न होकर मिश्रित स्पंदनों की ही संवेदनाओं का अनुभव तीव्रता से हुआ। तब मैंने सद्‌गुरु साईनाथ महाराज को प्रार्थना की कि "बीते जमाने में जिन अवतारी परंपरा के अधिकारी व्यक्तियों ने अपने जीवन का बलिदान देकर मानव कल्याण के लिये इन शक्तिपीठों की निर्मिती की वे शक्तिपीठ आज पहले

जैसे कार्यरत नहीं है। उन्हें पहले जैसे कार्यरत करने के लिये कोई उपाय अगर आपने सुझाय तो भविष्य में हम मानवों के सुख-शांति समाधान के लिये ये शक्तिपीठ पुनः जागृत होकर हम मानवों के कल्याण का कार्य निरंतर कार्यान्तिव करेंगे। "इसलिये श्री सद्गुरू ने यह कृपाशीर्वाद दिया कि "तुम आगे बढ़ों, तुम्हारे इच्छानुसार में तुम्हारी कार्यसिद्धि कर दूंगा।" उनकी आज्ञानुसार श्रीक्षेत्र नरसोबावाडी में मैं तथा आप सब भक्तगण हर पूर्णिमा के दिन उपस्थित रहकर ग्यारह पूर्णिमाओं के दिन रूद्रहवन किया और उसके उपरान्त इन ग्यारह पूर्णिमाओं को किये हुये हवनों के समारोह के उपलक्ष्य में महारूद्र स्वाहाकर किया गया। इस वक्त अनेक भक्तों ने मुझसे यह सवाल किया कि हर साल कार्यकेंद्र पर जो हवनादि विधि करते थे वह बंद कर अब नरसोबाबाडी में यह हवनादि विधि करने का क्या प्रयोजन है? तो इस सवाल का शास्त्रोक्त निराकरण यह है कि हर साल कार्य केंद्र पर गत इक्कीस साल से जो हवनादि विधि होते थे वह अपने परिवार के सदस्यों के जीवन के दोषों से अपनी मुक्ति हो इसलिये विमोचन के रूप में किये गये। किन्तु गत एक साल की अवधि में श्रीक्षेत्र नरसोबाबाडी में जो हवनादि विधि होता था तब उसमें रूद्रशक्ति यानी लय तत्व को आवाहन किया जाता था। इसका कारण आज भारत में जो शक्तिपीठ देवदेवताओं के नाम से अस्तित्व में हैं इन शक्तिपीठों का मूल स्वरूप यह रूद्रदेवता है और जो शक्तिपीठ अनुचित विधियों के कारण से कार्यरत नहीं है, उनको कार्यक्षम बनाने का कार्य सिर्फ वहीं रूद्र शक्ति कर सकती है, जिस शक्ति के माध्यम से उन शक्तियों का उदय हुआ है। महारूद्र स्वाहाकार विधि आप भक्तों के साथ इसलिये किया गया कि जब कोई आवाह्न किसी शक्ति को किया जाता है तब वह शक्ति धारण करने का सामर्थ्य साधक अवस्था में होने वाले साधक के पास होना चाहिये। अन्यथा इस प्रकार शक्ति को आवाह्न किया गया और वह शक्ति धारण करने की कार्यक्षमता साधक के पास न हो, तब वह शक्ति इहलोक में सुख और शांति प्राप्त करा देने के बजाय प्राप्त सुख और शांति के नाश के लिये कारण बनती है। इस प्रकार

आवाह्न की गयी रूद्रशक्ति की वजह से भारत में सब शक्तिपीठ पहले जैसे जागृत हुये। इसका सुस्पष्ट प्रमाण यह है कि गोवा में दशहरे के दिन यानी परमपूज्य साईनाथ महाराज के पुण्य तिथि के दिन ये देवतायें गुरूशक्ति में विलीन हो गयी।

इसका भी अर्थ कई भक्तों ने इस प्रकार लगाया कि जब देवदेवतायें गुरू शक्ति में विलीन हुई हैं तब इसके बाद उन देवदेवताओं की संभावना के प्रित्यर्थ पूजनादि विधि अपने परिवार वालों को करने की अब जरूरत नहीं है किन्तु यह देवदेवतायें गुरूशक्ति में विलीन हुई इसका यह अर्थ करना गलत होगा। अपने-अपने वंश की जो देवदेवताएं है उनके उपलक्ष में जो कुछ कुलधर्म कुलाचार हम करते हैं वह ज्ञान अज्ञानवश पूर्णतया न होना संभव है तो इसके पर्याय में जबकि अब आप गुरूभक्त होने के कारण अपने वंश के देवदेवताओं का आपको विस्मरण हुआ है ऐसा अनुभव न हो इसलिये यह देवदेवताएं गुरूशक्ति में विलीन हुई हैं। इस उपरिनिर्दिष्ट उक्ति का सही अर्थ यह समझना चाहिये कि यद्यपि आप दु:ख निवारणार्थ गुरूमार्ग की ओर आये भी हो फिर भी आपके दुखों के निवारण का कार्य सही लयशक्ति द्वारा ही होता है जो कि गुरूकृपाशीर्वाद से लेकर देवदेवताओं तक कार्यरत होती है। अज्ञान के कारण हम गुरू और देवदेवताओं में भेदभाव निर्माण करते हैं, उस अज्ञान को ही पहले दूर करना चाहिये।

कारण, महाकारण, श्री साईशके प्रतिमा :

आज हर एक कार्य केंद्र पर ब्रहमांड शक्ति का प्रतीक गुरूपीठ के रूप में स्थापित किया गया है। इस ब्रहमांड शक्ति का आगमन गुरू माध्यम से हुआ है, उस शक्ति को इस जगत् में हम मानवों के कल्याण के लिये अवतीर्ण होने के लिये गुरूमाध्यम पोषक होने के कारण श्रीगुरू ने त्रिगुणात्मक शक्ति को ऊँकार साधना में एकरूप कर ब्रहमांड शक्ति को चिरप्रतिष्ठित रूप में स्थापित किया है। लेकिन इस स्थापित ब्रहमांड का लाभ होने के लिये आप भक्तों का देहिक माध्यम पोषक होगा ही ऐसा नहीं है, इसलिये श्री गुरू ने इस

शक्तिपीठों की स्थापना के पहले आपको कारण, महाकारण और श्री साईशक ऐसी तीन प्रतिमायें देकर इन प्रतिमाओं के जरिये इन पीठों में जिस त्रिगुणात्मक शक्ति का समावेश हुआ है वह शक्ति आपके काया, वाचा और मन में धारण हो, यह योजना पहले ही बनाई थी और उस योजनानुसार धारण की गयी यह शक्ति आप में चिरकाल रहकर आपके और आपके परिवार के भविष्य की पूर्णता की गयी है। वह इस प्रकार है कि शक्तिपीठ की स्थापना होने के पहले आपके देहिक माध्यम से ऊँकार की साधना क्रमशः नाभिस्थान से लेकर ब्रह्मरंध तक यानी पाँच स्थानों में करवाकर ऊँकार के अतिरिक्त ओम नमः शिवाय बोलने को कहा गया, वह लय शक्ति को आवाह्न था। आवाहिनित की हुई शाक्ति अन्य व्यक्तियों के कल्याण के लिये ब्रह्मांड में धारण होकर जिस तरह ब्रहमरंध का शक्तिपीठ तैयार हुआ उसी तरह पिंड का भी शक्तिपीठ ब्रह्मांड में तैयार कराया गया। इस शक्तिपीठ में ऐसी अवस्था का लाभ होना जो ब्रहमरंध के शक्तिपीठ में समाविष्ट है इसे दूसरे शब्दों में इस तरह बताया जा सकता है कि जो पिण्ड में है वहीं ब्रह्मांड में है और जो ब्रह्मांड में है वही पिण्ड में भी है। वेदकाल से हम मानवों के कल्याण के लिये लयशक्ति ने अनेक रूपों में इस जगत् में अवतार लेकर हम मानवों के जीवन का रक्षण करने का यथोचित कार्य यद्यपि आजतक निरंतर चलाया है फिर भी इस माध्यम से कृपाशीर्वाद प्राप्त होने के लिये वेदों में या पुराणों में आसान से आसान ऐसे साधन मार्ग का निवेदन कहीं भी नहीं किया गया है। इस कारण स्वाभाविक रूप से देवदेवताओं के कृपाशीर्वाद को प्राप्त करने के साधन मार्ग से धीरे-धीरे ध्यान हटता गया है। श्री जगत्गुरू साईनाथ महाराज के कृपाशीर्वाद से आप भक्तों को प्राप्त जीवन में सुख, शांति, समाधान आदि की प्राप्ति होना तथा प्राप्त जीवन भविष्य के लिये पारमार्थिक बनना यह प्राप्त जीवन के दो कर्तव्य है जिन्हें दूसरे शब्दों में ऐहिक और पारमार्थिक कह सकते हैं, इन दोनों अवस्थाओं का लाभ आप भक्त सुलभता से प्राप्त कर सकते हैं इस प्रकार की यह अमूल्य देन गुरूकृपा से आगे आनेवाली पीढ़ियों के लिये प्राप्त हुई है। यह विचार सूज्ञ भक्तभाविकों ने कर, आज समिति के

जो कार्यकेंद्र नियुक्त सेवकों द्वारा सेवा कार्य कर रहे हैं इन सेवकों को अन्य लोगों की सेवा करने में आप भक्तों को सहयोग करना चाहिये।

आप भक्तों को आज जो अवस्था प्राप्त हुई है वह अवस्था प्राप्त हो इस विचार से आप गुरूमार्ग में प्रविष्ट नहीं हुये हैं। इसके विपरीत जीवन में अनन्य भक्तिभाव से भगवान की शरण लेनी चाहिये। इस विचार की ही अपेक्षा आप करते आये हैं। किन्तु आपके इस अज्ञान की श्री गुरू ने भक्तों की उपेक्षा न कर जिस अपेक्षा की खोज में आप आये है, उस अपेक्षा से कही अधिक ऐसा सीमावर्ती सुख उन्होंने आपको प्राप्त करा दिया है।

कृपाशीर्वाद के अनुसार आप में किसी प्रकार का बदलाव आया है इसका जायजा नित्य से लेकर उसके अनुसार हमेशा बर्ताव करना बहुत महत्वपूर्ण है। अपने नित्य जीवन में आप जब नये कपड़े पहनते हैं तब अन्य व्यक्तियों को उसका ज्ञान फौरन होता है। अपने परिधान किये हुये नये कपड़े के बारे में आपको जिस प्रकार अन्य व्यक्तियों के बताने की जरूरत नही होती है उसी प्रकार आज आप भक्तों को गुरूकृपाशीर्वाद का जो बहुमूल्य वस्त्र प्राप्त हुआ है और अनंत जन्मों तक मिलते रहने वाला है वह यद्यपि अन्य व्यक्तियों को दिखाई देनेवाला नहीं है फिर भी आप कृपावंत है ऐसा कहने के बाद आपके आचार-विचार से आपको प्राप्त हुई यह कृपा का अन्य व्यक्तियों को अनुभव होना चाहिये। इसके विपरीत कृपाशीर्वाद से पूर्व आपका जिस प्रकार का जीवन आपके और अन्य लोगों के संबंध में था उसी का अनुभव आपको और अन्य व्यक्तियों को हुआ हो तो कृपापात्र होकर भी उस कृपा की अवहेलना आप अपने अज्ञान से कर रहे हैं यह सिद्ध होता है। इस प्रकार का अनादर जब अनजाने में आप भक्तों के काया, वाचा और मन से होता है तब कृपाशीर्वाद में वृद्धि होने की बजाय कृपाशीर्वाद का क्षय होता है, इसकी सूझबूझ आप भक्तों को होनी चाहिये।

प्राथना का महत्व :

अब आपको जो अवस्था प्राप्त हुई है उसको जतन करने के

संबंध योग्य बोध को अनुभव करने में आप समर्थ है। इस प्रकार का अनुभव हर एक साधक और सेवक व्यक्ति को कर अपना जीवन गुरूमय करना है। यह सब निवेदन और यह सब कार्य आज तक उन्हीं के कृपाशीर्वाद के फल के रूप में आपने लिया है। उस फल की मिठास आप भक्तों के काया, वाचा और मन के द्वारा संसार के दुखी मानवों के जीवन को कृपाशीर्वाद के रूप में मिले तथा उनके जीवन का आधार बने, इसलिये श्रीसद्‌गुरू आपको सद्‌बुद्धि प्रदान करें श्रीगुरू का अवतारकार्य आपके किये कर्त्तव्यों द्वारा अजरामर हो यही उनके चरणों में प्रार्थना है। शक्तिपीठ की शक्ति और उसके महत्वपूर्ण कार्य के बारे में आप भक्तों को जानकारी होनी जरूरी है। जिंदगी में जब कोई संकट आता है तब हम उससे बचने के लिये उपायों का आयोजन करते हैं। किन्तु कुछ समय बाद संसार में पैदा होने वाली परिस्थिति से बचने के लिये पहले से ही कृपाशीर्वाद की उपाय योजना करना इसको दूरदर्शी तथा पूर्व नियोजित उपाय कहते हैं। इसका प्रबंध संकेत ईश्वरी संदेश द्वारा होता है मानवी बुद्धि से नहीं। परमपूजनीय बाबा की कृपा से स्थापित हुये जैसे शक्तिपीठ का उल्लेख श्री आद्य शंकराचार्य ने उनके लिखे "सौंदर्यलहरी" ग्रंथ में किया है। इस सृष्टि के वस्तु को आकार देने वाले शास्त्र को भूमितिशास्त्र कहते हैं। जो विश्वशक्ति निर्गुण निराकार है उसे भी मानव कल्याण के लिये सिद्ध करने के लिये आकार देना पड़ता है उस आकार का प्रतीक पृथ्वी तत्व है। इस आकृति में दो त्रिकोण होते हैं, जिसमें एक त्रिकोण पिंड का प्रतीक यानी चेतना होता है और दूसरा त्रिकोण ब्रह्मांड की प्रतिमा यानी चैतन्य होता है। हरेक त्रिकोण १८० अंश का होता है और दो त्रिकोण मिलाकर ३६० अंश होते हैं। इसमें विश्व का समावेश है। जो जीव पिंड के रूप में जन्म लेता है, उसको ब्रह्मांड में यानी इहलोक, परलोक और स्वर्गलोक में जाने के लिये एक मार्ग होना चाहिये, और इस संसार में जन्में हुये जीवों को मानवता के आधार पर एकत्रित करने के लिये एक प्रार्थना होनी चाहिये, यह पमरपूज्य साईनाथ महाराज की इच्छा थी। उसके लिये जो ऊँकार शक्ति आवश्यक होती है वह श्री नृसिंह सर स्वतिस्वामी के रूप में इस भूतल

पर अवतीर्ण हुई थी। वह शक्ति प्राप्त करने के बाद उस शक्ति में संसार में त्रिगुणात्मक रूप में अस्तित्व में हुई देवदेवतायें एकरूप हुई और उसके बाद ही शक्तिपीठ की स्थापना की गयी।

आप जब इस संसार में जन्म लेते हैं उसके बाद जीवन के कार्य का गणित समझना जरूरी होता है। जन्म लेते समय कर्म का अंग शत प्रतिशत होता है फिर भी उस कर्म के अनुसार केवल खुद के लिये ही सुख का लाभ करा लेना यह इष्ट बात नहीं है। आज जो सुख हमें ६६ प्रतिशत कर्म के अनुसार मिलता है वह सुख केवल एक ही व्यक्ति का न होकर उसमें अन्य व्यक्तियों का भी समावेश होता है, यह हम भूल जाते हैं। इस जन्म में सुख पच्चीस प्रतिशत, शांति पच्चीस प्रतिशत और प्राप्त हुये सुख का समाधान और नित्य साधना मिलाकर पचास प्रतिशत, इस प्रकार का सौ प्रतिशत जीवन होना चाहिये। जीवन में सुख की प्राप्ति कितनी भी हो फिर भी समाधान की प्राप्ति होना महत्वपूर्ण है। क्योंकि यही समाधान अगले जन्म में आपका "सत्कर्म" होने वाला है। यह अवस्था साधन से प्राप्त होती है। रोज की पूजा और आरती सत्कर्म नहीं है। वह केवल अंग है। इन अंगों से युक्त क्रिया जब काया, वाचा और मन से होती है तब "सत्कर्म" का जन्म होता है। अर्थात् समाधान अवस्था का हमें लाभ होता है इस समाधान में अन्य व्यक्तियों का समावेश करने से वह कर्म दुगुना होता है।

मानव का देह यह एक भूमि है। जिस कर्म के अनुसार जीवन व्यतीत होता है उस कर्म की धारणा होने के लिये इस देह माध्यम को आकार देना पड़ता है। इस प्रकार का आकार न हो तो कर्म शरीर में धारण होकर कार्य नहीं कर सकता। इस स्थिति को हम संकट या दुख मानते हैं। दैनंदिन पूजा, पोथीपाठ, जपजाप और तीर्थयात्रा आदि ये सब औपचार है, उनका वलय देह के बाहर होता है। ऊँकार साधना यह उपचार है वह देह में धारण होकर काया, वाचा और मन को आकार प्राप्त कर देता है। अर्थात् काया, वाचा और मन की गति एक होती है। इस अवस्था में जो ब्रह्मांड में है वही पिंड में है या जो पिंड में है वहीं ब्रह्मांड में हैं। इस प्रकार की अवस्था का अनुभव प्राप्त होता है। यह अवस्था तत्वज्ञान के रूप में

शाब्दिक माध्यम से व्यक्त करने के लिये न होकर उस अवस्था की अनुभूति होनी चाहिये। इसका अर्थ यह है कि देह यह भूमि को भूमिति से आकार देने के बाद आज दैनंदिन जीवन में आपका कर्तव्य क्या है इसका विचार करना चाहिये। "कर्म की गति गहन है" ऐसा कहते हैं किन्तु गहन यानी क्या है और काया, वाचा और मन की गति जो अलग-अलग होती है वह एक कर उसमें से चौथी अवस्था किस प्रकार प्रकट करनी है इसका गणित केवल श्री साईबाबा को ही अवगत था और है। आज आप भक्तों के जीवन में यह कार्यसिद्धि हुई है इसलिये ऐहिक सुखों का अधिक लाभ आपको न होकर भी आप "समाधान" अवस्था का लाभ आपको परिवार के लिये प्राप्त कर चुके हैं।

प्रार्थना – साधना और उसमें वेदवेदांत

प्रार्थना और सिद्धसिद्धांत पद्धति :

हम मानवों के जीवन कल्याण के लिये वेदकाल से आजतक जो कुछ धार्मिक विधि, आचरण, उपवास, व्रत आदि मार्ग सूचित किये गये हैं, इन सब मांगों से प्राप्त जन्म को सार्थक करने के लिये किस कर्तव्य को इस जन्म में अपनाना चाहिये यह सूचित नहीं किया है। प्राप्त जीवन में ऐहिक जीवन व्यतीत करने के लिये हम मानवों की जो जरूरतें है और जो कमियां हैं उनकी पूर्ति किस मार्ग से की जा सकती है इसका आशय ध्यान में लेकर कुछ धार्मिक विधि हम मानवों के जीवन में रूढ़ हुये हैं तथा उस रूढ़ीपरंपरा के अनुसार आज भी अनेक व्यक्ति अंधश्रद्धा से उनका अवलंब करते हैं। प्राप्त जीवन में जिस सुख की प्राप्ति हुई है उस सुख की अनुभूति होने के लिये इस मानवी जीवन के माध्यम से यानि काया, वाचा और मन में किन प्रकारों की न्यूनता है इनको ध्यान में न लेकर अधिक सुख प्राप्त हो इस आशा से रूढ़ीजन्य देवदैविक मार्ग का और धर्माचरण का इस्तेमाल हो रहा है। आज अपने नित्य जीवन में अनेक व्यक्ति तीर्थक्षेत्र में जाकर देवदर्शन पोथी स्तोत्रों आदि का पठन कर रहे हैं। मगर किसी को भी आज तक यह ज्ञात नहीं हुआ है कि मैं जो कर रहा हूं उसमे मेरे इस नित्य कर्म में निराशक्ति कितनी है? आज नित्य पठन में आनेवाली पोथी-पुराणों का पठन यद्यपि हम लोग करते हैं, तब भी मेरा अपना मत यह है कि हम जो कर्मकर्तव्य "प्रार्थना" के रूप में कर रहे हैं, वे भगवान तक नहीं पहुंच रहे हैं ऐसा अनुभवांती कहना पड़ेगा। मिशाल के तौर पर आप व्यंकटेश स्तोत्र या अन्य कोई स्तोत्र का पठन करते हों, तो इस स्तोत्र के आखिर में जो अवतरणिक लिखी है, उसमें इस स्तोत्र का पठन अमुक दिन, अमुक समय तक करने से अमुक-अमुक फल प्राप्ति होगी, यह जब पढ़ते हैं तब भगवान और हममें क्या लेन-देन हो रही है, इसका स्पष्ट खुलासा होगा। हमें जो प्राप्त करना है उसे अनेक जन्मों तक भगवान से मांगते रहे तो भी भगवान वह सुख

संपत्ति आपको कभी नहीं देगा। जब आपके अन्दर यह आस पैदा होगी कि दुनिया में जो दुखी लोग हैं उन्हें हम जैसा ही सुख प्राप्त हो और इस हेतु जब आप भगवान की प्रार्थना करेंगे तभी आपके प्राप्त जीवन में जो कमियां हैं वे पूरी होंगी। यह अन्य व्यक्तियों के कल्याण की गहरी और हृदयस्पर्शी ऐसी मानवी कर्तव्य की भूमिका आजतक जिस धर्म का, शास्त्र का या देवदेवतार्जन का आपने विचार किया होगा उनमें अन्य व्यक्तियों के लिये मेरे प्राप्त जीवन में मुझे कोई कर्तव्य करना है ऐसा बोध आपको कहीं नहीं मिलेगा। जो कोई धार्मिक विधि आप करते हैं उसके पहले आप किसी संकल्प का उच्चारण कर उसका आरंभ करते हैं, उसी में आपका व्यक्तिगत स्वार्थ कितना और है क्या यह सब भगवान जानता है। इसलिये आप जो विधि करते हैं वह विधिविधान न होकर वह शास्त्र के अनुसार भगवान को संबोधित कर किन्तु आपके स्वार्थ के लिये की गई प्रार्थना होती है।

ऐसे मार्ग का हम लोगों ने कई सदियों तक अवलंब कर प्राप्त जीवन को ईश्वर कृपा से साकार करने के कर्तव्य से वंचित हो गये हैं। इस अहसास की पहचान समिति के कार्यारंभ के समय ही सद्गुरू कृपा से हुई। इसके बाद जब इस कार्य का शुभारंभ हुआ तब गुरुआज्ञा से "हे भगवान" यह प्रार्थना लिखी गई। वह इस हेतु से कि जब आप अपने दुःख निवारणार्थ निराकरण पूछने आयेंगे ऐसे समय जीवन को योग्य मार्ग तथा योग्य मोड़ दिया जाये। आज तक आप भक्त यह प्रार्थना नित्य आरती के बाद हर कार्यकेंद्र पर सुनते होंगे या अपने घर में भी उसका पठन करते होंगे। लेकिन इस प्रार्थना में जीवन उद्धार के लिये क्या वेदवेदांत गुरुकृपा से समाविष्ट किये गये हैं इसकी जानकारी आपको शायद ही हुई होगी।

ऊपर बताये अनुसार जब काया, वाचा और मन से आप अन्य व्यक्तियों के लिये सदिच्छा व्यक्त करते हैं तब यह नित्य क्रिया कुछ लक्ष जाप संख्या से भी कहीं अधिक पुण्यकर्म जोड़ने में मदद करती है। इसका कारण यह है कि आपके व्यक्तिगत जीवन में खामियां, जरुरतें आदि की आपूर्ति होने के लिये जब आप पूजन, अर्चन, देवध

र्म या कोई अन्य धार्मिक विधि करते हैं तब आपका मन उस विधि में एकचित्त नहीं होता। किन्तु यह मन आपके जीवन की खामियों की पूर्ति के लिये मार्ग ढूंढ़ने में व्यस्त रहता है। मगर जब आप कोई प्रार्थना, अर्थात् जो विधान आप आज कर रहे हैं, वह नित्य नियम से करेंगे तो भविष्य में आपके परिवार और अन्य व्यक्तियों के लिये गुरुकृपा से सिद्धसिद्धांत पद्धति का अनजाने उच्चारण कर परिवार के और अन्य व्यक्तियों के जीवन की खामियां दूर होगी। क्योंकि यह गुरुकृपाशीर्वाद इस कार्यपद्धति में समाविष्ट, सिद्धसिद्धांत पद्धतिनुसार आपने उनसे कृपाशीर्वाद के रूप में लिये हुआ है। अब प्रार्थना माध्यम से यह सिद्धसिद्धांतपद्धति अन्य व्यक्तियों के कल्याण के लिये, अनजाने में कार्यान्वित होनेवाली है। किन्तु इसका ज्ञान आपको आजतक नहीं हुआ है।

आज आप भक्तों को गुरुकृपाशीर्वाद से जो बहुमूल्य अवस्था इस जन्म में प्राप्त हुई है, इसकी प्राप्ति आप के अनेक जन्म खर्च करने पर भी मुश्किल है, यह अनेक बार कई मुलाकातों में बताया गया है। मगर आप भक्तों ने किसी प्रकार का जाप साधना किये बिना श्रीसद्‌गुरु ने कृपावान होकर आपको जो अवस्था प्राप्त करा दी है उस अवस्था का आस्थापूर्वक विचार नहीं किया है इसका दुःख है। इसकी अपेक्षा अन्य व्यक्तियों के जीवन में प्राप्त ऐहिक सुख से अधिक सुख गुरुकृपाशीर्वाद से आपको प्राप्त होता, तो आपको उस सुख के बारे में अधिक आस्था और प्रेम पैदा होता। आज आपको जरूरत से ज्यादा ऐहिक सुख प्राप्त करा देने में श्रीसद्‌गुरु असमर्थ नहीं है। मगर जो कुछ आपको सुख और संपत्ति के रूप में प्राप्त होगा वह सब इस जगत से बिदाई लेते वक्त आपको इस जगत में ही छोड़ना होता है। आज प्राप्त हुये पैसा का जो सुख है उसका अगले जन्म के संभरण की दृष्टि से भविष्य में उत्तम जन्म प्राप्त होने के लिये तनिक भी उपयुक्त नहीं है। इसका ज्ञान होकर आवश्यक सुख हम मानवों को देकर यह अवधान प्राप्त जन्म की बार-बार पुनरावृत्ति न हो इसलिये यद्यपि वर्तमान जन्म हमें कर्मानुसार प्राप्त हुआ है तो भी उस जन्म का सार्थक हो इसलिये श्रीसद्‌गुरु ने आज का हमारा इह जन्म कृपा के

अनुसार कर दिया है। यह बहुमूल्य धरोहर व्यक्तिशः आपके लिये और आपके परिवार के सदस्यों के भवितव्य के लिये है। इसलिये आप भक्तों के भवितव्य के लिये आपका यह आद्य कर्तव्य है कि आपको प्राप्त इस अवस्था को जतन करना है। आप के लिये अब इतना ही कर्तव्य करना शेष है आपको प्राप्त हुई इस अवस्था का लाभ अन्य व्यक्तियों को करा देने का परोपकार यद्यपि आप नहीं कर सकते हैं फिर भी प्राप्त हुई इस अवस्था का दुरुपयोग आपके आचारविचार या आपके ज्ञान और अज्ञान से न हो इतनी सावधानी आप भक्तों को विचारपूर्वक रखनी चाहिये।

आज आपको जो अवस्था प्राप्त हुई है, उस अवस्था का लाभ प्राप्त होने के लिये आपको किन-किन ऋणानुबंधों से सुलभ और आसान मार्ग से ऋणमुक्त किया है, इसका ज्ञान आपको प्रथमतः होना चाहिये। हम मानवों का जन्म होने के बाद प्राप्त जीवन पांच ऋणानुबंधों से (मातृपितृ, इतरेजन, देवादिक, जन्मकर्म, जन्मजन्मांतर) संबंधित होता है। जब तक इन पांच ऋणानुबंधों के कर्तव्यों की पूर्ति आपके हाथ से नहीं होती है, तब तक प्राप्त जीवन सार्थक नहीं होता है। यदाकदा किसी को इन ऋणानुबंधों का ज्ञान होकर उनसे मुक्ति पाने के लिये अपना कर्तव्य देवादिक मार्गो से करने का निश्चय उसके करने पर भी उसके लिये प्राप्त जीवन तो अधूरा है ही, इसके अलावा जिस विधि मार्ग से जो आचारविचार, आहार और पैसे की आवश्यकता होती है उतना पैसा खर्च करने के बाद ऋणमुक्ति पाना असंभव है। किसी एक विधि के अनुसार देवधर्म, दानधर्म, परोपकार, तीर्थयात्रा आदि धर्मकृत्य आपके हाथों होता भी है तो आप इनमें से केवल एक या दो ऋणानुबंधों से इस जन्म में मुक्ति पा सकेंगे। किन्तु पुनश्च जन्मप्राप्ति होने पर कृपाशीर्वाद के अभाव के कारण हुआ जन्म फिर इन पांच ऋणानुबधों से हितसंबंधित रहेगा ही। यह व्यथा और दुखदर्द जो कि हम मानवों को हर एक जन्म में भुगतना पड़ता है, इससे हरेक जन्म में जन्म का कारण इस संदर्भ में जो कुछ विषय को लेकर आत्मा नरजन्म लेता है उस नर का नारायण होने के लिये अनेक जन्म प्राप्त

होकर भी, जो जन्म का कारण आपके लिये या अन्य व्यक्तियों के लिये होता है, इसका सार्थक नहीं होता है।

अपने नित्य जीवन में आप अनेक धर्मग्रंथ पढ़ते हैं, पोथी और पुराणों का भी श्रवण और मनन होता है। यह सब शास्त्र ग्रंथ हमें "प्राप्त जन्म का सार्थक करना चाहिये" यह प्रतिपादन तो करते ही हैं और यद्यपि हम लोग यह बात नित्य सुनते भी हैं फिर भी आज तक किसी ने हम मानवों के जीवन की सार्थकता के लिये निश्चित मार्ग सूचित नहीं किया है। एक दूसरे ने एक दूसरे को "जन्म लिया है, तो इसका सार्थक कर लो", यह बताने के सिवाय और कुछ भी नहीं किया है। जिनके द्वारा हम यह बोध सुनते हैं, क्या उनका तो भी जीवन सार्थक साबित हुआ है? इस सवाल को कोई भी विचाराधीन नहीं रखता है। यदि अंधश्रद्धा के अनुकरण करने की व्यथा समाज में रूढ होने के कारण उसी मार्ग का अवलंब कई सदियों से हो रहा है, और आजतक किसी भी साधक ने सुलभ और आसान मार्ग से हम मानवों का जीवन साकार करने का शुद्ध शास्त्र व्यवहार में नहीं लाया है। आज मुझे ऐसा कहना पड़ेगा कि आप भक्त किन्हीं अड़चनों के कारण और "उनका निवारण हो" इस विचार से इस समिति के कार्यपद्धति का लाभ लेने के लिये प्रसंगानुसार आये थे। किन्तु अड़चनों के निवारण के लिये समिति के कार्य का लाभ लेते समय ही प्राप्त जीवन का सार्थक हो इस सिद्धसिद्धांत पद्धति का समावेश जो कि इस कार्य में है, उसका भी लाभ आज आपने लिया है। किसी समय आप भक्त सुख प्राप्ति के ख्याल से यहां आये थे और आज अनजाने में आप अन्य व्यक्तियों को भी सुख देने में समर्थ हुये हैं। यह अवस्था इस जन्म में जिस सद्गुरु कृपाशीर्वाद से आपको प्राप्त हुई है उस गुरु की कृपाशीर्वाद की धन्यता का वर्णन करने के लिये आज त्रिभुवन में योग्य शब्द मिलना भी मुश्किल है।

कार्यपद्धति की यह विस्तृत जानकारी होकर अनेक भक्तों ने इसका अनुभव किया है, जिस सिद्धसिद्धांत पद्धति के कारण आप

भक्तों को आज की इस अवस्था तक पहुंचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसी सिद्धसिद्धांत पद्धति का भविष्य में इस संसार के कल्याणार्थ और सुख-शांति-समाधान के लिये इस्तेमाल करना है। किन्तु जो परिचित-अपरिचित भक्त नये आये हैं उन सभी भक्तों को दीर्घकाल तक उनकी इच्छा और अपेक्षा के अनुसार प्राप्त जीवन में जो कोई ऐहिक और परमार्थिक सुख प्राप्ति की इच्छा है उनको प्राप्त जीवन में अपना कर्तव्य क्या है यह मालूम नहीं है। आज जिनको हम सुशिक्षित या वैज्ञानिक कहते हैं, उन्होंने जीवन जीने का ज्ञान प्राप्त किया हो फिर भी "जीवन--क्या है इसके बारे में उन्हें ज्ञान नहीं है। इस अज्ञानवश उनको प्राप्त जीवन का पचहत्तर प्रतिशत काल ऐहिक सुख संपत्ति की प्राप्ति के लिये अनावश्यक खर्च हो रहा है। प्राप्त हुआ यह जीवन कितना बहुमूल्य है इसका ज्ञान न होने से अधिक ऐहिक सुख की प्राप्ति यही जीवन का सार्थक है यह मानने से इन लोगों का बहुमूल्य जीवन अनावश्यक रूप में व्यतीत हो रहा है। यदि इन लोगों को प्राप्त जीवन की सही पहचान होगी, तो भविष्य में विश्व शांति का कृपाछत्र धारण करने में इन लोगों का सहयोग बहुमूल्य साबित हो सकता है। आपको प्राप्त हुआ यह जीवन सार्थक हो इसलिये आज तक सुलभ और आसान सिद्धसिद्धांत पद्धति का (विमोचन, दीक्षा, साधन सेवा) इस्तेमाल किया गया, उसकी अपेक्षा गुरुकृपाशीर्वाद से सुलभ तरीके से संसार में दुखी और कष्टी लोगों को सुख की सही दिशा प्राप्त करा कर, प्राप्त जन्म का ज्ञान और कर्तव्य करने के लिये उनको भगवान बुद्धि दे इस प्रकार की साधना आप गुरुबंधुओं और भगिनीयों को करनी है। श्रीसद्गुरु को तीस साल पूर्व कार्य के आरंभ में यह ज्ञान था, इसलिये उन्होंने हमें दैनंदिन प्रार्थना दी (हे भगवान हमारे परिवार के उद्धार के लिये) यह प्रार्थना, जिसके द्वारा सिद्धसिद्धांत पद्धति से आप भक्तों को आज की अवस्था प्राप्त हुई है, इस अवस्था का लाभ अनजाने में इस संसार के सभी दुखी कष्टी और अज्ञानी लोगों को हो इसलिये सब सिद्धसिद्धांत पद्धति का समावेश इस प्रार्थना में किया है।

हिरण्यशर्भ अवस्था :

आप भक्तों का जीवन गुरुमार्गी होने से पहले, यद्यपि आप जीवन व्यतीत करते थे फिर भी उस शब्द का अर्थ आपको गहराई से मालूम नहीं था। जीवन यानि व्यतीत होने वाला काल हम मानवों को प्राप्त जीवन से पूर्व इस जीवन का स्थल, काल और समय आदि विधिलिखित होन से, यद्यपि हम लोग अपना जीवन व्यतीत करते हैं, फिर भी व्यतीत होनेवाला जीवन नियति की गति के अधीन होने से जन्म लेने के समय से लेकर अंत तक का समय नियति की गतिनुसार व्यतीत होता है। जब हम मानवों को "जीवन-- अवस्था प्राप्त होती है इस अवस्था में देह और जीव (आत्मा) अर्थात् देहिक और आत्मिक अवस्था होती है। हर जन्म में आत्मा को कर्म के अनुसार नया देह धारण करना पड़ता है तो भी आत्मा या आत्मिक अवस्था में बदलाव नहीं होता है। हर व्यक्ति के जीवन में देहिक अवस्था २५ प्रतिशत और आत्मिक अवस्था ७५ प्रतिशत होती है। जब तक देहिक अवस्था आत्मिक अवस्था के साथ एकरूप नहीं होती है तब तक प्राप्त किसी भी सुख और समाधान के बारे में उस व्यक्ति का मन शांत नहीं होता है। देहिक अवस्था का अहसास देह से होता है, इसलिये देह में जो माध्यम अहसास और ज्ञान कराने वाले हैं, वे आपके आसपास के अन्य व्यक्तियों के जीवन का अनुकरण करने की ओर ही स्वाभाविक रूप से प्रवृत्त होते हैं। इसके कारण यद्यपि हमें परमेश्वर की कृपा से कुछ सुख और समाधान प्राप्त होता है तो भी अन्य व्यक्तियों के जीवन की ओर देखकर, अपने जीवन में ऐहिक सुख की बहुत कमी है ऐसा आभास पैदा होता है। किन्तु ऐसे जीवन में परमेश्वर कृपा की कमी है यह ज्ञान न होने के कारण, देहिक और आत्मिक यह दोनों अवस्थायें एकरूप न होकर ये दोनों अवस्थायें भिन्न-भिन्न विषयों के अनुसार भिन्न-भिन्न आचारविचार निर्माण करती हैं और यद्यपि हमारी अपेक्षा से भी ज्यादा किसी भी चीज की प्राप्ति हो फिर भी आत्मिक यानि मन शांति की अनुभूति नहीं होती। इन दोनों अवस्थाओं का ऐक्य या एकरूपता यह केवल बतलाने से या चर्चा करने से होनेवाली नहीं है, यह एकता लाने के लिये निश्चित ऐसा साधन और गुरु कृपाशीर्वाद की जरूरत होती है। यह अवस्था गुरुकृपाशीर्वाद ने

आप भक्तों को ऊँकार साधना के माध्यम से कर देने पर आपके देहिक और आत्मिक अवस्था की एकरूपता हुई। उसके बाद यह दोनों अवस्थाएं जिन पंचप्राणकोशों के अनुसार (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय) कार्यान्वित होती है, उन कोशों की शुद्धता कर अन्नमय कोश से आनंदमय कोश तक सूचित किये हुये साधना से यह कोश एक दूसरे के साथ जोड़ दिये गये। ऐसा होने से आज की अवस्था में आपने जिस ऊँकार साधना का लाभ लिया है, यह अवस्था यानि हिरण्यगर्भ अवस्था या जो पिण्ड में है वही ब्रह्मांड में भी है यह अवस्था है और इसी अवस्था से आपका काया, वाचा और मन यानि देहिक और आत्मिक अवस्थाएं जो गुरूरूप हुई हैं, वही "सेवक अवस्था" है।

सेवक अवस्था :

आठवें सम्मेलन में आप भक्तों को सेवक अवस्था का लाभ करा दिया है, इस प्रकार बताये जाने पर आप भक्त जागृत होकर अब समाज में कुछ काम करना चाहिये यह सोचने लगे। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि आज समिति के कार्यकेंद्र गोवा, बेलगांव, कराड, पुणे, जलगांव, रत्नागिरी, बीजापुर और दिल्ली में है और इस कार्य के लिये वहां सेवक नियुक्त किये हैं। फिर सम्मेलन के लिये उपस्थित चार सौ सेवकों के लिये इतने कार्यकेंद्र न होने से आपको प्राप्त हुई सेवक अवस्था द्वारा कार्य करना है, यह जो सूचित किया गया है इसका मतलब आप सेवक न समझ पाने से हमें कार्य करने का मौका या आज्ञा कब मिलती है, इसका इन्तजार अनेक सेवकबंधु कर रहे हैं। किन्तु ईश्वरी कार्य के लिये और अधिक कार्यकेंद्रों की निर्मिती करना यह वास्तव में कार्य नहीं कहा जा सकता किन्तु ऐसी कार्य केन्द्रों की संख्या में बढ़ोत्तरी यह भविष्य में कार्य का प्रचार न होकर वह एक तरह का फैलाव होगा। यह महसूस होकर श्रीगुरु ने हर सेवक का परिवार और वह जहां रहता है उनको अपना कार्य केंद्र बनाया है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि अब भविष्य में अन्य व्यक्तियों के कल्याण के लिये केवल भगवंता नारायणा यह प्रार्थना जिसमें कि हम मानवों के कल्याण के लिये सिद्धसिद्धांत पद्धति समाविष्ट है इसका उच्चारण

आप सेवकों ने नित्य रूप से अपने परिवार के साथ करना है। किसी प्रकार का दिव्य साधन कर या अन्य व्यक्तियों को वह करने के लिये मजबूर कर इस समिति के कार्य का प्रचार नहीं करना है।

प्रार्थना सर्वश्रेष्ठ साधन है। संसार में सभी धर्मों में प्रार्थना को जितना महत्व है उतना प्रार्थना से किये जानेवाले विधि को नहीं है। इसका आप सेवकों को ध्यान रखना चाहिये। पूर्व के देहिक अवस्था में उसके आसपास अपने दूषित वलय थे और इसके अतिरिक्त आपके देहिक और आत्मिक अवस्थाओं की एकरूपता आनंदमय कोश के साथ नहीं हुई थी। इस कारण यद्यपि आपको पहले साधन सेवा और कृपाशीर्वाद प्राप्त थे फिर भी वह आपके काया, वाचा और मन को महसूस नहीं होते थे। किन्तु आज आपकी देहिक और आत्मिक अवस्था निर्दोष होकर वह सद्गुरु रूप हुई है ऐसा कहने का अर्थ यह है कि आपका काया, वाचा और मन अब पूर्वजन्म के अनुसार किन्हीं ऋणानुबंधों में जकड़े न होकर वह श्रीसद्गुरु कृपाशीर्वाद के प्रतीक के रूप में उदित हुआ है। यह बात आप भक्तों को ध्यान में रखनी चाहिये।

आज संसार में हर धर्म में धर्मगुरु होते हैं। वह जो प्रार्थना कहते हैं वह हम सुनते हैं और भक्तिभाव से उसपर श्रद्धा रखकर उनके मुंह से निकला हुआ शब्द परमेश्वर का कृपाशीर्वाद प्राप्त करने का एक माध्यम है, इस प्रकार श्रद्धा रखकर हम कोई विधि करते हैं। मिसाल के तौर पर ग्यारह वैदिकों ने ग्यारह बार रुद्रावर्तन किया तो भगवान को लघुरूद्र का अभिषेक होता है, इस प्रकार की हमारी श्रद्धा है और इस श्रद्धा से आज सब जगह ऐसे विधि होते रहते हैं। मगर आप गलती से भी इस प्रकार का विचार नहीं करते हैं कि हमारे लिये जो व्यक्ति प्रार्थना माध्यम से भगवान को पुकार रही है उस व्यक्ति का देहिक और आत्मिक विकास कितना हुआ है? इस प्रकार के व्यक्ति देहिक और आत्मिक अवस्था से विकसित हुये नहीं होते हैं। उनकी आपके लिये प्रार्थना कराने की आस्था यह केवल एक उदर निर्वाह का साधन होता है इस कारण आज अनेक वर्षों से हम लोग

यद्यपि इस प्रकार की प्रार्थना कर, विधि कर रहे हैं फिर भी अपेक्षित फल प्राप्ति नहीं होती है।

गुरुकृपाशीर्वाद से जब देहिक और आत्मिक अवस्था का विकास होकर प्राप्त जीवन गुरुमय होता है तब त्रिभुवन में वास करने वाला परमेश्वर आपकी पुकार को साकार करने में हमेशा उत्सुक रहता है। ऐसी सिद्धसाधन पद्धति का विचार कर श्रीगुरु ने आप भक्तों को नित्यनियम से कहने के लिये जो प्रार्थना दी है, वह प्रार्थना आपके परिवार के हर व्यक्ति के वाणी माध्यम से जब उच्चारित की जायेगी तब उन उच्चारणों के स्पंदन या ध्वनि आसपास के वातावरण को शुद्ध करने का कार्य करेंगे। आज संसार में जो दुख और अशांति फैली हुई है उसकी जड़ हर व्यक्ति के जीवन विषयक अज्ञान में है। इस अज्ञान के कारण हर व्यक्ति केवल ऐहिक विषय के अनुसार जीवन जीने का विचार कर रहा है। इस प्रकार के विचार जिन लोगों में पैदा होते हैं वे विचार उनके जरिये वातावरण में फैलकर कुदरती वातावरण की शुद्धता जो कि हम मानवों को सुख और शांति के लिये अवश्य होती है उस वातावरण की शुद्धता आज दूषित हुई है और यद्यपि हम किसी भी देवदेवताओं के मार्ग का अवलंबन करते हैं फिर भी हमें सुख, शांति और समाधान प्राप्त होना असंभव होता है।

सब से श्रेष्ठ साधना, या इष्टजीवन का विकास करने का माध्यम जिससे कि काया, वाचा और मन एकरूप होना चाहिये वह साधन प्रार्थना है। प्रार्थना का माध्यम यद्यपि विचार करने पर बहुत छोटा सा मालूम होता है फिर भी उसका कार्य महान है यह ध्यान में रखना आवश्यक है। आज हम भक्तों की दैहिक और आत्मिक शक्ति गुरुकृपा से एक रूप हुई है और जो प्रार्थना हमें करनी है, उस प्रार्थना से गुरुकृपाशीर्वाद से जो साध्य सिद्धता हम मानवों के कल्याण के लिये है उसका अंतर्भाव आपको नित्य पठन के लिये सूचित की गयी प्रार्थना में होने के कारण इस प्रार्थना माध्यम से बहुजन समाज का कल्याण बहुत तत्परता से होने वाला है।

पूर्व परंपरानुसार अद्ययावत समाज में जिन धार्मिक विधियों को इष्टकार्य और इष्टफल प्राप्ति के लिये किया जाता है, उसमें वेदमंत्रों का आधार लिया जाता है। यह मंत्र भी प्रार्थना ही है। किन्तु केवल प्रार्थना से इष्टफल की प्राप्ति होगी या नहीं, ऐसा संदेह आम लोगों में निर्माण होने के कारण उन मंत्रों के साथ कोई विधि करना वेदकाल से सूचित किया गया है। यानि यद्यपि हम कोई वेदमंत्र श्रवण करते हैं फिर भी इस मंत्रोच्चारण के अनुसार देह से कुछ क्रिया किये बिना उस मंत्र पर हमारी श्रद्धा दृढ़ नहीं होती है। इसलिये प्रत्येक वेदमंत्र को विधि का आधार देकर विधि विधान करने की धार्मिक विधि प्रचलित समाज में रूढ़ हुई है। आज घर-घर में और देश भर में पारिवारिक शांति से लेकर विश्वशांति तक इन विधियों का प्रसार हो रहा है। किन्तु वेदमंत्र अपोरूषेय है और जिन व्यक्ति माध्यम से इन मंत्रों का उद्घोष किया जा रहा है उन व्यक्तियों ने यह मंत्र सिद्ध किये हैं या नहीं, इसका विचार न होने से केवल मंत्र का पठन किया है इसलिये उस पठन से कुछ साध्य होगा ऐसा नहीं है। इस प्रकार आज समाज में रूढ़ हुई जो परंपरा है इसके पीछे हर एक व्यक्ति का सद्हेतु यह है कि अनजाने में परमेश्वर कृपा से जो कुछ प्राप्त हुआ है उससे सुखी और समाधानी न होकर, संसार में अन्य व्यक्यिों को अपने से जो अधिक सुख प्राप्त हुआ है ऐसे सुख की प्राप्ति हमें भी हो। इसलिये वैदिक काल से सूचित किये गये सूक्तों का (प्रार्थना) प्रयोग धार्मिक विधि के रूप में किया जा रहा है।

इस प्रकार के विधि अपने सदियों से हो रहे हैं फिर भी आज हम मानवों के जीवन में सुख, शांति और समाधान का लाभ नहीं हो रहा है इसका मूल कारण यह है कि प्राप्त जीवन जिस देहिक माध्यम के द्वारा व्यतीत करना है उस देहिक माध्यम का यथोचित विकास न होने से हम लोग जो देवतार्जन और धार्मिक विधि कर रहे हैं उनका फल प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसलिये जब आप गुरुमार्ग की ओर जाते हैं तब आप अपना दुख गुरुमाध्यम को कथन कर उनके कृपाशीर्वाद से उसका निवारण हो यह अपेक्षा रखते हैं। किन्तु गुरुमार्ग में जिसे

दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है उसे मिलने आये हुये व्यक्ति के जीवन में जो खामियां है उनकी अपेक्षा, व्यतीत किये जाने वाले जीवन की देहिक माध्यम की खामियां दिखाई देती हैं। ऐसे समय गुरु जो कृपाशीर्वाद देते हैं और हम उसे स्वीकार करते हैं उसमें गुरु और भक्त के विचारों की दिशा परस्पर विरोधी होती है। गुरु आशीर्वाद यह देहिक माध्यम में जो खामियां है उनकी (अविकसितता) आपूर्ति हो और देह का विकास हो इस विचार से गुरु द्वारा कृपावंत होकर दिया होता है। किन्तु कृपाशीर्वाद के लिये आये हुये भक्त के विचार ऐहिक सुख से लालायित होने से उस भक्त के कल्याण के लिये श्रीगुरु ने अपने सामर्थ्य का कृपाशीर्वाद के रूप में किस तरह इस्तेमाल किया है, इसका ज्ञान भक्त को न होने से कई साल तक गुरुमार्ग में रहकर भी गुरुकार्य की या सामर्थ्य की पहचान हम भक्त लोगों को नहीं होती है।

कई व्यक्ति गुरुमार्गी न होकर अपने कुल की जो इष्ट देवता हैं उनके लिये कुछ धार्मिक विधि कर इन खामियों की पूर्ति करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे वक्त जिस देहिक माध्यम से कृपाशीर्वाद का स्वीकार करना है वह कितना अविकसित है इसका ज्ञान नहीं होता है। जिस व्यक्ति माध्यम से इन विधियों को देवताओं के लिये किया जाता है, उसके भी देहिक माध्यम में स्थित अविकसितता का ज्ञान नहीं होता है। किन्तु गुरुमाध्यम यह ईश्वरी आज्ञानुसार मानव रूप धारण कर ईश्वरी कार्य करने के लिये इस संसार में जन्म लेता है। गुरु माध्यम का यह जन्म मानव रूप में होने से और मिलने वाला व्यक्ति भी मानव होता है इस कारण श्रीगुरु को उस व्यक्ति को सुख, शांति आर समाधान प्राप्त करने में क्या कमी है इसका प्रथमतः ज्ञान होता है। वे जब कृपावंत होकर कुछ सेवा बतलाते हैं या कृपाप्रसाद देते हैं वह प्रसाद आये हुये भक्तों के जीवन में खामियों की पूर्ति करने के लिये न होकर सुख प्राप्ति के लिये देहिक माध्यम में जो कोई खामियां है उसकी पूर्ति के लिये होती है। किन्तु इस प्रकार कृपाशीर्वाद के लिये आये हुये व्यक्ति का प्रधान विषय ऐहिक सुख

की प्राप्ति करने का होने से, श्रीगुरु के द्वारा दिये गये कृपाशीर्वाद की प्राप्ति कर लेने का कर्तव्य उस व्यक्ति से न होकर उलटे उस कृपाशीर्वाद की उससे अवहेलना ही होती है।

गुरुकृपा से आज हम लोग सेवक अवस्था के माध्यम बने हुये हैं यानि हमें भी नियुक्त सेवक जैसा कार्य करने का हक है इस प्रकार का भेदभाव यद्यपि आप मन में रखेंगे तो ऊपर जिस अवस्था का स्पष्टीकरण आपको किया है उस अवस्था का लाभ आपको यह अवस्था प्राप्त होकर भी नहीं मिलेगा। कार्य के लिये आपका समावेश इस कार्य में हुआ है इसका मतलब केंद्र प्रमुख जैसा ही काम हमें करना या किसी को निराकरण सूचित करने के लिये हम पात्र हुये हैं ऐसा नहीं है। आज आपको प्राप्त हुई यह अवस्था गुरुकृपाशीर्वाद की भेंट है और वह इस मार्ग का एक बहुमूल्य गहना है। इस गहने को जतन करने की जिम्मेदारी यानि प्रथमतः आपको अपने बारे में जो अहंभाव है वह कम कर उस जगह ममता, माया, अन्य व्यक्तियों के प्रति प्रेम और आस्था निर्माण होनी चाहिये। नियुक्त सेवक यह उच्च श्रेणी का है और यह अवस्था प्राप्त सेवक कम दर्जे का है ऐसा भेदभाव आपको कभी भी पैदा नहीं करना चाहिये।

आज जो अवस्था गुरुकृपा से प्राप्त हुई है वह बाल्य अवस्था है। वह सुदृढ़ और विश्वव्यापी करने के कर्तव्य की ओर अधिक ध्यान देकर अपने नाम को बड़प्पन कैसे मिलेगा इस विषय को मैंने गत कई सालों से दूर रखा है, उसी कर्तव्य का अनुकरण आप भक्तों से होना चाहिये। गुरुकृपा से जिन सेवकों की कार्य के लिये नियुक्ति हुई है इनके संरक्षण के लिये श्रीगुरु हमेशा तत्पर रहते हैं। जो अवस्था नियुक्त सेवकों को प्राप्त हुई है वहीं अवस्था हमें प्राप्त हुई है, यह सोचकर आप यद्यपि गुरुआज्ञा का आस्था से विचार न कर "कामकाज" यानि अड़चनों से त्रस्त हुये व्यक्तियों के जीवन कर्मों में दखल देंगे तो जो अवस्था गुरुकृपा से प्राप्त हुई है, वह बाल्यावस्था में होने के कारण और जब तक वह सुदृढ़ नहीं होती है तब तक कर्म के अनुसार अड़चनों से त्रस्त व्यक्तियों के जीवन कर्मों में दखल देने से प्राप्त

अवस्था को भी खोना पड़ेगा यह ज्ञान और दक्षता हरेक सेवक को ध्यान में रखनी चाहिये। गत अनेक सालों में जब आप भक्त प्रथमतः अड़चनों को दूर करने के लिये आये तब मुझे भी आप भक्तों के जीवन के प्रतिकूल कर्मों को अनुकूल कराकर विमोचनादि विधि करने पड़े। इस प्रकार आपके कर्मों की प्रतिकूलता को अनुकूल बनाने में धारण किये हुए दोषों का विमोचन करने के लिये जिन शारीरिक पीड़ाओं को और यातनाओं को मुझे सहना पड़ा उसका वर्णन मैं यहां करना नहीं चाहता। ईश्वर कार्य के लिये मेरा जन्म हुआ है। मेरी काया, वाचा और मन यद्यपि संपूर्ण गुरुरूप हुआ था फिर भी प्राप्त हुई गुरुकृपाशीर्वाद की धरोहर भक्तों के जीवन के प्रतिकूल कर्मों के या दोषों के निवारण के लिये किस हद तक खर्च करनी पड़ेगी इसका अंदाज नहीं लगता। आप भक्तों का जन्म ईश्वरीय अवतार कार्य के लिये नहीं हुआ है। इस प्रकार का जन्म भविष्य में आयेगा। किन्तु आज प्राप्त हुये जन्म का सार्थक कर प्राप्त हुई यह कृपा अगले जन्म के लिये धरोहर समझकर जतन करनी चाहिये।

ऐसे समय में समाज में नाम कमाने के लोभ से आसक्ति से, प्राप्त अवस्था में आप अन्य व्यक्तियों के जीवन में दखल देना शुरू करेंगे तो वह लोक कल्याण न होकर, गुरु ने अतिपरिश्रम से जिस कृपा का लाभ आपको और आपके परिवार को करा दिया है उस बहुमूल्य आशीर्वाद को आप खो बैठेंगे। यह अहसास आप सेवकों को आज इसलिये कर दिया है कि मैं पहले जब कामकाज और निराकरण करता था उस वक्त मुझे कई ऐसे व्यक्ति मिले कि जिन व्यक्तियों में अनेक कुलदेवताओं का संचार होता था और उन पर कृपा थी और उनके मुंह से निकला प्रत्येक शब्द कार्यान्वित होता था। इस प्रकार उनका नाम लौकिक होने से अनेक व्यक्ति और परिवार के सदस्य जो उनके अपने खानदान के दोष और बाधाओं से त्रस्त थे वे निराकरण के लिये आने लगे। किन्तु उन साधक अवस्था के व्यक्ति को उनके पास आने वाले व्यक्तियों के दोष कितने प्रखर थे इसका अंदाज न होने के कारण उन साधक अवस्था के व्यक्तियों के जीवन में प्राप्त

हुई कृपा, यह दोष अनजाने में धारणकर्ती होकर, भविष्य में इन व्यक्तियों के वाणी से निकला हुआ शब्द अन्य लोगों का कल्याण करने में असमर्थ तो हुआ ही लेकिन उसी के साथ उनके परिवार के जीवन की सुख, शांति और समाधान को भी वे खो बैठे।

यह अनुभव सिद्धता आज आप भक्तों को खासतौर से निवेदन करने का कारण यह है कि जो अवस्था आप भक्तों को आज प्राप्त हुई है वह यदि आपके ज्ञान अज्ञानवश आप खो बैठेंगे तो फिर से इस अवस्था की पुनश्च प्राप्ति अगले जन्म में कब होगी और उसके लिये सही गुरु माध्यम आपको मिलेगा या नहीं यह कोई भी नहीं बता सकता। इसलिये आप भक्तों का इस कार्य के लिये आद्यकर्तव्य यह है कि जितनी कुछ गुरुआज्ञा होगी उतना ही कार्य या कर्तव्य आप भक्तों को करना चाहिये। अन्य व्यक्तियों के कल्याण के लिये आपके जीवन का सदुपयोग हो यह जो आपकी इच्छा है, उसके लिये आपने और आपके परिवार के सदस्यों ने सुबह और शाम "हे भगवंता नारायण. ...... प्रार्थना जिसमें कि गत तीस वर्षो में गुरुकृपा से मुझे प्राप्त सभी सिद्धसाधन पद्धति का समावेश है, यह नित्यनियम से करनी चाहिये। इस प्रार्थना से पैदा होने वाले स्पंदन (Vibrations) वातावरण में अंकित होकर लोक कल्याण के लिये दुनियाभर में प्रवाहित होगी। इसके विपरीत नियुक्त सेवकों से होनेवाला निराकरण ही यदि आप कार्य समझते हो तो ऐसी धारणा की सीमायें यह है कि निराकरण के वक्त आपके सामने जो व्यक्ति उपस्थित है सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों को आपको प्राप्त हुई कृपा का लाभ होने वाला है। इसके बदले में आप ऊपर निर्दिष्ट प्रार्थना यदि करेंगे तो यह प्रार्थना एक व्यक्ति के लिये न होकर विश्व के सभी मानवों के कल्याण के लिये होगी और उस प्रार्थना से आप अपने वाणी माध्यम से प्राप्त हुआ कृपाशीर्वाद प्रवाहित करेंगे।

यदाकदा किसी को इस प्रार्थना का उद्‌देश्य अनुभव करना हो तो आपके जीवन में जो आपके इष्टमित्र, रिश्तेदार, जो परिवार वाले हैं जिनको प्राप्त जीवन में अड़चने, दुख तथा अशांति भुगतनी पड़

रही है, ऐसे व्यक्तियों को कोई भी निराकरण सूचित न कर, उन परिवार के नाम का उच्चारण कर उन्हें परमेश्वर सुख, शांति और समाधान दे इसलिये "हे भगवंता नारायण ...." यह प्रार्थना एक सप्ताह या पांच सप्ताह तक करें और उसका लाभ ऐसे परिचित व्यक्तियों को क्या हुआ इसका अनुमान एक अनुभव के रूप में आजमाना चाहिये। इससे आप भक्तों को इस कार्य के आरंभ में जगद्गुरू श्री साईनाथ महाराज द्वारा सूचित की गयी प्रार्थना कितनी विश्वव्यापी है इसकी प्रतीति होगी। इस प्रार्थना में किन्ही भी देवदेवताओं का, धर्म का, जातिबांधवों का उल्लेख न होने से विश्व में विश्वबंधुत्व की यह ध रोहर, जिनको गुरूकृपाशीर्वाद का लाभ हुआ है, उनके सिद्ध वाणी से घर-घर में जब उच्चारित की जायेगी तो उसकी प्रतिध्वनि त्रिभुवन में गूँजकर इस संसार के सभी मानवों को लाभदायक होगा यह निश्चित है। इस प्रार्थना का उच्चारण करने के लिये पूजा, अर्जना, व्रत, मिन्नतें आदि विधियों की जरूरत नहीं है। दुनिया में दुखी मानवों के जीवन के प्रति आदर और पूज्यभाव मन में पैदा कर यह प्रार्थना जो कि गुरु कृपाशीर्वाद है उसमें आपके मन के भावों का समावेश यदि करेंगे तो मन के सामर्थ्य से इस त्रिभुवन के दुख का कैसा निवारण होता है इसकी अनुभूति आपको होगी।

आज आप जो कुछ देवतार्जन या धर्म के अनुसार धार्मिक विधि करते हैं, इसे आपके व्यक्तिगत स्वार्थ के अलावा अन्य व्यक्तियों के कल्याण के लिये आप कुछ कर रहे हैं, ऐसा अनुभव नहीं होता है इसकी अपेक्षा प्रार्थना में आपका, परिवार का और इस संसार में अन्य दुखी लोगों का सामावेश कर, जब प्रार्थना द्वारा आप प्राप्त कृपाशीर्वाद अन्य व्यक्तियों के लिये खर्च करते हैं, तब सद्गुरु को धन्यता महसूस होती है और वह आप पर कृपाशीर्वाद की और भी वर्षा करते हैं। यह आपको अनजाने में प्राप्त होनेवाली कृपाशीर्वाद की धरोहर है। इसके विपरीत अनेक सालों तक जपजाप साधन मार्ग का इस्तेमाल करने पर भी आप कृपावंत नहीं होते हैं। इसलिये उस मार्गों का इस्तेमाल न करे, यह आपको एक विनम्र सूचना है। आप भक्तों के कल्याण

के लिये और भविष्य के लिये इसके बाद कोई नया साधन या सिद्ध साधना आपको सूचित करने की जरूरत नहीं है। मानव जन्म को सार्थक करने के लिये जिन आवश्यक साधनों का इस्तेमाल करना था उन सब साधनों को श्रीसद्गुरु ने सिद्ध कर आपके हाथों सौंप दिया है इनका योग्य विचार से और योग्य कारण के लिये आप इस्तेमाल करे इतना ही कर्तव्य भविष्य में आपके लिये शेष है। यह कर्त्तव्य पूर्ति आप भक्तों द्वारा मनोभाव से करने से ही आप जो "श्रीसद्गुरु साईनाथ महाराज की जय" का उद्घोष करते हैं, उसका सही मतलब स्पष्ट होगा। उस उद्घोष का मतलब यह है कि इस अलौकिक पुरुष का जो कार्य है, उस कार्य का लाभ जिन भक्तों को हुआ, उनके वाणी से इस अवतार कार्य का जयजयकार इस संसार के अंत तक होता रहे यह श्री जगद्गुरु साईनाथ महाराज के चरणों में प्रार्थना है।

ॐ कार साधना

इस संसार में बहुत से लोग देवदैविक उपासना या गुरू परंपरा के मार्ग का अवलंब सालों तक करते रहते हैं। लेकिन इस मार्ग में जो कुछ निश्चित रूप से प्राप्त करना है, उसके बारे में भलीभांति पहचान साधक को मार्गदर्शन के अभाव के कारण न होने से इस मार्ग में अनेक वर्षो तक जीवन का बहुमूल्य समय व्यतीत करने पर भी इससे कौन सी अवस्था प्राप्त हुई इसका व्यक्तिगत ज्ञान नहीं होता है और उसका लाभ अन्य व्यक्तियों को हो यह सूज्ञ विचार यद्यपि उसने किया भी तो इन किये हुये साधनों की अनुभूति न तो शब्दों में व्यक्त की जा सकती है ना ही प्रत्यक्ष कृति से दर्शायी जा सकती है। इसका कारण यह है कि साधक को साधन माध्यम से जो कुछ प्राप्त करना होता है वह प्राप्त अवस्था जिन काया, वाचा और मन के माध्यमों द्वारा करनी होती है उन माध्यमों का उनके प्राथमिक अवस्था में उचित विकास होना जरूरी है। ऐसी काया, वाचा और मन की विकसित अवस्था जब साधक अपने नित्य साधना से प्राप्त कर लेता है, तब उस साधक को क्रमशः साधक-सिद्ध-साध्य अवस्था की प्राप्ति करने का कर्तव्य करना होता है।

प्राप्त हुये इस जीवन में कर्मकारण के अनुसार निर्माण हुई अड़चनों का निवारण करने के लिये आप भक्त किसी न किसी प्रकार का देवदेवतार्जन कर या गुरुमार्गदर्शन का अवलंब कर प्राप्त जीवन में पैदा हुई अड़चनों का निवारण करते समय कुछ साधन सेवा का इस्तेमाल करते हैं। यद्यपि इस साधन सेवा का इस्तेमाल अड़चनों के निवारण के लिये किया जाता हैं तो भी इस साधन मार्ग से अड़चनों का निवारण होने से पूर्व आपकी काया, वाचा और मन जिन दोषों के हितसंबंध और ऋणनुबंध से हितसंबंधित है, इन दोषों का विमोचन किये बिना जिन साधन सेवा को आपने अपनाया है उससे काया, वाचा और मन से आप एकरूप नहीं होते हैं, इस कारण अपनाये हुये साधन और

उसकी अनुभूति आपको नहीं होती है। किन्तु गुरुकृपा से जब दोषों और ऋणानुबंधो के काया, वाचा और मन के साथ होने वाले हितसंबंध विमोचित यानि अनुकूल होते हैं, उस वक्त नित्य सेवा में स्वाभाविक रूप से काया, वाचा और मन एकरूप होने की क्रिया शुरु होती है। यानि काया, वाचा और मन हमारी साधना को धारण करना शुरु करते हैं। यह अवस्था जिस गुरुकृपाशीर्वाद के माध्यम से प्राप्त होती है उस अवस्था को पारमार्थिक स्थिति की साधक अवस्था कहते हैं। केवल मार्गदर्शन के अनुसार जापों की संख्या बढ़ाना और साधना के नाम पर भगवान के सामने दो-दो घंटे बैठना इसका मतलब साधना प्राप्त हुई यह नही होता है।

ऐसी साधक अवस्था का प्रारंभ होने की क्रिया प्राप्त होने से पूर्व गुरुमार्गदर्शन के अनुसार जो दीक्षांत विधि या विमोचनादि विधि होना जरूरी होता है उसका एहसास यद्यपि गुरुमार्गदर्शन के अनुसार मुश्किल में आये हुये भक्तभाविकों को हुआ हो, फिर भी दृश्य मानव रूप गुरु में परमेश्वर का अस्तित्व है ऐसी श्रद्धा का विकास न होने से जीवन के आरंभ में जो विधि करना अत्यावश्यक होते हैं उनकी तरफ ध्यान न देकर आप भक्त अज्ञानवश रूढ़ियों और परंपराओं का देवदेवतार्जन मार्ग अपनाकर प्राप्त हुये इस बहुमूल्य जीवन का दुरुपयोग करते हैं। इसकी वजह से यद्यपि श्रीसद्गुरु ने कृपावान् होकर आपके जीवन को अभयदान दिया होता है फिर भी उस कृपाशीर्वाद को धारण करने योग्य साधन इस काया, वाचा और मन को प्राप्त नहीं होता है। इसलिये आप अपनी मुश्किलों के बारे में ज्यादा सोचविचार और विस्तार न कर, प्राप्त जीवन में जिन दोषों की वजह से यह अड़चनें पैदा हुई हैं उन दोषों का गुरुकृपाशीर्वाद से विमोचन करने के लिये जो साधन आपको सुझाये गये हैं उन साधनों के साथ काया, वाचा और मन से हम कैसे अधिक एकरूप हो सकते हैं ऐसा लगाव मन को निरंतर बनाये रखने का प्रयास करना चाहिये।

गुरुमार्गदर्शन के अनुसार विमोचनादि विधि संपन्न होने के बाद आप भक्तों को साधक अवस्था प्राप्त होती है। इस प्रकार की साधक अवस्था

की प्राप्ति होने के लिये हितसंबंधित दोषों से और ऋणानुबंधों से विमोचित हुआ, काया, वाचा और मन जब गुरुमार्गदर्शन के साधना के साथ एकरूप होता है और उसके लिये जो नित्य का साधना सूचित किया होता है, यह साधना दीर्घकाल तक यद्यपि साधक अवस्था में करना पड़े, फिर भी अगली अवस्था यानि सिद्ध अवस्था प्राप्त होने के लिए अन्य किसी साधना करने का प्रयन्त आपने अपने स्वयं के विचारों से आचरण में नहीं लाने हैं क्योंकि गुरुकृपा से साधक अवस्था का लाभ आप भक्तों को अनजाने में हुआ है, यह बात यद्यपि सही है फिरभी प्राप्त हुई साधक अवस्था का एहसास आप भक्तों को काया, वाचा और मन से हुआ है यह कहने के बाद उसी अवस्था में परिपूर्ण और विकसित होने की जो जिम्मेदारी आप भक्तों पर है, उसकी तरफ ध्यान न देकर यदि आप भक्तों ने किसी अन्य प्रकार के साधन सेवा का अवलंब कर व्यक्तिशः किसी विषय के अनुसार कार्य करना शुरू किया तो साधक अवस्था के बाद जो सिद्ध अवस्था होती है उसकी प्राप्ति होने के लिये शायद यह जन्म भी पूरा नहीं पड़ेगा।

साधना द्वारा जब आपको साधक अवस्था का लाभ प्राप्त करना होता है, ऐसे वक्त साधक को प्रथमतः यह महत्वपूर्ण जिम्मेदारी ध्यान में रखनी चाहिये कि जो साधन हमने अपनाया है उस साधन में हमारी काया, वाचा और मन पूर्णतया समाविष्ट होने के लिये लगने वाले विलंब का पूरी आस्था से विचार कर, जो साधन अपनाया है उसी साधना द्वारा ऐहिक जीवन के लिये हमें किन-किन चीजों की प्राप्ति करनी है इनके बारे में विषयानुरूप विचार अलग रखना चाहिये। उसी प्रकार कर रहे साधना से अभी तक कोई अनुभूति यानि मनः शंति नहीं मिल रही है इसलिये कुछ काल तक किया हुआ साधन छोड़कर नये साधन को अपनाना नहीं चाहियें क्योंकि साधना से जो मनशांति आप भक्तों को साध्य करनी है उस मनशांति की अनुभूति जब तक आप भक्तो का काया वाचा मन विषय रूप है तब तक नही होगी। इसलिये साधक अवस्था की प्राप्ति देवदैविक या गुरुमार्ग में बहुत महत्व की जिम्मेदारी है। इस अवस्था में अन्य विषयों में यद्यपि यह जीवन

भिन्न-भिन्न इच्छायें और अपेक्षायें साकार होने के मार्ग का विचार करता है फिर भी अंगीकृत साधना को काया, वाचा और मन से एकरूप कर आप उसको योग्य आकार देंगे तो ही अंगीकृत साधना से मन:शांति प्राप्त करने का उद्देश्य साकार होगा।

इसका अधिक स्पष्ट अर्थ यह है कि आप भक्तों को प्राप्त जीवन में इतरेजनों को जिस प्रकार का सुख और समाधान प्राप्त है उस प्रकार के सुख के लिये इच्छा और अपेक्षा नहीं रखनी चाहिये ऐसा नहीं, किन्तु जो इच्छा और अपेक्षा आप भक्तों के जीवन में साकार हो ऐसी आपकी इच्छा है उन इच्छाओं के बारे में अपेक्षा आप अज्ञानवश साधन मार्ग में करते है, क्योंकि इतरेजनों को प्राप्त हुआ सुख आप देखते हैं या अनुभव करते हैं उसी प्रकार के सुख की अपेक्षा आपने अनुभव किये हुये अन्य व्यक्तियों के सुख की ओर देखकर आप करते हैं। किन्तु इस अवस्था में यद्यपि आप गुरुभक्त सूचित किये गये साधनसेवा के साथ एकनिष्ठ रहेंगे तो ऐसे वक्त में आपको अनजाने में जो लाभ होता है उसका विचार आपको पूरी आस्था से करना चाहिये।

आप अपनी रोजमर्रा की जिंदगी बसर करते हैं तब आप काया, वाचा और मन से जो आचार-विचार विषय के अनुसार, कारण के अनुसार, या कार्य के अनुसार करते हैं यह क्रिया अनजाने में आपके देहिक माध्यम द्वारा होती है, और ऐसे वक्त यह क्रिया होने के लिये आपके जीवन का बहुमूल्य कर्म खर्च होता है। विमोचनादि विधि होने के बाद आपको जिस कर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करना है वह कर्म योग्य कारण के लिये खर्च नहीं होना चाहिये। इसका मुख्य कारण यह है कि साधक अवस्था में साधन के अनुसार आपका काया, वाचा और मन जो कर्म के और ऋणानुबंधों के दोषों की वजह से दूषित था वह दोषों से मुक्त हुआ है और इसी कारण आज आपको साधक अवस्था प्राप्त हुई है। उसी प्राकर प्राप्त जीवन का जो कर्म है वह भी अनुकूल हुआ है। अब अनुकूल हुआ यह कर्म आगे सिद्ध व साध्य अवस्था के लिये अत्यावश्यक होता है। इसलिये यह कर्म

तथा काया, वाचा और मन जो साधक अवस्था में गुरुकृपाशीर्वाद से प्राप्त जीवन की सार्थकता करने के लिये पोषक हुआ है उस काया, वाचा मन को और कर्म को आगे आनेवाली अवस्थाओं का लाभ करा देने का कर्तव्य आपको करना है। इसका अर्थ यह है कि आप भक्तों के जीवन परिसर में सुख की जो अपेक्षा होती है उसकी पूर्ति होने के लिये, आप भक्त आपको दी हुई साधना और जीवन को पोषक हुआ कर्म यदि सुख प्राप्ति के लिये खर्च करोगे तो साधक अवस्था के बाद सिद्ध और साध्य अवस्था प्राप्त होने की सिद्धता, प्राप्त हुई कारणदीक्षा और आपका देहिक माध्यम इन दोनों में होकर भी आप भक्त वह प्राप्त नहीं कर पायेंगे।

आप भक्तों ने अड़चनों के कारण सुख और शांति की खोज में गुरुमार्ग को अपनाया है। उससे पहले आप के प्राप्त जीवन में कर्म के अनुसार जुड़े हुये दोष जीवन में दुख और अशांति पैदा करते थे। ऐसे दोषों का निवारण होकर, प्राप्त जीवन में प्राप्त कर्तव्य के लिये होने वाले कर्म यद्यपि दोष रहित हुये, फिर भी पूर्वकाल के अनेक जन्मों में प्रत्येक जन्म के आयु में जो भिन्न-भिन्न विषय आचार और विचार में आये और गये, ऐसे आचारविचारों के अनुसार आनेवाले विषय, आज अंशतः प्राप्त जीवन के कर्मों में अस्तित्व में होते हैं। इन विषयों के अनुसार आपके अनजाने में यद्यपि आप साध्य अवस्था प्राप्त होते हुये भी अन्य व्यक्तियों को प्राप्त सुख की अपेक्षा रखते हैं और आप जो नित्य साधना करते हैं उसका हितसंबंध यद्यपि इन अंशमात्र विचारों के साथ होता है तो यह अंशमात्र विचार, साधना के अनुसार प्रखर होने की जो संभावना है उसको टालना यह साधक अवस्था के भक्तों का आद्य कर्तव्य है। इसलिये आसान और हितकारक मार्ग यह है कि अन्य व्यक्तियों के सुख-शांति-समाधान के लिये इच्छा और अपेक्षा का विचार न कर, "मैं जो साधना कर रहा हूं उससे कृतज्ञ होने के बाद गुरुकृपा से अनजाने में ही मुझे अपेक्षित सुख प्राप्त होगा" यह आत्मविश्वास आप में होना चाहिये।

गुरुमार्गदर्शन के बारे में इस प्रकार का अचल विश्वास आपमें निर्माण करने का मुख्य कर्तव्य इसलिये विचार में लाना है कि हम

जिसे सिद्ध अवस्था कहते हैं उस अवस्था में आप भक्तों को अपने जीवन का कर्म अन्य विषयों के अधीन न कर, जीवन में अपेक्षित सुख-शांति और समाधान के अभाव की पूर्ति करने के लिये, कर रहे साधना और गुरुकृपा से अनुकूल हुआ कर्म खर्च नहीं करना चाहिये। क्योंकि जो कर्म आज आपको अनुकूल हुआ है वह कर्म अंत तक और भावी जन्म का इन्तजाम करने के लिये विचार में लेना जरूरी है। इसलिये प्राप्त जीवन के कर्मो को यदि आप भक्त, "गुरुकृपा" यह प्रधान विषय दिलायेंगे तो यह जीवन में प्राप्त हुई सुखसंपत्ति का लाभ भी आप सुख-शांति और समाधान से लेंगे। इतना ही नहीं, तो जीवन में अकस्मात् आये हुये संकटों से जब संकटमुक्त होने का समय आयेगा, तब इस प्रकार गुरुरूप किये हुये कर्मो का लाभ होकर, आप भक्त वह संकट पार कर सकेंगे। इसी प्रकार जो कर्म आपके प्राप्त जीवन में गुरुरूप होगा, वह कर्म भावी जन्म में जीवन के आरंभ से ही गुरुमार्ग में सहभागी होने की क्रिया भविष्य में प्राप्त होनेवाले काया, वाचा और मन को आसानी से प्राप्त करा देगा। इस प्रकार प्राप्त होनेवाली यह गुरुकृपा प्राप्त हुये इस जन्म को सार्थक करने का कारण प्राप्त करा देनेवाली तो होगी ही इतना ही नहीं तो जो कर्म गुरुकृपा विषय रूप हुआ है, ऐसा कर्म, सिद्ध अवस्था में अन्य व्यक्तियों के कल्याण के लिये गुरुकृपाशीर्वाद के रूप में इस्तेमाल करने का परोपकार, इसी जन्म साधन सेवा न होते हुये भी आप कर सकेंगे।

पूर्व काल में आपके घराने की अनादि रूढियाँ और परंपराएं आप अनुकरण की दृष्टि से करते थे और उस विधि को आप ज्ञान अज्ञानवश कुलधर्म तथा कुलाचार कहते थे। इसके अलावा उपवास, जाप और व्रत आदि मार्ग को भी अपनाते थे, किन्तु आप भक्तों को कारणदीक्षा का लाभ करा देने के बाद, उस दीक्षा के अनुसार आप भक्तों को जो नित्य साधनसेवा सूचित की गयी है, उस सेवा का लाभ आपको लेना चाहिये। यानि इस बात को आग्रह से सूचित करने के पीछे महत्वपूर्ण कारण क्या है, यह भी आप भक्तों को सूझबूझ से विचार में लेना चाहिये।

इस साधक अवस्था की निश्चितता जिस वक्त आप अनुभव करेंगे, उसी क्षण से आपने अंगीकृत किया हुआ साधन सिद्ध होना शुरू होगा।

आप भक्तों को प्राप्त जीवन में जिन देवादिक और गुरुकृपाशीर्वाद का लाभ होने से सुख, शांति और समाधान प्राप्त करना है, इस प्रकार की अवस्था कृपाशीर्वाद से प्राप्त होने में आप भक्त असमर्थ थे। इसका कारण आप भक्तों के हित के लिये गुरुकृपाशीर्वाद का लाभ जो कि दीक्षांत विधि से होता है, उस दीक्षा लेने का कर्तव्य विचार में योग्य तरीके से न लेने की वजह से, प्राप्त जीवन में हत्या अत्यावश्यक कृपाशीर्वाद की प्राप्ति के लिये आप भक्तों को विविध प्रकार के विधि मार्ग अपनाने पड़ते थे। इस प्रकार के देवदेवताओं के लिये किये जाने वाले विधियों की शास्त्रशुद्ध पहचान आप भक्तों को न होने से ये विधि उन इष्ट देवदेवताओं के भक्तों से या पूजक लोगों के जरिये करवाने पड़ते थे। इस प्रकार विधि करने के लिये यद्यपि आपको इष्टदेवताओं के प्रति नितांत आदर था और है, तथापि वह धर्मकृत्य आप भक्तों को जिस माध्यम के जरिये करना पड़ता था उस मध्यस्थ के पास आपके विधि का शास्त्रशुद्ध समारोह करने की पूज्यता और आदर नहीं होता है। कारण आप जो विधि परिवार के कल्याण के लिये करते थे, उस विधि की सही प्रतिध्वनि आपको न मिलने से, वहीं-वहीं धर्मकृत्य साल प्रतिसाल केवल एक अनुकरण के नाते करने की प्रथा आपने परिवार में पैदा की।

आप भक्तो के भवितव्य का विचार किया जाये तो ये अपनायी गयी अनुकरण पद्धति की विधियां आपके परिवार के कल्याण के लिये आपकी भावी पीढ़ियों के ज्ञान अज्ञान के कारण योग्य पद्धतिनुसार किये जायेंगे, इसकी संभावना बहुत कम है। इसलिये श्रीसद्गुरु को ही स्वंय आपकी भावी पीढ़ियों के कल्याण की जिम्मेदारी महसूस होने से इन विधि कृत्यों से आपके परिवार को मुक्त कर, आपके परिवार के कल्याण के लिये जिस कृपाशीर्वाद की नितान्त आवश्यकता है, वह कृपाशीर्वाद प्राप्त करने का सामर्थ्य और साधन यानि कारणदीक्षा का आपको लाभ कराया। अब जो साधक, सिद्ध और साध्य अवस्था के

अनुसार आप भक्तभाविकों को अन्य किसी भी प्रकार के धार्मिक विधि माध्यम द्वारा कृपाशीर्वाद की प्राप्ति कराने का प्रयोजन आपको भावी जीवन के लिये नहीं है। आप भक्तभाविाकों को जो नित्य साधना सूचित की गयी है, उसी साधना में आपके परिवार के इष्टदेवता और उनके लिये करने के विधिपूर्वक औपचार इनका यथायोग्य समावेश किया गया है।

अनेक भक्तभाविकों को पठन आदि मार्ग का अवलंब कर अथवा अधिकारी व्यक्तियों के सत्संग में रहकर ऐसा सुनने को मिलता है कि प्राप्त जीवन को सार्थक करना यानि परमार्थवादी होना इतना ही नहीं तो स्वयं परमार्थ प्राप्ति करना है। इस विषय के अनुसार यह व्यक्ति प्राप्त जीवन के पारिवारिक कर्तव्यों को नगण्य मानकर वे स्वयं कोई अलग प्रकार के जीवन का लाभ ले रहे हैं ऐसे गूढ़ विचार से अन्य व्यक्तियों के आचार-विचारों से एकरूप न होकर, खुद के आचार-विचारों से निर्णय किये हुये मार्ग को अपना कर, इस मार्ग से अन्य व्यक्तियों के लिये और खुद के लिये अशांति पैदा करते हैं। वास्तव में जीवन की सार्थकता करना यह अवस्था स्पष्ट रूप से न समझने से, उनके स्वयं अंगीकृत साधना में उनको जो साध्य करना है वह साध्य नहीं होता है। प्राप्त जीवन पारिवारिक कर्तव्यों की पूर्ति और प्राप्त जीवन की सार्थकता करने के लिये भगवान ने हमें जन्म दिया है। किन्तु जिन पारिवारिक कर्तव्यों की पूर्ति करने की जिम्मेदारी आप पर है, वह कर्तव्य यथायोग्य रूप से न होने का कारण प्राप्त जीवन की अविकसितता और अनेक दोषों के कारण जीवन के हितसंबंधित हुये ऋणानुबंध है। किन्तु जब गुरुकृपा से जीवन को सार्थक करना है, यह महसूस होता है ऐसे समय हम किसी अनाहूत तथा संदिग्ध विषयों का विचार करने लगते हैं। वास्तव में शास्त्रशुद्ध पद्धति के अनुसार जीवन की सार्थकता का मतलब है कि अंगीकृत साधना से काया, वाचा और मन ईश्वरमय विचारों के साथ एकरूप करना। ऐसी अवस्था में जो आप भक्त साधना के पहले "कर्माधीन" होते हैं वह अवस्था बदलकर आप "कर्म आधीन" अवस्था में आते हैं अर्थात् आप कर्म के नियंत्रण

में न होकर, कर्म ही आप के आधीन होता है। इसके अलावा पारिवारिक कर्तव्य और पारमार्थिक अवस्था का लाभ होने में जिन ऋणानुबंधों के दोषों से अवरोध होता है, वह दोष गुरुकृपा से विमोचित होते हैं। इस काया, वाचा और मन के भिन्न-भिन्न विषयों से कार्यान्वित होने की क्रिया जिस शक्ति द्वारा होती है, वह दैहिक और आत्मिक शक्ति है। किन्तु इन दो भिन्न-भिन्न शक्तियों का कार्य भी जीवन को पोषक ऐसे विचारों के साथ एकरूपता प्राप्त नहीं करा देता है। ऐसे वक्त में दीक्षांत विधि माध्यम के जरिये आपके काया, वाचा, मन का और दैहिक और आत्मिक शक्ति का एकरूप हो, इसलिये जो दीक्षांत विधि किया जाता है वह प्रत्यक्ष गुरूशक्ति का देह के साथ एकरूप होने का संबंध है। ऐसे विषय का लाभ होने के बाद काया, वाचा, मन देहिक-आत्मिक शक्ति और गुरुशक्ति यह एकरूप होकर, परिवारिक कर्तव्यों के लिये जो जीवन प्राप्त हुआ है वह सब कर्तव्य निर्बाध रूप से करने का सामर्थ्य देहिक माध्यम को गुरुकृपा से प्राप्त होता है।

ऐसी अवस्था का लाभ करा देना और इस प्राप्त अवस्था निरंतर रूप से स्थायी बनाना यही प्राप्त जीवन की सार्थकता है। किन्तु अनेक भक्तों द्वारा इस विषय का अभ्यास सरसरी तौर पर और अनुमान पद्धति से होने के कारण, पारिवारिक जीवन की ओर घ्यान न देकर जीवन को सार्थक करना है ऐसा वे समझते हैं। उसकी वजह से सद्गुरु ने आपको जो अवस्था प्राप्त करा दी है उसका दुरुपयोग होकर, अन्यों से अलग कार्ययोजना विचार में लेकर ऐसे व्यक्ति अपने विचार से निर्धारित कार्य अपने हाथों नहीं हो रहा है, इसलिये दुखी होते हैं या बेचैन होते हैं। किन्तु प्राप्त जीवन जिस सद्गुरुकृपाशीर्वाद से विकसित हुआ है उस अवस्थानुसार अपने पारिवारिक कर्तव्य नि:स्वार्थ और निरपेक्षबुद्धि से कर, जिस जीवन की सार्थकता गुरुकृपाशीर्वाद से हुई है ऐसा जीवन भावी जन्म के लिये अपने साथ ले जाना, इस अवस्था का लाभ होना यही जीवन की सार्थकता है।

इस अवस्था का लाभ इसी जन्म में साधक को गुरुकृपाशीर्वाद से लेना है। इस प्रकार का लाभ साधक को जिस दैहिक माध्यम से

अनुभव करना है, वह माध्यम यधपि साधन गुरुकृपाशीर्वाद से सिद्ध है फिर भी वह प्राप्त करने के लिये प्राप्त जीवन के काया, वाचा और मन का प्रथमतः विचार करना अत्यावश्यक है। इसलिये साधना के आरंभ में साधना के लिये पोषक ऐसे साधनों का जो सुविचार मार्गदर्शन के रूप में बताया है उसका आस्था से विचार करना जरूरी है।

जीवन की सार्थकता के बारे में इतना सुस्पष्ट विवेचन यद्यपि आप भक्तों के लिये किया गया है फिर भी पारिवारिक कर्तव्य निःस्वार्थ और निरपेक्ष बुद्धि से करना चाहिये ऐसा जो सूचित किया गया है, इसका अर्थ कई भक्त समझ न पाने के कारण वे "पारिवारिक कर्तव्य" की संज्ञता का ऐसा अर्थ करते हैं कि "हमने जिस परिवार में जन्म लिया है उस परिवार के हमारे रिश्तेदारों से हितसंबंध के कारण नाते जुड़े हुये हैं। इन रिश्तेदारों के लिये जो कुछ कर्त्तव्य करना होता है वह "पारिवारिक कर्तव्य" हैं। किन्तु यह अन्य व्यक्तियों के लिये आपके हाथों हुये व्यवहार के अनुसार होने के कारण उन्हें "व्यावहारिक कर्तव्य" करना होगा। प्राप्त जीवन में जो नित्य व्यावहारिक कर्तव्य इस काया, वाचा, मन के माध्यम द्वारा हम करते हैं, ऐसी जो काया-वाचा-मन की देहिक अवस्था है, और इस देहिक अवस्था का कार्य जिस देह से, ज्ञानेंद्रिय, कर्मेन्द्रिय, बुद्धि, मन इस प्रकार के यंत्रणा से होता है, यह जो यंत्रण आपके अनजाने में कार्यरत रहती है इस यंत्रणा को "प्रापंचिक अवस्था" कहते हैं। इस प्रकार की यह अवस्था गुरुकृपाशीर्वाद से विकसित हुई है यह कहने के बाद वह विकसित अवस्था काल कालांतर तक जतन करने का जो कर्तव्य है उसकी जिम्मेदारी आप पर होने के कारण इस माध्यम का इस्तेमाल जब आपको व्यावहारिक जीवन के अनुसार करना है तब प्राप्त हुई विकसित अवस्था को बनाये रखने के लिये आप भक्तों ने ज्यादा से ज्यादा निःस्वार्थ और निरपेक्ष विचार अपने आप में निर्माण करने का प्रयत्न करना चाहिये। तभी यह विकसित अवस्था स्वार्थ के कारण अन्य विषयाधीन न होकर केवल कर्तव्य पूर्ति के लिये आत्यावश्यक इतनी ही कार्यक्षमता इस देह माध्यम से होती रहेगी।

जिस देहिक अवस्था से यह साधना करनी है उस देहिक अवस्था में यह अंगीकृत साधन सिद्ध होने के लिये क्रमशः पांच स्थानों से गुजरना पड़ता है। ये पांच तथा यानि नाभि, हृदय, कंठ, ललाट और ब्रह्म है। प्राप्त जीवन में ये स्थान पूर्व के अनेक जन्मों से अनेक विषयों के साथ हितसंबंधित है और प्राप्त जीवन में जो अनेक विषय आपकी इच्छायें और अपेक्षाओं के रूप में आपके जीवन परिसर में वास कर रहीं है ऐसे विषय इन पांच स्थानों से कार्यान्वित होते हैं। इस प्रकार ये विषय कार्य के लिये यद्यपि इन पांचों स्थानों का इस्तेमाल कर कार्य करते हैं फिर भी उन विषयों को सही तरीके से कार्यान्वित करने का सामर्थ्य देहिक अवस्था में प्राप्त नहीं होता है। इसलिये जब आप कृपाशीर्वाद की अपेक्षा करते है या वह प्राप्त करने का साधन अपनाते हैं, ऐसे समय जिन पांच स्थानों में यह विषय धारण हुये हैं, उन विषयों को कार्यान्वित होने की क्रिया आसानी से इस साधनशक्ति से प्राप्त होती है। इसिलिये जब हम पारिवारिक कर्तव्य निर्बाध रूप से कर लेते हैं, तब "मुझे कृपाशीर्वाद प्राप्त हुआ है इसलिये यह कार्य हुआ "ऐसा कहते हैं। किन्तु ऐसे समय जो गुरुकृपाशीर्वाद हम अपने जीवन की सार्थकता के लिये प्राप्त करते हैं, वह गुरुकृपाशीर्वाद यदि विषयों की पूर्ति होने की क्रिया प्राप्त करने के लिये हम खर्च करेंगे तब प्राप्त जीवन की सार्थकता यानि जीवन का विकास होने की क्रिया नहीं होती और आपकी इच्छानुसार यद्यपि सुख और समाधान प्राप्त होता भी है, फिर भी उस प्राप्त सुख में हम सुख-शांति नहीं प्राप्त कर सकते हैं। कारण ऐसे समय यद्यपि देह परिसर के विषयों की पूर्ति हुई होती है, फिर भी देहिक अवस्था अविकसित रहने से सुखसंपन्न होकर भी हमें सुख-शांति और समाधान प्राप्त नहीं होता है।

कारणदीक्षा के हितसंबंध में दीक्षा को पोषक मार्गदर्शन आप भक्तों के पढ़ने में आया है। अब इस दीक्षा को जतन करने के लिये और उसे पोषक कार्य प्राप्त होने के लिये किसी भी अन्य साधनसेवा का विचार न कर, आप भक्तों को गुरु आज्ञानुसार नित्य रूप से

ऊँकार साधना और श्रीसद्गुरु का नाम स्मरण और वह भी संथापद्धति के अनुसार नियमित रूप से करना है। यह आपको सूचित की गयी ऊँकार साधना अपने देहिक माध्यम से करते समय, इस साधना का लाभ लेने से पहले इस ऊँकार साधना का परिचय और देहिक माध्यम की ऊँकार साधनानुसार होने वाली कार्य क्रिया शास्त्रशुद्ध पद्धति से आप भक्तों को समझना आवश्यक है। अपने नित्य बोलने में हम जब एकाध शब्द, नामस्मरण या एकाध गाना गाते हैं, तब वाचा से ध्वनित शब्द उदात्त, अनुदात्त और स्वरित अवस्था में ध्वनित होता है। यह अवस्था सूर, ताल और लय आदि से जब सुसंबद्ध होती है, तब उस अवस्था को संथा कहते है। यह ऊँकार की संथा देह के पांचों माध्यम से ध्वनि रूप में व्यक्त करनी होती है। इस समय स्वाभाविक रूप से हमारी जो श्वसन क्रिया देह माध्यम से होती है, उस श्वसन क्रिया को ऊँकार के अनुसार प्राणायाम करने की स्वाभाविक संथा प्राप्त कर देने पर यानि दूसरे शब्दों में श्वास-उच्छ्वास क्रिया माध्यम से ऊँकार साधना करने से देहिक अवस्था ऊँकारमय किस तरह होती है, इस संबंध में वैद्यकीय दृष्टि से शास्त्रीय विवेचन नीचे दिया गया है, उसका अध्ययन साधक ने साधना करने से पहले करना चाहिये।

ऊँकार साधना श्रेष्ठतम साधना है, और वह करते समय रक्ताभिसरण और श्वसन क्रिया ये शरीर में होनेवाली दोनों क्रियाओं को समझ लेना अत्यावश्यक है क्योंकि गुरुकृपाशीर्वाद की हमारे शरीर में धारणा किस तरह होती है इसका ज्ञान इन दोनों क्रियाओं का अध्ययन करने से हमें सहज ही होता है। नाथपंथ की परंपरानुसार हम कर रहे साधन सेवा का जीवन में केवल संचय न कर उसे हमारे नित्य के आचरण से भावी जन्मों के लिये और भावी पीढ़ियों का इन्तजाम करने के लिये "सेवन" करनी चाहिये। इस तरह के साधन सेवा की क्रिया का कार्य रक्ताभिसरण और श्वसन क्रिया इनके माध्यमों द्वारा प्राप्त करना होता है।

नाथ परंपरा के अनुसार गुरुकृपाशीर्वाद की धारणा रक्त में होती है और गुरुकृपाशीर्वाद निरंतर बनाये रखने के लिये नाममात्र साधन

गुरुद्वारा सूचित किया जाता है। ऊँकार साधना और संथा पद्धति से गुरूनामस्मरण कारणदीक्षा के बाद दिये गये साधनों में से है। यह साधन संथा पद्धति से कहते समय जिस-जिस क्षण तेज का धारणा रक्त में होती है उसी क्षण ही रक्त के दोष बाहर जाकर रक्त पेशियों को शुद्धत्व प्राप्त होता है। जिस प्रकार रक्त के दोषों का वीर्य अथवा स्त्री बीजों में रूपांतर होकर वे दोष संतान में उतरते हैं, उसी प्रकार ऊँकार साधना से रक्त में धारण गुरुकृपाशीर्वाद भी वीर्य द्वारा अथवा स्त्री बीजों द्वारा संतान में प्रवाहित होता है। इस प्रकार प्राप्त गुरुकृपाशीर्वाद हममें पच्चीस प्रतिशत होने पर भी हमारी संतान में पचास प्रतिशत और अगली पीढ़ियों में सौ प्रतिशत धारण होगा। इससे पहले इस संबंध में शास्त्रीय जानकारी होना उपयुक्त होगा।

रक्ताभिसरण का मुख्य कार्य पूरे शरीर में रक्त की आपूर्ति करना और शरीर में तैयार होनेवाले दूषित द्रव्यों और वायु (कर्ब वायु) को बाहर फेंकना है। जो इंद्रिय इस कार्य को करते हैं वे है हृदय और धमनियां।

रक्त लाल रंग का गाढ़ा द्रव्य है और शरीर में उसका परिमाण चार से पांच लीटर होता है। रक्त की दो मुख्य इकाइयां होती है -

1. द्रवरूप तरल पदार्थ जिसे जीवद्रव्व (रक्त द्रव Plasma) कहते है। और
2. घन पदार्थ, जिसमें लाल रक्तपेशियां, धवल रक्त पेशियो और प्लेटीलेट्स (पट्टक) का समावेश होता है।

लाल पेशियों में हिमोग्लोबिन नामक (रक्त रंजक द्रव्य) पदार्थ होता है। इसकी विशेषता यह है कि वह प्राणवायु (ऑक्सीजन) के साथ तुरंत संयुक्त हो जाता है और जहां प्राणवायु की कमी होगी वहां उसकी आपूर्ति होती है। धवल पेशियों में शरीर की प्रतिकार शक्ति बढ़ाने का गुणधर्म है। प्लेटीलेट्स रक्त में अतिसूक्ष्म पेशियां होती है और वह रक्त को जमाने (अवगुंठन) की क्रिया को मदद करती है।

हृदय :

यह हमारे स्वयं के इच्छा के अधीन न होनेवाली स्नायु की थैली है। वह रक्त से भरा रहता है और उसके सिकुड़ने (आकुंचन) से पूरे शरीर में रक्त प्रवाहित होता है। इसलिये अभिसरण यंत्रणा में हृदय एक बड़े पंप जैसा काम करता है। हृदय छाती के खोखले भाग के बीज में स्थित है, उसके दोनों बाजू में दांया और बायां फेफड़ा होता है। हृदय में स्थित एक सीधे खड़े पर्दे से उसके दो (दायां और बायां) हिस्से होते हैं। दायें हिस्से में अशुद्ध रक्त और बाये में शुद्ध रक्त होता है। हृदय में सीधे पर्दे जैसा ही एक आड़ा पर्दा भी होता है। इनसे हृदय के चार हिस्से होते हैं। ऊपरवाले हिस्सों को परिकोष्ठ (Atrium) और नीचे वाले हिस्सों को जवनिका (Ventricle) कहते हैं। इस प्रकार हृदय के ऊपरवाले हिस्सों में दायें और वायें दो परिकोष्ठ होते हैं और नीचे वाले हिस्सों में दायीं और बायी दो जवनिकाएं होती हैं। इस प्रकार उसके चार हिस्से होते हैं। दायां परिकोष्ठ और दायीं जवनिका तथा बायां परिकोष्ठ और बायीं जवनिका दोनों में प्रत्येक एक-एक छेद और झड़प (वाल्व) होता है। उससे दायें परिकोष्ठ से दायीं जवनिका में और बायें परिकोष्ठ से बायीं जवनिका में रक्त प्रवाहित हो सकता है। लेकिन वह जवनिका से परिकोष्ठ में नहीं जा सकता।

श्वसन संस्था :

नाक, गला, श्वासनलिका (Trachea) श्वसनी (Bronchi) और फुप्फसे श्वसन संस्था के अलग-अलग अंग है। हम श्वसन भीतर करते हैं तब श्वास अंदर लेते समय प्राणवायु नाक द्वारा श्वास नलिका भीतर जाता है। इस श्वास नलिका के दो भाग होते हैं उन्हीं को श्वासवाहिनीयां कहते हैं। दोनों श्वास वाहिनियों में से एक-एक श्वासवाहिनी प्रत्येक की दायें और बायें फेंफड़े से जुड़ी रहती है। प्रत्येक फेफड़े में श्वासवाहिनी के अनेक भाग होकर, उनके भी अनेक छोटे-छोटे हिस्से होते हैं। इस तरह जैसे पेड़ के शाखाओं में अनेक छोटी-छोटी शिखायें फुटती है उसी तरह की क्रिया होकर अतं मे

अति सूक्ष्म शिखाओं पर पतले आवरण के वायुकोष (Alveoli) होते हैं। इन वायुकोषों के चारों ओर अतिसूक्ष्म रक्त वाहिनियों का जाल होता है और उसके द्वारा रक्त प्रवाहित होता है।

रक्ताभिसरण :

पहले शरीर का सारा अशुद्ध रक्त दो धमनियों (महानीला) (Veins) द्वारा दायें परिकोष्ठ (Right Atrium) में आता है। वहां से वह दायें जवनिका (Right Ventricle) में आता है वहां से वह दायें जवनिका (Right Ventricle) में आता है। दायें जवनिका से वह धमनी (रोहिणी) (Palmonary Artery) द्वारा फेफड़े में जाता है। फेफड़े में वह वायुकोष के चारों ओर की अतिसूक्ष्म रक्तवाहिनियों में प्रवाहित होता है। इस समय वायुकोष में हेनेवाला प्राणवायु वायुकोष के ईर्दगिर्द होनेवाली रक्त वाहिनियों का रक्त सोंख लेती है और रक्त में होनेवाला कार्बनवायु वायुकोष खींच लेता है, और कार्बनवायु उच्छास से बाहर फेंका जाता है। प्राणवायु से युक्त रक्त एक धमनी (नीला) से हृदय के बायें परिकोष्ठ (Left Atrium) आता है। वहां से वह बायीं जवनिका में जाता है और वहां से वह महारोहिणी द्वारा सारे शरीर में प्रवाहित होता है। रक्ताभिसरण होते समय रक्त में होनेवाली पेशियां अभिसरण होने के बाद पूर्ववत् अपने स्थान पर आने में साधारणतया तीन मिनट लगते हैं।

संथा पद्धति से नामस्मरण और गुरुशक्ति का रक्त में आविष्कार

जिस समय संथापद्धति से नामस्मरण का उच्चारण होता है, उस समय प्राकृतिक रूप से प्राणायाम होता है। आमतौर पर श्वासोच्छवास हर मिनट में १८ से २० बार होता है। किन्तु प्राणयाम से यह प्रमाण काफी कम होता है। प्राणायाम के समय जब काफी धीमी गति से श्वास भीतर लेकर उतनी ही गति से बाहर छोड़ा जाता है उस समय

नाड़ी भी मंद गति से चलती है, क्योंकि प्राणायाम के समय हृदय का स्पंदन भी मंदगति से होता है। जिस समय नाड़ी मंद गति से चलती है उस समय रक्ताभिसरण की गति (Velocity of Blood) भी मंद होती है। ॐ श्री साईनाथाय नमः यह नामस्मरण संथापद्धति से करते समय उससे उत्पन्न ध्वनि उसकी पूरी लम्बाई के मध्य तक लाकर, मंदस्वर और मंदलय में उसका लय किया गया और इस तरह से संबद्ध पद्धति से गुरुनामस्मरण किया गया तो, एक नामस्मरण में तीन बार प्राकृतिक रूप से प्रणायाम होता है और इस ध्वनि से उत्पन्न हुए तरंग हमारे ईर्दगिर्द रहकर, दुबारा जब हम उपरोक्त तरीके से प्राणायाम करते हैं। तब ये तरंग शरीर में धारण होकर उसका संबंध जब श्वास उच्छ्वास क्रिया से आता है तब ये तरंग प्रकाशमान होकर शरीर धारण का मुख्य कारक यानि रक्त उसकी रक्तपेशियों के साथ एकरूप होते हैं और प्रथमावस्था में जो दैहिक अशुद्धता काया-वाचा-मन में पूर्वकर्म के और ऋणानुबंधों के दोषों से धारण हुई, वह शुद्ध होकर काया-वाचा-मन ऊँकारमय होता है। यह नामस्मरण तीन मिनटों में पांच बार किया गया यानि प्रत्येक नामस्मरण छत्तीस सेंकड तक किया गया, तो रक्त की हर पेशी प्रकाशमान होने के लिये और पेशियों की अशुद्धता का उत्सर्जन होने के लिये ज्यादा से ज्यादा समय दिया जाता है, और हमारी देहिक और आत्मिक शक्ति को गुरुशक्ति की ज्यादा से ज्यादा आपूर्ति होती है।

रक्त की लालपेशियों को कार्य करने के लिये जिस शक्ति की आवश्यकता होती है, उसकी आपूर्ति साधारणतः अन्नरस से होती है। लेकिन गुरुदीक्षा के उपरांत ऊँकार साधना द्वारा गुरुशक्ति रक्त में धारण होती है, उस गुरुशक्ति के माध्यम से लालपेशियों के कार्य के लिये ऊर्जा (Energy) की आपूर्ति होती है। इस कारण लालपेशियों के कार्य के लिये साधक को अपनी दैहिक और आत्मिक शक्ति खर्च नहीं करनी पड़ती। इसीलिये जब पूरे शरीर को ऊर्जा देने का कार्य गुरुशक्ति करती है, तब साधक को शरीर के लिये अन्न की आवश्यकता कम प्रमाण में होती है। ॐकार साधना में जैस-जैसे प्रगति होती

जाती है वैसे-वैसे साधक का आहार कम होता जाता है। इस स्थिति में साधक ने दूराग्रह से आदतन या किसी के आग्रह के कारण ज्यादा खाना नहीं चाहिये। ऐसा करने से बहुमूल्य गुरुशक्ति का साधक द्वारा अनावश्यक रूप से दुरुपयोग होता है।

पहले जमाने में अपनी देव देवताओं के लिये उपवास करने की पद्धति थी उसका जो कारण शास्त्रीय पद्धति में दिया है, उसका हमने कभी भी आस्थापूर्वक विचार नहीं किया। उपवास यानि अपनी इच्छानुसार अपने नित्य आहार में समाविष्ट पदार्थों से भिन्न ऐसे अन्य पदार्थों का सेवन ऐसी प्रथा प्रचलित हुई है। शास्त्रीय पद्धति के अनुसार आमतौर पर हम जो आकार लेते हैं, उसके ग्रहण से जो दैहिक शक्ति नित्यरूप से निर्माण करते हैं, उसकी पचास प्रतिशत शक्ति, दूसरे दिन जब हम अन्न ग्रहण करते है, उसमें खर्च होती है। इस तरह नियमित अन्न सेवन के कार्य प्रसंगानुरूप हमें जडान्न ग्रहण करना पड़ा, तो उसको पचाने में कभी-कभी हमारी पचहत्तर प्रतिशत शक्ति खर्च होती है। इसके अलावा रोज हमें नौकरी-धंधा, व्यवसाय आदि करना होता है, इसमें भी शेष पचास प्रतिशत शक्ति खर्च होती है। इसका अर्थ अन्न पचाने में पचास प्रतिशत और नौकरी धंधे आदि में शेष पचास प्रतिशत शक्ति खर्च करने पर प्राप्त जीवन में आप भक्तों को जिस कृपाशीर्वाद की आवश्यकता है, उसे प्राप्त कर देने में यद्यपि देवदेवता भी तुम्हारे सामने खड़ी हो, तो भी दैहिक शक्ति का अपव्यय होने से, देवताओं का दिया हुआ कृपाशीर्वाद धारण करने के लिये दैहिक शक्ति ही देह में नहीं होती। इसीलिये कर रहे साधन सेवा में काया-वाचा और मन से एकरूप नहीं हो पाते हैं। इसलिये पुराने जमाने में उपवास करने का जो शास्त्रीय कारण था, वह यह है कि सप्ताह में किमान एक दिन उपवास इसलिये रखना चाहिये कि कम से कम उस दिन तो भी अन्न पाचन के लिये खर्च होनेवाली दैहिक शक्ति का संचय हो सके। लेकिन उपवास के दिन हम अपने मनपसंद के, जो पदार्थ हमारे रोज के भोजन में नहीं होते हैं, ऐसे पदार्थ सेवन कर, दैहिक शक्ति का और अधिक क्षय करते हैं। ऐसी यह “भगवान के लिये” अज्ञानवश

होनेवाली सेवा फलप्रद नहीं होती है। इसलिये आप भक्तों को उपवास बंद करो, ऐसा मार्गदर्शन में सूचित किया जाता है। लेकिन इसका उचित बोध भक्तभाविकों को न होने से, उपवास बंद करना, यानि बड़ा पाप करना, ऐसी भावना के अधीन होकर सच्चे गुरुकृपाशीर्वाद की प्राप्ति से हम वंचित होते हैं।

आप गुरुभक्त मार्गदर्शन के अनुसार जो साधना करते हैं, उसका एहसास और अनुभूति नहीं हो रही है, इस आशंका से दूसरे किसी विचार पद्धति से सेवा करने का जो प्रयत्न करते हैं, इसकी अपेक्षा जिस गुरुमार्गदर्शन पद्धति से आप साधना करते हैं, उसका अनुभव तथा अनुभूति होने की आपकी इच्छा होती है, उसके लिये आपके आचारविचार मार्गदर्शन के अनुसार ज्यादा से ज्यादा रखने का कर्तव्य ध्यान में रखना चाहिये।

गुरुमार्ग में गुरुशक्ति का रूपांतर साधना द्वारा रक्त में किया जाता है। इसके विपरीत हठयोगी यह शक्ति देह के साथ एकरूप करते हैं। इसलिये यद्यपि अनेक प्रकार के चमत्कार हठयोगी करते हैं तो भी पीड़ितों को उनके दुःखनिवारण का आशीर्वाद वे नहीं दे सकते। जब गुरुशक्ति रक्त में धारण होकर प्रवाहित होती है, उस समय रक्त में उत्पन्न गुरुशक्ति के स्पंदन (Vibrations) साधक के शरीर माध्यम से बाहरी वातावरण में प्रवाहित होते हैं। इस समय पीड़ित व्यक्ति को साधक की दृष्टि, वाणी, हस्तस्पर्श चरणस्पर्श इन माध्यमों से गुरुशक्ति का लाभ होता है। ऐसा लाभ पीड़ित व्यक्ति को होने से वह साधक कृपाशीर्वाद या दीक्षा के लिये योग्य है, ऐसा समझना चाहिये। अनेक बार कई भक्तभाविक मार्गदर्शन के लिये आने पर, उनको अपेक्षित समय में अपेक्षित सुख-शांति-समाधान आदि का लाभ हुआ नहीं, इसलिये वे लोग अन्यत्र मार्गदर्शन के लिये जाकर, सुख पाने के लिये भिन्न-भिन्न उपासनाओं को अपनाते हैं। इस स्थिति में प्राप्त सुख-शांति का कारण वे कर रहे उपासना के साथ जोड़ने के उनके अज्ञान का अनुभव होता है। क्योंकि जिस समय हम भक्त प्रथमतः गुरुमार्ग की

ओर जाते हैं, उस समय हमारे जीवन में हमें जिस सुख-शांति-समाधान का लाभ अपेक्षित है ऐसे कृपाशीर्वाद का लाभ श्रीगुरु ने हमें किया ही होता है। लेकिन उस कृपाशीर्वाद का लाभ जीवन में दोषों के कारण अनुभव न होने से उपासना का मार्ग हम भक्त यद्यपि बदलते हैं, तो भी बदली हुई मार्ग की दिशा में हमें सुख प्राप्त हुआ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि प्राथमिक अवस्था में जब आप निराधार होते हैं, ऐसी स्थिति में जिस सद्गुरु ने आपके जीवन को आधार दिया होता है, उसकी हम भक्तों को यद्यपि अनुभूति भी नहीं होती है, तो भी गुरु सामर्थ्य की महिमा (महत्व) इस विषय को लेकर हम कह सकते हैं कि गुरु द्वारा शब्दरूप से, दृष्टि रूप से, स्पर्शरूप से दिया हुआ आधार आपके जीवन में अक्षय रूप से रहता है। उस गुरुकृपाशीर्वाद से जब जीवन के दोषों का निर्मूलन होकर, हमें अपने जीवन में अपेक्षित सुख-शांति-समाधान प्राप्त होने की, अवस्था प्राप्त होने में यद्यपि विलंब होता है, तब भी यह कृपाशीर्वाद का साधन हमें पहले से ही प्राप्त हुआ होता है। लेकिन इतना शास्त्रशुद्ध ज्ञान न होने से साधना के बदले में अपनायी हुई कुछ अन्य सेवा का यह फल है, इस अज्ञान में प्राप्त गुरुकृपाशीर्वाद के प्रति उपकृत होने का कर्तव्य भी हम भूल जाते हैं। वास्तव में हम भक्तों को प्राप्त सुख में गुरु कभी भी हिस्सेदार नहीं होते हैं। लेकिन प्राप्त सुख जिनके कृपाशीर्वाद से प्राप्त हुआ है, ऐसे व्यक्ति के प्रति पूज्य आदर से उनकी कृपा का स्मरण करने का कर्तव्य भी हम भक्त नहीं निभाते हैं। इसलिये प्राप्त सुख यद्यपि अपेक्षा से अधिक होता है, तो भी उस सुख में समाधान मानने का कर्तव्य भी हम निभा नहीं पाते हैं।

रक्त में धारण की गयी गुरुशक्ति से सेहत पर अच्छा परिणाम होता है। उदाहरणार्थ, रक्तचाप अथवा हृदयरोग जिन्हें होते हैं उन व्यक्तियों के रक्त में कोलेस्टरोल (Cholesterol) पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है और वह रक्तवाहिनी के अंदर जम जाता है। इसी को एथिरोस्क्लेरोसिस (Atherosclerosis) कहते हैं। इसके कारण रक्त प्रवाहित होने में अवरोध उत्पन्न होता है, रक्त प्रवाह की गति धीमी

हो जाती है और रक्त अनावश्यक रूप से जमना शुरू होता है। इससे हृदयरोग का झटका आने की संभावना होती है और रक्तवाहिनियां सिकुड़ने से रक्तचाप से संबंधित विकास उत्पन्न होते हैं। रक्त में धारित गुरुशक्ति जब प्रवाहित होने लगती है तब कोलेस्टरोल पर वह आघात करती है और रक्तवाहिनी में जमी कोलेस्टरोल की परतें हटाये जाते हैं और धमनियाँ खुली होकर रक्त प्रवाह सुचारू रूप से होने लगता है। इस तरह रक्त में धारण गुरुशक्ति से हृदय रोग और रक्तचाप के आदि विकारों से साधक दूर रहता है।

अपने शरीर में अनेक प्रकार के Hormones हमेशा तैयार होते रहते हैं। शरीर का तपमान संतुलित रखने और रक्त में शर्करा का प्रमाण नियंत्रित करने जैसे अनेक कार्य ये स्राव करते हैं। इन स्रावों का प्रमाण कम-ज्यादा होने से शरीर के संतुलन कार्य पद्धति में दोष निर्माण होते हैं। ऊँकार साधना से शरीर में सुप्तावस्था में स्थित स्रावों को गति दी जाती है और ये स्राव प्रवाहित होते हैं। इस तरह शरीर में स्थित असंख्य स्राव समप्रमाण में कार्यरत होकर शरीर भी प्रमाणबद्ध रूप से कार्य करने लगता है।

इन स्रावों (Hormones) को संतुलित रूप से कार्य करने का मौका नहीं मिला तो अपने नित्य के आचार-विचारों में भी संतुलन रखना कठिन होता है। ऐसे समय अपने ज्ञान अज्ञानवश दैहिक अवस्था का संतुलन बिगड़ने से, कई बार हम अनावश्यक आचार विचारों के शिकार होते हैं, उपरांत ज्ञान अज्ञानवश घटित कृतकर्मो के प्रति पछतावा व्यक्त करते हैं। इसलिये जीवन का महत्वपूर्ण कार्य यानि "विचार के अनुसार आचार तथा आचार के अनुसार विचार" यह संतुलित अवस्था होने के लिये जिस कार्य की आवश्यकता है, ऐसा कार्य देह में स्थित स्राव माध्यम से होता है और ये स्राव जीवन का पोषक कार्य करेंगे, ऐसी धारणा साधना द्वारा उन स्रावों को करा देनी पड़ती है। इसमें आप भक्तभाविकों में गलतफहमी होने के कारणों का अनुभव होता है। वे यह है कि जिस समय आपकी दैहिक धारणा संतुलित नहीं होती है, उस समय निराकरण में "फलानी बात नहीं

करनी चाहिये" ऐसा कहा जाता है, तब आप भक्तों को ऐसा व्यवहार करना मुश्किल होता है। ऐसे समय आपके मन में ऐसे विचार आते हैं कि आप गुरुमार्ग के चंगुल में फंस गये हैं। वास्तव में गुरुमार्ग चंगुल में फंसने का या फंसाने का मार्ग न होकर मार्गदर्शन के अनुसार दैहिक अवस्था का इष्ट विकास करने का मार्ग है। लेकिन इस तरह की दैहिक अवस्था स्वाभाविक स्थिति में कार्यान्वित न होने के कारण इस तरह का बंधन आप पर लगाना पड़ता है। इसका बोध सूज्ञ रूप में होने से, निराकरण का बंधन आप भक्त ध्यान में नहीं लेते है। इस वजह से जिस स्वाभाविक अवस्था का संतुलन कृपाशीर्वाद प्राप्ति का पोषक है, इसका लाभ उठाने के कर्तव्य से आप वंचित होते हैं।

ऊँकार साधना में स्थल, काल और समय को महत्व दिया गया है। यह साधना करने का उपयुक्त समय प्रातःकालीन है, क्योंकि इस समय मलमूत्र विसर्जित हुआ होता है और उसकी वजह से कफ, पित्त तथा वात शरीर में समप्रमाण में होते हैं। उसी प्रकार रात के आराम से देहिक शक्ति में ताजगी होती है। इस वजह से दैहिक तथा आत्मिक शक्ति संतुलित होकर कार्य करती है। प्रातःकालीन समय के साथ ही सायंकालीन समय भी इस साधना के लिये उपयुक्त है। लेकिन वह पचास प्रतिशत ही उपयुक्त होती है, क्योंकि अन्नग्रहण करने के बाद ऊँकार साधना करने से उसमें एकाग्रता (एकचित्तता) लाना कठिन है। अन्नसेवन के उपरांत पाचन क्रिया तुरंत शुरू हो जाती है। अन्न खाते समय मुंह में जो लार उत्पन्न होती है, उस लार से अन्न की प्राथमिक अवस्था की पाचन क्रिया शुरू होती है। पाचन क्रिया में दैहिक शक्ति प्रवाहित होती है, तथा साधना के लिये आत्मिक शक्ति प्रवाहित करनी पड़ती है। इसीलिये दैहिक और आत्मिक शक्ति में संतुलन हो तो ही साधना में एकाग्रता आती है। इसके अलावा एकाग्रता लाने के लिये रक्तप्रवाह मस्तिष्क की ओर प्रवाहित करना पड़ता है, लेकिन अन्नग्रहण करने पर अन्न पाचन के लिये रक्त पाचन इंद्रियों में केंद्रित होकर, साधना में मन एकचित्त नहीं होता है।

ॐकार साधना के लिये प्रातःकाल में ३ से ८ तथा सांयकाल में ६ से ७.३० का समय उपयुक्त होता है। इसका कारण, इस साधना को करते समय, इस साधना के माध्यम से हमें आकाश तत्व की अधिक धारणा करनी होती है। शाम को सूर्यास्त के पश्चात् जब तेजतत्व का अस्त होता है, इस समय कुदरती आकाशतत्व अधिक मात्रा में पृथ्वीतत्व की ओर धारण होना शुरू होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि हमारे आसपास के पेड़ों का अवलोकन करने पर यह प्रतीत होता है कि आकाशतत्व के आगमन के कारण उसके दबाव से पेड़ों की पत्तियां नीचे की ओर झुकी नजर आती हैं। इस तरह पृथ्वीतत्व की ओर धारित हुआ आकाशतत्व सूर्योदय के समय तेजतत्व के आमगन से कम होता जाता है। प्रातःकालीन और सांयकालीन साधना का समय इसलिये सुनिश्चित करना पड़ता है कि कुदरती आकाशतत्व की आपूर्ति जब महत्तम होती है उस समय ही साधना द्वारा आकाशतत्व धारण करने की क्रिया हमें सुलभता से प्राप्त हो सकती है। इस काल को "ब्रम्ह्मूहूर्त" कहते हैं। इसलिये समय-असमय ब्रम्हकर्म करने के लिये बैठना तथा उसको ब्रम्हमुहूर्त कहना अज्ञान है।

ॐकार साधना में जैसे समय का महत्व है, उसी प्रकार इस साधना को करते समय दूर्बासन, ऊन का आसन या सफेद वस्त्र उपयोग में लाना हितकर है। कई बार हम साधना के समय चटाई, फट्टा या रंगबिरेंगे गलीचे जैसे आसन का उपयोग करते हैं, उनका इस्तेमाल करना हित में नहीं है। साधना करते समय सफेद वस्त्र यानि धोती या सफेद पायजामा इस्तेमाल करना वर्जित नहीं है। आज आधुनिक शास्त्रों के जो कृत्रिम धागों के वस्त्र हम परिधान करते हैं, उससे ॐकार साधना से निर्मित तरंग इन कृत्रिम धागों के कारण, शरीर में धारणा होने की प्रक्रिया में अवरोध निर्माण होता है। इसीलिये यह वस्त्र साधना करते समय उपयोग में न लाना अधिक हितकर है।

साधक अवस्था :

हम भक्तों ने अनेक प्रकार की साधना का अवलंब गुरुमार्गदर्शन के अनुसार और स्वेच्छा से आज तक किया, लेकिन इन साधना माध्यम से हम भक्तों के काया-वाचा-मन की इन साधनाओं से

कभी भी एकरूपता नहीं हुई है, ऐसी अनुभूति होती है। इसका कारण जिन साधनाओं का विचार पारमार्थिक अवस्था प्राप्ति के लिये करते थे, उससे पहले प्राप्त देहिक माध्यम और उसकी कुदरती कार्यपद्धति क्या है इसका बैद्यकीय शास्त्र के अनुसार विचार नहीं किया है। प्राप्त दैहिक माध्यम के इष्ट कार्य के लिये हम काया-वाचा-मन का विचार करते हैं। यह प्राप्त दैहिक माध्यम की स्थूल अवस्था है। लेकिन इस स्थूल माध्यम की अंदर की कार्य रचना की जानकारी होना महत्वपूर्ण है। यह विषय हमारे अध्ययन व अनुभव में न आने से, अपनायी गयी साधनासेवा काया-वाचा-मन से करना ही हमारी साधक अवस्था है, इस विचार से साधना प्राप्ति से सिद्धता प्राप्त करना इतना ही कर्तव्य हमने ध्यान में लिया है। दैहिक माध्यम की स्थूल अवस्था यानि काया-वाचा-मन, से ये हमेशा उच्चारे जाने वाले शब्द होने से अपनाया साधन काया-वाचा-मन के साथ एकरूप करना, इतनी ही साधन मार्ग की प्राप्ति है, इस अनुभव से आज तक जो साधन आपने किये, उससे आपके जीवन का सुख-शांति-सामाधान प्राप्त करने का साध न यद्यपि हमने विचार में लिया, तो भी अपनाये गये साधनों को सालों तक अपनाये जाने से भी, दैहिक अवस्था का विकास योग्यरूप से आप नहीं कर सके हैं। प्राप्त दैहिक अवस्था का जो सूक्ष्म कार्य है वह देह के बाहर न होकर देह के अदंर की रचना में समाहित होने से, उसके हितसंबंध अधिक मात्रा में अपने नित्य की साधना से है, इस प्रकार का सूज्ञ विचार आपको किसी ने न करा देने से, बाहरी देह की स्थूल अवस्था की कार्यरचना पर आप भक्तों ने नियंत्रण करने का प्रयास किया। इसका सुस्पष्ट खुलासा यह है कि जिन देवदेवताओं के कृपाशीर्वाद को पात्र होने की क्षमता आपको प्राप्त करनी थी, उसे प्राप्त करने के लिये, व्रत, उपवास, जाप आदि बंधन इस स्थूल देह पर लादकर, अपनायी गयी साधना को सिद्ध करने का प्रयास आपने किया। लेकिन जब क्रमशः गुरुकृपाशीर्वाद से आपको ये दीक्षांत विधि दिये गये, उसमें से उपासना दीक्षा, नामस्मरण दीक्षा और अनुग्रह दीक्षा इन दीक्षाओं को देने का उद्देश्य यह है कि जिस काया-वाचा-मन से आपने अनेक साधनाओं को अपनाया उन साधनाओं को करते समय, यद्यपि ये

साधनाये गुरुकृपाशीर्वाद से सिद्ध थी, फिर भी जिस देहिक माध्यम से यानि काया-वाचा-मन ने उनको धारण करना था, वह देहिक माध्यम अविकसित होने से, उन दीक्षाओं से प्राप्त होनेवाला परमानंद आप भक्त अनुभव नहीं कर सकें। इसलिये आप भक्तों को आगे की अवस्था की दीक्षा यानि गुरुदीक्षा और कारणदीक्षा दी गयी। इनमें से जो गुरुदीक्षा आप भक्तों को दी गयी, उससे पहले आपके काया-वाचा-मन की शुद्धता अन्य दीक्षा से कराई थी। ऐसी शुद्धता होने पर इस शुद्ध काया-वाचा-मन को गुरुदीक्षा से एकरूप कर, आप भक्तों को पारमार्थिक अवस्था में की साधक अवस्था सिद्ध करा दी गयी।

पंचप्राणकोश :

इसके पश्चात की महत्वपूर्ण अवस्था सिद्ध अवस्था है। यह अवस्था जिस कारण दीक्षा की वजह से प्राप्त हुई उसका प्रधान कारण देहिक अवस्था के काया, वाचा, मन से न होकर वह देहिक सूक्ष्म अवस्था से हितसंबंधित है। यह सूक्ष्म अवस्था अनजाने में देह की अंदर की रचना में कार्यान्वित होती है। उसके हितसंबंधों को हम ज्ञान अज्ञानवश नहीं भी जानते हैं, तो भी उसका अस्तित्व हमारे नित्य के आचार-विचारों से अनुभव होने से, हमारे प्राप्त जीवन में देहिक अवस्था कितनी अविकसित है इसका अनुभव होता है। इस प्रकार अनुभव होने वाले आचार-विचार स्वभावधर्म के अनुसार अन्य लोगों के हित में कितने हैं तथा आदत के अनुसार हम उनको नित्य रूप से कितना व्यवहार में लाते हैं, इसका हमें कभी भी ज्ञान नहीं होता। इसके लिये प्राप्त साधक अवस्था में साधक का मुख्य कर्तव्य यानि जो अवस्था गुरुकृपाशीर्वाद से प्राप्त होकर, काया-वाचा-मन का जो विकास हुआ है, इस अवस्था का अनुभव करना तथा पुरानी आदतों के अनुसार पड़ी हुई आदतों का आभास अन्य लोगों को न होने देने की सावधानी बरतनी है। पर्याय से इसका मतलब साधक अवस्था प्राप्त हुई है, ऐसा कहा जा सकता है।

अब सिद्ध अवस्था की सिद्धता होने के लिये श्रीगुरु ने कृपावान् होकर हम भक्तों को कारणदीक्षा दी है। यह दीक्षा का पूर्णरूप से

परिचय न होने से, अपने आचार-विचारों से जब दूसरों को सुख-समाधान देने का कर्तव्य इस कारणदीक्षा से करना होता हैं, तब अपने नित्य के आचार-विचारों की आदत के अनुसार जो आचार-विचार दूसरों के जीवन में दुख तथा अशांति निर्माण करते हैं, ऐसे आचार-विचारों का हितसंबंध कारणदीक्षा प्राप्त कर लेने पर भी पूर्वकर्म के साथ आप जोड़ते हैं या जन्म जन्मांतर के अन्य कुछ दोषों से आपके ज्ञान अज्ञान से यह हो रहा है, ऐसा आप स्पष्ट रूप से कहते हैं। ऐसे वक्त सूज्ञ भक्तों को यह महसूस होना चाहिये कि उपरोक्त लिखे गये निवेदन के अनुसार पूर्वजन्मों के दोषों की वजह से जब अस्तित्व में ही न होने वाली अवस्था प्राप्त होती है, तभी कारणदीक्षा प्राप्त होती है, ऐसा कहने पर नित्य की आदत के अनुसार जो आचार-विचारों की लेन-देन हमारे अज्ञान से होती है, उसका हितसंबंध पूर्वजन्म से जोड़ना गलत है। इसकी अपेक्षा हमारे ज्ञानअज्ञानवश हमारे आचार-विचार पहले की आदत के अनुसार है, इसका विचार कर अगर हम भक्त दूसरों को सुख-समाधान देनेवाले आचार-विचारों से एकरूप होंगे, तो प्राप्त जन्म में प्राप्त कारणदीक्षा हम भक्तों ने गुरुकृपाशीर्वाद से "जतन" की है, ऐसा कहा जायेगा।

यह दैहिक अवस्था की आचार-विचार के अनुसार होनेवाली क्रिया जतन करने का कर्तव्य कारणदीक्षा के अनुसार हम भक्त विचार में लेंगे, तभी प्राप्त हुई साधक अवस्था क्रमशः उसके बाद प्राप्त होनेवाली अवस्था के लिये सिद्ध हुई है, ऐसा कहा जा सकता है। इससे आगे जो सिद्ध अवस्था गुरुमार्गदर्शन के अनुसार जिस ऊँकार साधना के मार्ग के द्वारा धारण करनी है, वह धारणक्रिया यद्यपि ऊँकार साधना से धारण होनेवाली है, तो भी जिस दैहिक माध्यम से यह साधना सिद्ध होनेवाली है, वह कार्य दैहिक माध्यम की सूक्ष्म अवस्था का अंदरूनी कार्य होता है। यानि पाचनक्रिया, श्वसनक्रिया और रक्ताभिसरण क्रिया इन तीनों अवस्था के अनुसार यह दैहिक माध्यम कार्यरत होता है, इस विषय का विचार करना महत्वपूर्ण है। इन तीनों अवस्थाओं में से सिर्फ पाचनक्रिया ही हमें महसूस होती है। इस एहसास का स्पष्ट प्रमाण यह है कि हमारी दैहिक शक्ति के अनुसार हमारे आचार-विचार होते हैं। इन कार्यों के कारण दैहिक शक्ति में जब

कमी निर्माण होती है, तब हमें भूख लगती है। ऐसे वक्त आवश्यक अन्न सेवन के बाद यह कमी महसूस नहीं होती। अन्न सेवन क्रिया से पश्चात ग्रहण किये हुये अन्न का पाचनक्रिया द्वारा अन्नरस में रूपांतर होकर, उसका रक्त में रूपांतर होता है और रक्ताभिसरण का कार्य शुरू होता है। रक्ताभिसरण शरीर में होते समय, रक्त में धारण अशुद्ध वायु शुद्धीकरण के लिये श्वसन संस्था में जाकर, हम पुनश्च जो श्वासोच्छावास करते हैं, उस समय शुद्ध हवा के श्वसन से रक्त के दोष बाहर निकलकर उच्छवास क्रिया से उन्हें शरीर के बाहर फेंका जाता है। इस तरह रक्ताभिसरण बिना हमारे जानकारी के होनेवाली क्रिया है, हमारे दैहिक माध्यम की संरचना जिन अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोषों द्वारा हुई है, ऐसे कोषों के दोषों को दूर करना यह रक्ताभिसरण का महत्वपूर्ण कार्य है। ऐसे दोषरहित कोष आज हम भक्तों में विद्यमान होते हुए भी अनेक पूर्वजन्मों से हमारे जीवन में चले आ रहे विषय हर जन्म में किसी न किसी कारणों से हम हमारे साथ लाते हैं, और उन विषयों के प्रति इन कोषों की जो आशक्ति होती है, वह "दोष" के रूप में जीवन में आचार-विचारों द्वारा प्रकट होकर दूसरों के सुख-शांति-समाधान की हानिकारक होती है। इसीलिये हम भक्तों के हित के लिये वंशविमोचन, कर्मविमोचन, ऋणमोचन आदि विधि किये गये। क्योंकि ये दोष प्राप्त जन्म में शरीर के पांचों स्थानों से जुड़े हुये होने से प्राप्त जन्म में यद्यपि हम किसी न किसी प्रकार की साधनसेवा करते थे, तो भी की गयी साधन सेवा इन पांचों कोषों में धारण नहीं होती थी। अगर वह धारण होती, तो आप भक्तों को सुख-शांति-समाधान प्राप्त करने के लिये गुरुमार्ग की ओर आने की जरूरत नहीं होती।

प्राप्त जन्म में विमोचन आदि विधियों से इन पांचों स्थानों से हितसंबंधित दोष गुरुकृपाशीर्वाद से निवारण हुये हैं और ऊपर बताये गये अनुसार आप अब दोष मुक्त हुये हैं, तो भी अंशमात्र दोष आचारविचारों से और आदत से अस्तित्व में हैं, उनके बारे में सावधानी रखना यह अति महत्वपूर्ण कर्तव्य इस प्राप्त जीवन में आपको करना है। क्योंकि इन कोषों से हितसंबंधित दोषों का यद्यपि विमोचन हुआ है, तो भी सूक्ष्म रूप से अस्तित्व में रहे दोषों को नित्य की साधना से आप भक्तों

को शुद्ध करना है, इसको आचारविचार से अपने ध्यान में नहीं लिया तो नित्य कर रहे साधना से ये अंशमात्र दोष इतने प्रखर बन जायेंगे कि एक दिन गुरुमार्ग स्पष्ट रूप से असत्य है इस तरह के विचार मार्ग में पच्चीस साल बिताने के बाद आप दूसरों के सामने प्रकट करेंगे।

कारण दीक्षा के अनुसार सूचित ऊँकार साधना यह सर्वश्रेष्ठ साधना है। इस साधना का संबंध ध्वनि-लहरें-ध्वनि-लहरें-प्रकाश इस क्रिया से साधक को धारण करना है। इसके लिये ऊँकार तथा गुरुनामस्मरण संथा पद्धति से यानि-उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित और सुर, ताल तथा लय आदि से सुसंबद्ध होना चाहिये। ऊँकार साधना में ऊँकार का उच्चारण करते समय पूर्णरूप से श्वास लेकर, उसे मुंह से ऊँकार शब्द कह कर ध्वनित करना है। इस समय जो ऊँकार हमारे मुख से ध्वनित होगा, उसे मुंह से यानि दोनों ओठों से न कर, जीभ और तालू के माध्यम से करना चाहिये। इस ऊँकार को मुंह से कहते समय लिये हुये श्वास को ज्यादा से ज्यादा मंद गति से छोड़कर "ऊँकार" शब्द स्वर के मध्य अवस्था में लाकर धीरे-धीरे उसका लय करना चाहिये। इस पद्धति से ऊँकार साधना करते समय हमारे आसपास इस ऊँकार ध्वनि से तरंग निर्माण होते हैं और पुनश्च ऊँकार करते समय जब हम श्वास लेते हैं, उस समय पहले ध्वनित किया हुआ ऊँकार और उससे निर्मित तरंग शुद्ध हवा से श्वसन क्रिया द्वारा हमारे शरीर में जाकर फुफ्फुसों में प्रवेश करते हैं। फुफ्फुसों में असंख्य पेशियां होती है, जिनका कार्य शुद्ध हवा लेना और अशुद्ध हवा बाहर फेंकना होता है, और यह क्रिया निरंतर चलती रहती है। आप जब ऊँकार करते हैं उससे निर्मित ऊँकार तरंग शक्ति रूप में श्वास द्वारा फुफ्फुसों में प्रवेश कर, वहां मौजूद शुद्ध हवा धारण करने वाली पेशियों द्वारा रक्त के साथ एकरूप होकर, कर्म के कारण रक्त में उपस्थित होने वाले दोषों का निर्मूलन करती है। रक्ताभिसरण से वह रक्त देह के पांचों कोषों के स्थान पर यानि नाभिस्थान, हृदयस्थान, कंठस्थान, ललाटस्थान और ब्रहमरंध्र स्थान पर जाता है, तब किया गया ऊँकार इन कोषों में शक्तिरूप से धारण होता है। ऐसी यह साधना

माध्यमिक अवस्था में नित्यरूप से करते समय ऊँकार का आप वाणी द्वारा उच्चारण करते हैं, उसकी तरंगों ने इन पांचों स्थानों को शुद्ध करने का कार्य पूरा करने पर वही तरंग अनाहत तरीके से शरीर के इन पांचों स्थानों में ध्वनि रूप में पुनश्च ऊँकार ध्वनित करते हैं। लेकिन ऐसे वक्त धारित ऊँकार के तरंग जब इन पांचों स्थानों से प्रकट होते हैं, तब इन तरंगों से ध्वनि न निकलकर, इन तरंगों का प्रकाश में रूपांतर होता है। यह अवस्था प्राप्त करना ही ऊँकार साधना का अंतिम साध्य है। इस प्रकार नित्य से किये हुये ऊँकार का रूपांतर जब साधक के साधक-सिद्ध-साध्य अवस्था में प्रकाशमान होता है, तब साधक का काया-वाचा-मन पूर्ण रूप से शक्तिमान होकर, उसे प्राप्त हुआ जीवन एक ओर आसानी से इष्ट कर्तव्यों को कार्यान्वित करता है और दूसरी ओर कल्याण के लिये कुछ कर्तव्य करने के उद्देश्य को जीवन की सार्थकता की दृष्टि से प्रयोग में लाता है।

इस प्रकार के नित्य की ऊँकार साधना में आप भक्तों को न्यास करने की सूचना की गई है। हमारे दैहिक माध्यम में जो बीमारियां होती हैं, उसके लिये हमें कुछ न कुछ औषधोपचार कर उन्हें दूर करना पड़ता है। इन बीमारियों से अपना काया-वाचा-मन मुक्त रहे, इसलिये यह न्यास करना है। अस्थि, मांस, मज्जा और त्वचा से शरीर की धारणा होती है और हमें शरीर प्राप्त होता है। इस प्राप्त शरीर की इकाइयां ऊँकार शक्ति से शक्तिमान हो, और उसके दोष या बीमारियां दूर हो, इसलिये यह न्यास ऊँकार साधना में नित्य रूप से करना चाहिये वह करते समय, दोनों हाथों से ॐकार शक्ति अस्थि, मांस, मज्जा ओर त्वचा में धारण होती है।

न्यास पद्धति से ॐकार करते समय हम अपने दोनों हाथों से त्वचा को जब स्पर्श करते हैं, इस समय हमारे हाथों से, देह में धारण ॐकार शक्ति त्वचा द्वारा पुनश्च शरीर में भेजने का कार्य करना है। हमारी त्वचा अनंत छिद्रों से युक्त है, और उसकी सात परतें होती हैं। उसकी पहली चार परतों के छिद्रों से शरीर के उपायकारक

द्रव्य यानि पसीने का विसर्जन होता हे। पहले की चार और उसके बाद की तीन परतों में चरबी होती है। इस चरबी को कम करने के लिए यद्यपि हम व्यायाम या औषधोपचार करते हैं, तो भी अनावश्यक चरबी की स्निग्धता देह से समूल नष्ट नहीं होती है। लेकिन जब ॐकार साधना के अनुसार हम न्यास करते हैं, तब किये हुये हस्त स्पर्श द्वारा शरीर में धारण होनेवाली शक्ति चौथी परत को पार कर, अनावश्यक चरबी का निर्मूलन करती है। ऐसे समय वहां धारण होनेवाली शक्ति प्रकाशमान होकर, काया-वाचा-मन को अंतरबाह्य प्रकाशमान करने का कार्य ॐकार साधना द्वारा होता है।

ऐसी सहजता से प्राप्त न होनेवाली सिद्ध-साध्य अवस्था ॐकार साधना से प्राप्त होने का कार्य गुरुभक्तों को केवल गुरुकृपाशीर्वाद से प्राप्त होता है। लेकिन इससे पहले पारमार्थिक विषय के संबंध में पढ़ने में और सुनने में आये कुछ शब्दों का आडंबर अपनी ॐकार साधना करते समय मन में नहीं लाना अच्छा है। ॐकार साधना की पद्धति सूचित करते समय, ॐकार क्रमशः नाभि, हृदय, कंठ, ललाट, ब्रह्म ऐसे पांचों स्थानों से स्वरबद्ध पद्धति से करना चाहिये। यानि संगीतशास्त्र के अनुसार सा रे ग म प आदि स्वरों से युक्त होना चाहिये ऐसा बताया गया है। ऐसे वक्त भक्तों के पढ़ने में आयी वाणी के प्रकारों की खोज हम करे ऐसा लगता है। तथापि परा, पश्यंति, मध्यमा और वैखरी आदि में से कौन सी वाणी मुझे प्राप्त हुई है, इसकी खोज भक्तभाविकों ने करने का प्रयास न कर, गुरुकृपाशीर्वाद से मुझे गुरुवाणी प्राप्त हुई है और प्राप्त वाणी से मुझे जगत के हित के लिये कार्य करना है, इस विचार के साथ एकनिष्ठ होना चाहिये। गुरुवाणी का लाभ हुआ है ऐसा कहने पर, इस वाणी द्वारा ही हम भक्तों को अन्य लोगों के सुखदुख का विचार कर, जो गुरुवाणी आपको शब्दरूप में प्राप्त हुई है, उस शब्दशास्त्र से पीड़ितों को अभय देकर, उन शब्द के अस्त्र से ही अन्यों के जीवन में दोषों के कारण निर्माण हुये दुख को दूर करना है। इस तरह गुरुशक्ति से प्रभावित वाणी जब हमें प्राप्त हुई

है, तब नित्य के जीवन में किसी भी कारणवश एकाद शब्द-अपशब्द उच्चारने पर, वह किसी भी व्यक्ति को शाप न बने बल्कि वरदान हो इस रूप में बोलना चाहिये। ॐकार साधना से और कारणदीक्षा से पूर्णत्व को पहुंचे काया-वाचा-मन के कार्य को जो गुरुवाणी का लाभ हुआ है, वह वाणी "आकाशवाणी" के समान अगर मानव जीवन में मानवतावाद के कल्याण के लिये हम भक्त उपयोग में लायेंगे, तो भविष्य में पीड़ितों को अपने वाणी से जो अभयदान दिया है वह आपको प्राप्त गुरुकृपा का "प्रसाद" है यह अनुभव होगा।

वाणी संबंधी पोषक और महत्वपूर्ण खुलासा आप भक्तों को किया गया है। उसी प्रकार नित्य साधना से क्या प्राप्त होना चाहिये? ऐसा प्रश्न जब उठता है तब तत्वज्ञान हमारे सामने आता है और शास्त्रों के अनुसार हमें किस मुक्ति का लाभ होनेवाला है, इन विचारों का खेल अपने साधन मार्ग में शुरू होता है। मुक्ति प्राप्त करने का सच्चा अर्थ प्राप्त जीवन में से सुलभता से मुक्त होना है। लेकिन हम आखिर तक मुक्त होने का विचार ही नहीं करते हैं। इस संबंध में उदाहरण देना होगा तो, दोपहर को भोजन में आकंठ श्रीखंड सेवन करने के बाद शाम को भोजन के समय "और बचा है क्या?" वह पूछना क्या ऐसी अवस्था को मुक्तावस्था कहा जा सकता है? मुक्तावस्था प्राप्त करना यानि प्राप्त ऐहिक सुखशांति में समाधान मानकर स्वेच्छा से निरिच्छ होने की धारणा काया-वाचा-मन में निर्माण होना यह है। यह क्रिया जोर-जबरदस्ती से न कर सहजता से प्राप्त हुई तो ही हम मुक्तावस्था के आसपास कही है ऐसा कहा जा सकता है।

मेरे मत में प्राप्त जन्म में गुरुकृपाशीर्वाद को पात्र होकर जिन-जिन ऋणानुबधों से और दोषों से यह जन्म हमें प्राप्त हुआ है और उन ऋणानुबंधों और दोषों के करण प्राप्त जन्म में जिन सुखदुखों का "कर्म" हितसंबंध शेष है, उस कर्माधीनस्थ का जीवन गुरुकृपाशीर्वाद के अधीन होना, और प्राप्त जन्म के कर्तव्य के लिये और सार्थकता के लिये हमें अनभिज्ञ रूप में गुरुकृपाशीर्वाद का लाभ होना, इस समान

श्रेष्ठ मुक्ति कहीं भी अस्तित्व में होगी, ऐसा मुझे नहीं लगता।

हम भक्तों को इससे पहले ॐकार साधना नाभि, हृदय, कंठ, ललाट और ब्रह्म इन पांच स्थानों द्वारा पांच तरीकों से करने के संबंध में जैसा सूचित किया, उस के अनुसार वह कर, ध्वनि-लहरी-ध्वनि इस क्रिया के अनुसार ॐकार लहरें आपके माध्यम से आसमंत में निर्माण हुई, तो भी ध्वनित ॐकार लहरियों से आप काया-वाचा-मन से एकचित्त नहीं हो पाये। लेकिन नित्य की ॐकार साधना सेवा से इन ॐकार लहरियों को धारण करने का कार्य जब आपके दैहिक माध्यम सुलभता से प्राप्त कर सकें। तदुपरांत दूसरी अवस्था में ॐकार करते समय, जो ॐकार ध्वनि आपके आसपास तरंगों के रूप में निर्माण हुआ, और उस ध्वनित ॐकार के साथ काया-वाचा-मन के एकरूप होने की क्रिया जब प्राप्त हुई, तब नित्य की ॐकार साधना में तथा नित्य की आरती में आप सहजता से एकचित्तता निर्माण कर सके, तथा उसके कारण ॐकार की ध्वनि-लहरी-ध्वनि अवस्था का लाभ लेते रहे। इतना ही नही तो आगे कारणदीक्षा के अनुसार यही साधना करते समय यद्यपि जब पूर्व के अनुसार आप ॐकार करते हो, तब इस ॐकार साधना की और भी प्रगति हुई यानि "ध्वनि-लहरी-ध्वनि-लहरी-प्रकाश" इस अवस्था में आप समाहित हुये। यहां प्रकाश का अर्थ "लाईट" न होकर "एनर्जी" (उर्जा) है। पहले नित्य जीवन में सुबह से लेकार शाम तक हम अपने इष्ट कर्तव्य करते समय, वे उत्साहपूर्वक नहीं होते थे। इसके अलावा यद्यपि गुरुआज्ञा से नित्य की साधना करने को सूचित किया गया था, तो भी उस साधना की ओर अधिक आस्था से ध्यान नहीं दिया। लेकिन अब कारणदीक्षा के अनुसार तीसरी अवस्था की ॐकार साधना आप कर रहे है, जिस ॐकार साधना से यह काया-वाचा-मन यानि दैहिक माध्यम, ॐमकारमय होना चाहिये, इसको जानने के लिये अन्य किसी दूसरे मार्गदर्शन का या पुस्तक का आधार लेने की जरूरत नहीं है।

ॐकार साधना के आगे के दो महत्वपूर्ण तरीके शब्दरूप में

निवेदित नहीं हो पायेंगे। क्योंकि आगे की दोनों अवस्थायें गुरुमार्गदर्शन के अनुसार ही प्राप्त करनी होगी और इस संबंध में जिज्ञासू भक्तभाविकों को समय-समय पर मार्गदर्शन किया जायेगा। इस मार्गदर्शन का लाभ अगर भक्तभाविक "जीवन की सार्थकता" इस बहुमूल्य विचार से लेंगे, तब उसका इष्ट लाभ भक्तों को होगा। इसी के साथ यदि सौभाग्य से आपको अन्य लोगों के कल्याण के लिये कुछ सेवा करने का कर्तव्य गुरुआज्ञा से प्राप्त हुआ तो वह कर्तव्य करने के लिये गुरुमार्ग में साधक-सिद्ध-साध्य यह अवस्था आपको गुरूकृपाशीर्वाद से प्राप्त हुई है, इसकी अनुभूति अनुभव प्रत्यज्ञ में करने का साधन आपको प्राप्त हुआ है ऐसा अनुभव होगा।

ॐकार साधना पांच तरीकों से करनी है, यह ऊपर बताया गया है। इस साधना को पोषक आचारविचार इसलिये विचार में लेने हैं कि इन पांच ॐकार तरीकों में से अगले तीन तरीके जिस साधनपद्धति से करने हैं, उनका हितसंबंध वातावरण के कुदरती प्रकाश से है। हमारे आसमंत में प्रातः सूर्योदय से लेकर शाम को सूर्यास्त तक जो शुभ प्रकाश दिखाई देता है, इस प्रकाश में सात रंग समाये होते हैं, इन सात रंगो में से तीन-पीला, नीला और लाल - रंग एकरूप होकर यह शुभ्र प्रकाश बनता है और हमारा दैहिक माध्यम यानि-काया-वाचा-मन भी उसी तरह तीन रंगों से युक्त है। जब इन तीनों रंगों का प्रमाण एक दूसरे के साथ कम अधिक होता है,उस वक्त हमारे आचारविचार पद्धति में विषमता निर्माण होती है। अथवा जब भिन्न-भिन्न विषयों से अपने आचार-विचार उन-उन विषयों के अधीन होते है, उस समय भी आचारविचारों के संतुलन का कार्य जिन तीन रंगों के माध्यम से होता है, उन तीनों रंगो के संतुलन में बाधा आती है और उसके कारण नित्य का जीवन उबाऊ और संत्रस्त हो जाता है। कई बार हमारी अड़चनों का हितसंबंध किस से और किस कारण संबंधित है इसका ज्ञान न होने से हम ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अड़चनों का निवारण करने का विचार करते हैं। ऐसे समय ज्यादातर ज्योतिषियों से नवग्रहों की अंगुठीयां या लॉकेट्स इस्तेमाल करने की

सलाह मिलती है। उसके अनुसार अनेक लोग अज्ञानवश उन्हें परिधान करते हैं। लेकिन ग्रहों को धारण करने से हमारी अड़चनें निवारण होंगी या वह अनुकूल होंगे इतना ग्रहमान अनुकूल करने का साधन सहज और आसान नहीं है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार जिन ग्रहों की धारणा हमें करनी होती है, इसका प्रधान कारण यह है कि ऊपर उल्लेखित तीन रंगों में से जो रंग हममें कम-ज्यादा होगा, उसका संतुलन बनाये रखने का कार्य इस परिधान किये गये ग्रह से होता है। हममें इन तीन रंगों की धारण क्रिया देहमाध्यम से होकर, हमारे आचार-विचार संतुलित रूप से कार्यान्वित होते हैं, ऐसे ये रंग हममें कम है या ज्यादा है, या ये तीनों रंग एक दूसरे के पोषक नहीं है, इसका अनुभव करने का साधन सरल हैं। एकाध व्यक्ति को या स्त्री को अमुक रंग परिधान करने की अधिकतर लालसा होती है, लेकिन वही रंग दूसरों को नहीं भाता है। एकाद स्त्री को लाल रंग की साड़ी पहनने में आनंद आता है। इस समय इस स्त्री में लाल रंग का संतुलन नहीं होता है। इस रंग की कमी लाल रंग के वस्त्र परिधान करने से पूर्ति होकर रंगो का संतुलन होता है। इसलिये उसको इस वस्त्र के प्रति प्रेम होता और वह खुश होती है। इसके विपरीत जिन में इस रंग का संतुलन होता है, ऐसे व्यक्ति को गहरे या जिसमें अनेक रंग हैं, ऐसे वस्त्र भाते नहीं है। इस तरह कुदरती देह की विकसितता या अविकसितता उन रंगों पर निर्भर करती है। ऐसे रंगों का संतुलन रखने का कार्य ॐकार साधना द्वारा होता है। वह है ध्वनि-लहरी-ध्वनि-लहरी-प्रकाश। इसका अर्थ यह साधना नित्य रूप से करने पर आप भक्तों के दैहिक माध्यम का कार्य कुदरती जिन तीन रंगों पर निर्भर करता है, ऐसे रंगों को संतुलित तौर पर कार्य करने का काम ॐकार साधना द्वारा होने से,. किसी भी भक्तभाविक को भिन्न-भिन्न ग्रहों की अंगुठियां या लॉकेट्स इस्तेमाल करने का मोह नहीं करना चाहिये।

भक्त को कृपाशीर्वाद प्राप्त होने के बाद उसके पारिवारिक व

पारमार्थिक जीवन में स्थित्यंतर होते हैं और उसे विकसित अवस्था की प्राप्ति होती है। ये स्थित्यंतर भक्त के जीवन में किस तरह होते है यह एक अध्ययन का विषय है और उसका आलेख नीचे दिया है।

हमें सूर्योदय या सूर्यास्त के समय क्षितिज पर पहले हलका

गुरूकृपाशीर्वाद द्वारा प्राप्त जीवन में विकसित अवस्था

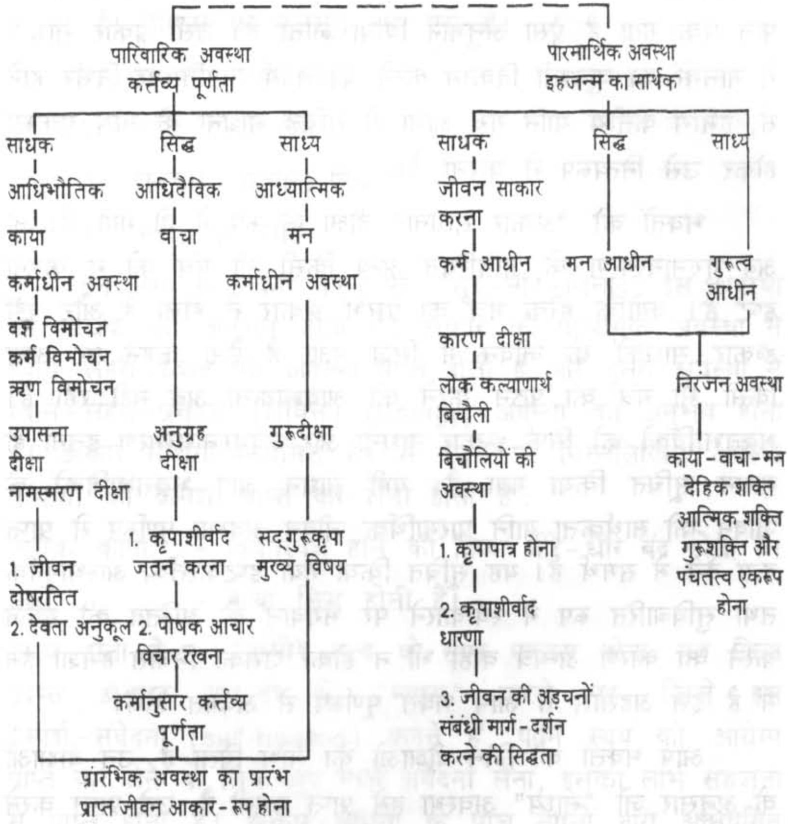

पीला रंग दिखाई देता है, उपरांत वह बढ़कर लाल सा हो ज़ाता है, दोपहर को वह नीला दिखाई देता है, सूर्यास्त के समय यहीं क्रिया दिखाई देती है। यह जो रंग में बदलाव दिखाई देता है, वैसे ही ॐकार

साधना की प्राथमिक अवस्था की परिपूर्ति अवस्था यानि हलका पीला रंग है। आगे उसका रूपांतर केसरिया रंग में होता है, और पूर्णावस्था के समय गाढ़ा लाल प्रखर रंग हमारे दैहिक माध्यम से प्रकाशित होता है। आम का फल प्रथमावस्था में हरा होता है और वह परिपक्व होने पर उसका रंग गाढ़ा केसरी या गाढ़ा लाल दिखाई देता है, उससे यह फल पक गया है ऐसा अनुमान किया जाता है। उसी प्रकार साधना में मानवों का कुदरती विकास करने का कार्य नियति पर निर्भर होने से, हमारा कर्तव्य यानि गुरु आज्ञा से सूचित साधना के साथ एकरूप होकर उसे नित्यरूप से करना है।

भक्तों को "ॐकार साधना" दीक्षा के रूप में दी गयी है। तो अब गुरुनामस्मरण के अतिरिक्त अन्य किसी भी मंत्र को न कहना इष्ट है। क्योंकि हरेक मंत्र का प्रारंभ ॐकार से होता है और वहीं ॐकार साधकों के जीवन में सिद्ध हुआ है ऐसा कहने पर अन्य किसी भी मंत्र का पठन करने की आवश्यकता अब नहीं रही है। भक्तभाविकों को सिर्फ ॐकार साधना और सद्गुरुनामस्मरण इतना ही साधन सूचित किया गया है। यहीं साधन आप भक्तभाविकों के जीवन को सार्थकता यानि पारमार्थिक जीवन अवस्था पूर्णरूप से प्राप्त करा देने में समर्थ है। यह सूचित किया गया इष्टकर्त्तव्य आस्थापूर्वक तथा सुविचारित रूप में स्वीकारने पर भगवान के अस्तिव की खोज करने का कारण अन्यत्र कही भी न होकर उसका निवास हमेशा हम में है इस अहसास से आप भक्त पूर्णरूप से अवगत होंगे।

आप भक्तों को जिन दीक्षाओं का लाभ मिला है, उन दीक्षाओं के अनुसार जो "साध्य" अवस्था हमें प्राप्त करनी है, उसे प्राप्त करने के लिये ॐकार साधना संथापद्धति से करना और इस संथा पद्धति संबंधी मार्गदर्शन लेना महत्वपूर्ण है। दुनिया में अन्यत्र ॐकार साधना के संबंध में अनेक पुस्तकें और मार्गदर्शन हमारे पढ़ने में या सुनने में आते हो, तो भी ॐकार साधना गुरुमुख से प्राप्त किये बगैर वह

शब्दरूप में ही रहेगी। उनसे नियमित और उचित समय पर संपर्क कर, अपनी साधना योग्य है या नहीं इसको निश्चित कर लेना चाहिये।

शास्त्रों में ॐकार को "हिरण्यगर्भ" से संबोधित किया जाता है। वह एक शक्ति है। वह शब्द न होकर "ध्वनि" है। "ॐकार साधना के माध्यम काया-वाचा और मन है। केवल ॐकार का अनेक बार उच्चारण करने से लाभ नहीं होता और न ही दूसरों को कराया जा सकता है। ऊँकार के मूलभूत अंग ऐसे है।

1. उच्चार, मध्य, लय
2. स्वर, ताल, लय
3. उच्चार, आचार, विचार
4. स्वर, सूर, नाद

इन अंगों से ॐकार करने पर, "सूर-नाद-निनाद" इस अवस्था का साधक को अनुभव होता है। ॐकार की प्राथमिक अवस्था में ध्वनि-लहरी-ध्वनि यह अवस्था प्राप्त होती है और दूसरी अवस्था में ध्वनि-लहरी-प्रकाश (शक्ति) (Energy) अवस्था का अनुभव होता है। ॐकार साधना नियमित रूप से करने पर निम्नलिखित अवस्था साधको को क्रमशः प्राप्त कर लेनी होती है:

साधक काया - विकारवश होने की क्रिया धीरे-धीरे बंद होता है।
सिद्ध - वाचा सिद्ध होती है।
साध्य होती है - "नामी" तत्व के साथ एकरूप होना, यह क्रिया प्राप्त ॐकार साधना में "न्यास" करने पर, जिसे हम "स्पर्श-संवेदना" (self-healing) कहते हैं, यानि स्वयं को आरोग्य प्राप्त कर लेने के लिये खुद स्पर्श संवेदना लेना, इसका लाभ सहजता से प्राप्त होता है। ॐकार-साधना के पांच न्यासों द्वारा अनियमित दैहिक क्रियाओं पर नियंत्रण किया जा सकता है। यानि पाचन क्रिया, श्वसन क्रिया तथा रक्ताभिसरण क्रिया आदि दैहिक क्रियाओं का कम-ज्यादापन दूर किया जाता है और उससे स्वास्थय का लाभ मिलता है।

ॐकार साधना "संजीवनी" जैसी है। इतना ही नहीं बल्कि उससे भी श्रेष्ठ है, यह मेरा विश्वास है और कुछ दिन पहले मैंने इस साधना की अनुभूति प्रत्यक्ष रूप से अनुभव की है। वेदों में जिसका वर्णन "नेति-नेति" ऐसा किया गया है, उस अवस्था का अनुभव मैंने किया है। आजतक साधक अवस्था में किसी ने यह अनुभव किया होगा या नहीं किया होगा, लेकिन जीते-जी" देहावसान अवस्था का अनुभव जो मैने लिया वह सिर्फ ॐकार साधना से ही साध्य हुआ है। यह मेरा स्वानुभव है। गत कुछ वर्षो से गुरुआज्ञा से दुनिया के कल्याण के लिये कुछ साधना मैं कर रहा था, यह सभी भक्त जानते हैं, इस साधना का समारोह" "शक्तिपीठ" के रूप में गोवा में किया गया। यह शक्तिपीठ एक माने में प्रत्यक्ष रूप से त्रिगुणात्मक शक्ति है, वह भविष्य में कार्यान्वित हो ऐसे साधन को सोचकर, सभी केंद्रों के भक्तों के साथ ॐकार साधना सेवा शुरू करने पर, जिस शक्ति का आगमन मेरे दैहिक माध्यम से हुआ है, उसके परिणाम स्वरूप मेरी दैहिक अवस्था निर्जीव हुई। कारणवश दैहिक व्यवहार यानि आचार-विचार और उच्चार इन तीनों माध्यमों की क्रिया रूक गयी थी। वैद्यकीय शास्त्रों में इस अवस्था का निदान "Cerebral Stroke" किया गया, लेकिन प्रत्यक्ष अनुभव यह है कि यद्यपि दैहिक शक्ति का कार्य रूक गया था तो भी आत्मिक शक्ति का अधिक मात्रा में संचय होने से उनके प्रभाव के कारण जो शून्यावस्था प्राप्त हुई थी, उसमें से ॐकार साधना "अ", "उ" तथा "म" इन अक्षरों के उच्चारण द्वारा पुनश्च उच्चारित हुई। तभी तो इसी जन्म में मैं पुनश्च आचार, विचार, उच्चारण कर रहा हूं तथा पहले जैसा आप सबको प्रेम से मिल रहा हूं। प्रत्यक्ष रूप में यह साधना प्राप्त होने से पूर्व, गत पांच वर्षो से भक्तभाविकों से मिलना या कामकाज करना गुरूआज्ञा से बंद रखने का हेतु यह था कि, भविष्य में जो साधना मेरे माध्यम से श्रीगुरु ने करवा कर, दुनिया के कल्याण के लिये जो कार्य हम सेवकों को करना है उसकी वह पूर्व तैयारी थी। क्योंकि इस साधना से जो

शक्ति प्राप्त करनी थी वह महान तथा पूरे विश्व को समाकर भी शेष रूप में रहने वाली होती है। ऐसी शक्ति शक्तिपीठ में धारित हुई है इस विश्वशक्ति का वर्णन "पुरुषसूत्त" में इस तरह किया गया है:- "सभूमिंविश्वतोवृत्वा त्यतिष्ठद्दशांगुलम्" यानि विश्व को अपने में समाने के बाद भी जो रहती है ऐसी शक्ति।

अब भविष्य में आप भक्तों को प्राप्त करने के लिये कुछ भी शेष नहीं है, प्राप्त की गयी गुरुशक्ति ही शक्तिपीठ है। इसके अतिरिक्त यह कहना यथार्थ होगा कि आप भक्तों को जो प्रतिमा लेने के लिये मजबूर किया था और उन्हें आपने लिया, उसका लाभ आपके परिवार को और दूसरों को होगा। नित्यरूप से और आचार-विचार से सूचित की गयी ॐकार साधना करने से, यह सर्वश्रेष्ठ संजीवनी भविष्य में दुनिया का भविष्य बनानेवाली है, और उसकी जिम्मेदारी हम सभी गुरुभक्तों पर है। गत वर्ष मुझे कौन-कौन सी बिमारियाँ, तथा क्लेशों का सामना करना पड़ा इसका विचार न कर, गुरुकृपा से जो महानदीक्षा यानि "महाकारण" या ॐकार साधना प्राप्त हुई है उसे नित्य रूप से करना है और इस दीक्षा का संबंध विश्व निर्माण से है। केवल मानव निर्मिती का ही विचार इसमें नहीं किया गया है किन्तु विश्व में जितने भी जीव जन्म लेते हैं, वे सब इस ओंकार साधना में समाविष्ट है। इतना विशाल और श्रेष्ठतम तत्वज्ञान हमारे नित्य की साधना में होने पर, धर्म का या जातिभेद का विचार करना यह इतना हास्यस्पद है कि हम इस २०वीं सदी में सज्ञानी है या अज्ञानी, यह प्रश्न अपने आपको करना चाहिये।

एकाध साधना, मार्गदर्शन के लिये दीक्षाविधि से लेने पर, वह नित्यरूप से और प्रमाणिकता से हो रही है या नहीं, यह सोचकर, उसके अनुसार साधना की गयी तो उसका फल हमारी अपेक्षा से कई गुना अधिक होता है। ॐकार साधना मे ॐकार केवल पढ़ना या बोलना नहीं है, मार्गदर्शन के अनुसार संथापद्धति से (उदात्त, अनुदात्त और स्वरित) साधना करने पर ही उसकी फलप्राप्ति इष्ट है, और

भविष्य में इसका लाभ आप दूसरों को भी करा सकते हैं। ॐकार साधना वाणी से उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित ऐसी उच्चारण से बाह्य वातावरण में कंपन निर्माण होता है। वाणी से जब इसका उच्चारण होता है तब ध्वनि-लहरी-ध्वनि यहां तक पहली अवस्था है। अगली अवस्था ध्वनि-लहरी-प्रकाश का लाभ जोड़ना है। इस प्रकार साधना करने पर ही अनुष्ठान या साधना सही अर्थ से हुई ऐसा कहा जा सकता है। केवल पहली अवस्था का ही ॐकार करने पर से वह साधना न कहलाकर यह केवल अन्यों का अनुकरण या समय का दुरुपयोग हुआ ऐसा उसका अर्थ होगा। तब सप्ताह में एकाधबार हम कर रहे ॐकार ठीक हो रहा है या नहीं इसको जानने के लिये केंद्र पर उपस्थित रह कर वहां जो साधना होती है उसके साथ परख लेना चाहिये। नित्यरूप से होने वाले अनुष्ठान में उपस्थित होकर, पांच मिनट तक स्तब्ध रह कर ॐकार की प्रार्थना करनी चाहिये यानि मन एकाग्र हो रहा है या नहीं यह देखना चाहिये। जो सेवक संथा बताने के लिये उपस्थित हैं, उन्होंने सभी उपस्थित भक्त अपने उच्चारण के अनुसार साधना कर रहे हैं या नहीं यह देखना चाहिये और अन्य साधना कर रहे सेवको ने अपनी मर्जीनुसार साधना न कर, वे कर रहे उच्चार नियुक्त सेवक के उच्चारानुसार हो रहा है या नहीं, यह देखना चाहिये। इस प्रकार जब आप साधना करेंगे तब ऊपर बताये गये अनुसार ॐकार की दूसरी अवस्था को आप अनुभव करेंगे और उसका लाभ स्वयं को और दूसरों को होगा। केवल साधना या अनुष्ठान में उपस्थित होकर लाभ नहीं होगा। "सालों से हम ॐकार कर रहे है" यह गर्वोक्ति व्यर्थ है, और ऐसा कहने से इससे हम स्वयं का ही नुकसान करेंगे।

आज मानव के जीवन में काया-वाचा-मन समप्रमाण में कार्यान्वित न होकर केवल मन की गति और मन का खेल जीवन में हो रहा है। इसकी अपेक्षा जिस आसान मार्ग का अवलंब करने से ये तीनों माध्यम एक ही स्तर पर आकर, समान रूप से एक हुए तो

जीवन की सुख, शांति और समाधान ये तीनों अवस्थायें हमारे बाहर न होकर हममे ही स्थित है, यह अनुभव होगा और हम विश्वशांति निर्माण कर सकेंगे, यह विश्वास हम में निर्माण होगा। सच्चे अर्थ में जिस सुख की कामना हम करते हैं, वह हमारे पास होते हुए भी इसकी खोज हम बाहर करते हैं, उसी प्रकार मूल विश्व उत्पत्ति का उच्चारण विचार और आचार ॐकार में ही है, और वह भी हमारे में ही स्थित है। तब भगवान की खोज अन्यत्र करने की बजाय उसके प्रति लगाव निर्माण करना महत्वपूर्ण है और भविष्य में प्रत्येक मानव का यह कर्तव्य है। इस विश्व का जनक तथा पालनकर्ता ॐकार है, और इस ॐकार साधना की प्राप्ति परमपूज्य सांईनाथ महाराज ने हमें करा दी है। उस साधना का लाभ भविष्य में प्रत्येक व्यक्ति प्राप्त करे ऐसी मेरी मन से इच्छा है। यही गुरुकृपा है।

गुरूतत्व और उसका जीवन में महत्वपूर्ण कार्य

आप सूज्ञ भक्तों के अध्यापन में पिछले सभी विषय सम्मिलित होने पर, गुरूभक्ति विषय क्या है तथा वह किस तरह से जाननी चाहिये, यह जानने की इच्छा आपको स्वाभाविक है। लेकिन "गुरूभक्त" या "गरूसाधक" का व्यवहार में हम इतना ही अर्थ लगाते हैं कि, जो साधक नौकरी, धंधा, व्यवसाय आदि रूप में परावलंबी जीवन का अवलंब न कर आजीवन गुरूभक्ति या ईश्वरभक्ति की उपासना का जीवन स्वीकारता है वह गुरूभक्त गुरूसाधक होता है। ऐसे व्यक्ति को जब आप "गुरू" कहते हो तब केवल दैहिक अवस्था के भाव व स्वभाव की ही आपको पहचान हुई है। लेकिन यह तत्व "गुरूतत्व" नहीं है। जिस तरह पीलिया हुये मनुष्य को सारी दुनिया पीली दिखाई देती है, उसी प्रकार आपके दैहिक अवस्था के वासना-विकार, इच्छा-अपेक्षाएं जीवन के भविष्य के बारे में आपकी बड़ी-बड़ी कल्पनायें तथा ऐहिक सुख के सपने, यह आपके देह ने धारण किया हुआ मानो एक चश्मा है और उसी चश्में से आप अपने गुरूमाध्यम की पहचान करते हैं। यह आपके दैहिक अवस्था अपने हित में न होने वाले दैहिक हितसंबंध निवारण करने का कार्य जिन गुरू को करना है, उन्हीं अहितों का चश्मा आप अपनी आंखो पर चढ़ाते हैं। वास्तव में गुरूकृपाशीर्वाद से आपके इन चर्मचक्षुओं को दिव्य दृष्टि प्राप्त करा देने के लिये गुरूमाध्यम का जन्म अनादि काल से त्रिगुणात्मक तत्वों में से हुआ है। इसलिए इस त्रिगुणात्मक तत्व ने जिस दिव्य साक्षात्कार से आपकी यह चर्मचक्षुओं की दृष्टि इस दुनिया को किस तरह व्याप्त कर रखेगी, इस संबंध में अपनाये गये कार्य का गहन विचार आपको करना चाहिये। वह न करते हुये, देह में अनंत जन्मों से निवास करने वाले दूषित कर्म के कारण जो वासना विकारों के हितसंबंध इस देह में है, वह हितसंबंध इस दृष्टि में लाकर, गुरूमाध्यम की पहचान जब आप करते हैं, तब अपने जैसे ही गुरू है, ऐसा आपको आभास होता है यही गुरूभक्ति की प्रारंभ की नीव आपके अधःपतन के लिये जिम्मेदार होती है।

गुरूमार्ग या साधना मार्ग में साधक की दो प्रकार की अवस्थाएं होती हैं। प्रथम अवस्था के साधक वे हैं, जो स्थूल व सूक्ष्म देह को एक कर, प्रखर साधनों द्वारा इन दोनों देहों की खर्च होने वाली दैहिक शक्ति को खर्च नहीं होने देते हैं या विचार अविचार तथा विकार वासनाओं द्वारा होने वाला उसका दुरूपयोग वे रोकते हैं और इस प्रयास से उसे संग्रहित करते हैं। सूक्ष्म तथा स्थूल देह की यह दैहिक शक्ति इष्ट देवताओं के कृपाशीर्वाद से सिद्ध कर, ध्यान, धारण योगसाधना आदि के लिये इस शक्ति का उपयोग कर, उस शक्ति को अपने स्वयं में वे संगठित करते हैं। ऐसी यह दैहिक शक्ति अन्यों की दैहिक शक्ति की अपेक्षा अधिक सबल होने से केवल दैहिक अवस्था में ही जो भक्तभविक है, उनके कल्याणार्थ इस दैहिक शक्ति का उपयोग कर उनकी दिक्कतों का निवारण करने का कार्य इन साधकों द्वारा यद्यपि होता भी है तो भी केवल ऐहिक विषय और उसे सुलभता से प्राप्त करा देकर ऐहिक विषय में ही जीवन व्यतीत करा देने का कार्य यह दैहिक शक्ति करती है। यह शक्ति उस साधक के लिये माध्यम के रूप में होती है। उस शक्ति को हम यद्यपि ईश्वरी शक्ति कहेंगे, तो भी हम मानवों के जीवन में जन्मकर्म और जन्मजन्मांतर के कारण जो अड़चनें आई है, उनको ही यह दैहिक शक्ति निवारण कर सकती है। किन्तु किसी व्यक्ति की अड़चन देवादिक ऋणानुबंध से हितसंबंधित होगी, तो उस व्यक्ति की अड़चने निवारण करने के लिये यद्यपि इस दैहिक अवस्था के साधक ने प्रयत्न किया, तो भी इन अड़चनों का निवारण नहीं हो पाता हैं क्योंकि साधक की इस दैहिक शक्ति में देवताओं के कृपाशीर्वाद का अंतर्भाव न होने से, देवादिकों के हितसबंध में जो अड़चने हैं उनके निवारण के लिये उन्होंने निराकरण पद्धति का अवलंब करने पर दुःख का निवारण नहीं होता है, इसका कारण केवल ध्यान धारणा, योगसाधना आदि कर, स्थूल और सूक्ष्म देह को एकत्रित कर, उनके शक्ति का अपव्यय न होने देकर यह शक्ति संगठित की भी गई तो भी इस शक्ति को देवदेवता अनुकूल न होने से, देवदेवताओं के हितसंबंध में जो अड़चने हैं, उनका निवारण नहीं

हो सकता। इसके उपरान्त यद्यपि उन गुरूओं ने गुरुमार्ग का यह आवश्यक कार्य अपनाया हो, और इन साधकों के माध्यम से दिये जाने वाले अनुग्रह और गुरूदीक्षा यद्यपि दीक्षा के रूप में भुगतनी पड़ती है। जिन व्यक्तियों को इन गुरूओं के पास जाने पर गुरू दीक्षा तथा अनुग्रह लेने का लोभ होता है वह इस तरह का अनुभव पाते हैं।

गुरूमार्ग की दीक्षा :

गुरूनामस्मरण दीक्षा, अनुग्रह दीक्षा, गुरूदीक्षा आदि जो दीक्षा क्रमशः अपने भक्तगणों को देना है वह देने के पूर्वकाल में उन भक्तों को प्राप्त जन्म में प्रतिकूल ऋणानुबंधों के कारण अनुकूल प्रतिकूल जीवन व्यतीत करना पड़ता है इसलिये प्रथमतः कर्मविमोचन करना पड़ता है। यह कर्मविमोचन करने के लिये भक्त को अपनी दैहिक अवस्था की शक्ति का उपयोग कर, जन्मकर्म और उसके अनुकूल प्रतिकूल दोष अनुकूल करवाने होते हैं। यह कार्य उसके सामर्थ्य के परे होने से पहले उसे गुरूनामस्मरण दीक्षा देनी होती है। इस गुरूनामस्मरण दीक्षा में कुछ समय व्यतीत करने के पश्चात् उस भक्त को "वंशविमोचन विधि" की पहचान करा कर उसने जिस घराने में या परिवार में जन्म लिया है, उस परिवार की सात पीढ़ियों के दिवंगत व्यक्तियों का हितसंबंध इस गुरूभक्त से है या नहीं, तथा दुष्परिणाम उसे गुरूदीक्षा देने के बाद भुगतने पड़ेंगे या नहीं, उसका विचार दीक्षा देनेवाले गुरूओं को करना होता है। इस प्रकार वंशविमोचन न कर गुरूदीक्षा का लाभ उसे करा दिया और इस गुरूदीक्षा के अनुसार यदि नामस्मरण या सूचित की गयी उपासना अपने जीवन के उद्धार के लिये वह करेगा, तो की गयी उपासना का ज्यादातर हिस्सा ये मृतात्मायें जिन्हें मृत्यु के बाद सद्गति प्राप्त नहीं हुई है, वे अनभिज्ञ रूप से उठाते हैं इसका कारण उन्हें प्राप्त जो दुर्गति है उस स्थिति में से उत्तम लोक में जाने के लिये किसी ना किसी प्रकार से पुण्य कमाने की आवश्यकता होती है।

अगर हमारे हो रहे देवदेवतार्जन, धर्माचरण या नित्य उपासना का अधिकतर हिस्सा अगर ये मृत व्यक्तियों ने अपनी मुक्तता करने

के लिये हमसे छीन लिया, तो हमें कितने काल तक और कितने जन्मों तक उपासना करनी पड़ेगी, यह कोई भी नहीं बता सकता। इसलिये दीक्षांत विधि से पहले इन भक्तगणों का कर्मविमोचन व तत्पश्चात् वंशविमोचन करने का महत्वपूर्ण कार्य गुरूओं को करा लेना चाहिये।

दूसरी दीक्षा अनुग्रह दीक्षा है। इस दीक्षा का अर्थ यह है कि, गुरू ने भक्त की सिद्धता तथा उसके पूर्णत्व प्राप्त करने के लिये, जिस त्रिगुणात्मक शक्ति का कार्यकारणभाव अर्थात् साधक में अपनी शक्ति को कारण देह में मिला कर, अपनी मूल अवस्था से वहां साकार रूप धारण कर, वह शक्ति साधक के तीनों दैहिक माध्यम के साथ एकरूप करना होता है। इस तरह देह की तीनों अवस्थाओं का एकरूपत्व साधक होने पर उस में जो शक्ति निवास करती है, वह सिद्ध रूप में होती है। यह शक्ति प्राप्त करने के लिये प्रथमावस्था में साधक को देवदेवताओं के कृपाशीर्वाद से लेकर दत्त परंपरा तक या नाथ परंपरा तक अपने साधक मार्ग का अवलंब कर साधना करनी होती है। यह साधनामार्ग में हुई जो प्रगति है उसका प्रधान विषय गुरू होता है, यह गुरू विषय गुरूभक्त के सूक्ष्म देह से परिचित कराना पड़ता है। इस विधि को अनुग्रह दीक्षा विधि कहते हैं।

जन्मजन्मांतर के ऋणानुबंध के अनुसार हमने जब-जब अनेक जन्म लिये हैं, उन जन्मों के अनुसार हरेक जन्म में हमारे एक ही अधिदैवंत या गुरूदैवंत होते थे, ऐसा नहीं है और जो होते थे, उनकी हरेक जन्म में दैहिक प्राप्ति होने के बाद समझ नहीं रहती है। ऐसी भिन्न-भिन्न उपास्य देवताएं आधिदेवताएं तथा गुरूतत्व जन्मजन्मांतर में अस्तित्व में होने से एक निश्चित् ऐसा गुरूभक्ति का मार्ग भक्तों को अवलंब करने में कठिनाई होती है। इसलिये जन्मजन्मांतर में भिन्न-भिन्न उपास्य देवता, आधिदेवता, गुरूदेवता पूर्व के अनेक जन्मों में समायिक हैं उनका विमोचन कर प्राप्त जन्म का प्रधान विषय यानि जिस गुरू को वे भक्तिभाव से ईश्वर का रूप मानते हैं, उनका परिचय इस "गुरूदीक्षा" में करा देने के बाद "गुरू" यह एक ही विषय और वह भी जीवन के उद्धार के लिये, ऐसा संकल्प उनके

जीवन में प्राप्त होती है। इसके कारण प्राप्त जीवन में इहजन्म का हितसंबंध होकर भी इष्ट पारमार्थिक उन्नति करने के लिये उनको उचित मौका मिलता है।

पहले गुरूनामस्मरण दीक्षा में वैचारिक कर्म का विमोचन करना होता है। अनुग्रह दीक्षा विधि से पहले वंशविमोचन विधि कर इस पंचभौतिक देह का जो हितसंबंध देह के बाहर के प्रतिकूल ऋणानुबंध से होता है, उसका विमोचन होने से जो गुरूभक्त नामस्मरण दीक्षा लेने के बाद उपासना अवस्था में होते हैं, उनका कर्मविमोचन तथा वंशविमोचन हुआ होने के कारण उनको साधक अवस्था प्राप्त होती है। इस प्राप्त साधक अवस्था तक आप अपने जीवन की इच्छित अपेक्षाओं का विचार यद्यपि ऐहिक विषयों का लाभ अधिक मात्रा में प्राप्त करने की दृष्टि से करेंगे तो भी इस साधक अवस्था तक आपकी पारमार्थिक उन्नति पच्चीस प्रतिशत हुई है, ऐसा समझना गलत नही होगा। ऐसा समझने पर हमें कुछ विशेष प्राप्ति हुई है, ऐसा सूझ विचार हम नही करते हैं। किन्तु इस प्राप्त पच्चीस प्रतिशत पारमार्थिक उन्नति से हमे अब तक इष्ट देवताओं के दर्शन का लाभ क्यों नहीं होता है, या दिव्य ज्ञान, दिव्य दृष्टि, त्रिकाल जानने की अवस्था क्यों निर्माण नहीं हो रहीं है, इस तरह की इच्छा हम प्रकट करते है। लेकिन यह पच्चीस प्रतिशत प्रगति, जो साधक अवस्था तक की है, वह देवताओं के दर्शन का लाभ करा देने के लिये या दैविक मार्ग में अन्य बातें जो ऊपर कही गयीं हैं, उनकी प्राप्ति कराने के लिये नहीं है। साधक अवस्था तक पहुंचने में हमें जो कृपाशीर्वाद का लाभ हुआ है, वह उपरोक्त विचारो की भावना निर्माण कर किसी भी भक्त ने वह कृपाशीर्वाद अनावश्यक रूप में खर्च नहीं करना चाहिये। क्योंकि साधक अवस्था के बाद की "सिद्ध" अवस्था तक का काला बहुत ही कठिन और दूभर है। दुनिया में अनेक देवदेवताओं की उपासना करने वाले तथा अनेक गुरूमार्ग के भक्तभाविकों का साधक अवस्था के परे जाना अपवाद से ही होता है। इसका कारण उपासना विषय पर उपरोक्त जो लक्षण बताये गये है, वह अंतिम यानि "साध्य" अवस्था में अनुभव करने होते हैं। उन्हें अनुभव करने

का लालच उनको साधक अवस्था में होने से, प्राप्त कृपाशीर्वाद का अपव्यय होता है। इसलिये जिस कृपाशीर्वाद से आप साधक अवस्था तक पहुंचे हैं, उस अवस्था की अगली कठिन अवस्था यानि सिद्ध अवस्था प्राप्त करने के लिये साधक को यद्यपि ऐहिक जन्म ऐहिक विषय तथा उस विषय के अनुसार जीवन प्राप्त हुआ है और उस प्राप्त जीवन में उसको सुख, शांति, संपत्ति आदि सुखों का लाभ हुआ है, फिर भी केवल यदि सुख उपभोगना माने जीवन है इतना संकुचित अर्थ मान कर, उस जीवन का पूरा-पूरा उपभोग लेना ही सुखी जीवन है, यह नही मानना चाहिये। उलटे, प्राप्त जीवन में सुख, शांति, संपत्ति, संतान ये जो विषय स्वभावत: आपके ऐहिक जीवन का एक हिस्सा इस रूप में विद्यमान है, वे आपको "भक्ति" विषय से अपनी ओर खींचने का हमेशा प्रयत्न करते हैं। इन प्रयत्नों के कारण भक्ति मार्ग के प्रति आपके जो विचार पोषक हुये होते हैं, उन विचारों को सद्विवेक बुद्धि से अपनी इच्छा के अधीन रखना सहज रूप से किसी भी साधक को असंभव होता है। इसलिये यह पच्चीस प्रतिशत हुई पारमार्थिक उन्नति या विकास एक साधन के रूप में आपको कृपाशीर्वाद से प्राप्त करा दिया है। इसे प्रदान करने का यह हेतु है कि यह ऐहिक विषय आपको अपने ध्येय बाद से परावृत्त कर पुनश्च वही उपभोग करने के लिये आपको विवश करते हैं उन ऐहिक विषयों में होते हुये भी आपको अपनी पारमार्थिक उन्नति करानी है। ऐसी उन्नति के लिये यह पच्चीस प्रतिशत कृपाशीर्वाद को सुविचारित कर मन, बुद्धि आदि अपने माध्यम जो इन विषयों के आधीन होने में उत्सुक होते हैं उन माध्यमों को उनके कर्तव्यों का अहसास करा देना आवश्यक है और अपने इस कर्त्तव्य के लिये कृपाशीर्वाद का उपयोग करना चाहिये। इस कर्त्तव्य को निभाना यही आपकी प्रगति की नींव है।

इसका अर्थ यह है कि हम ने जिस परिवार में जन्म लिया है तथा उस परिवार के कल्याण के लिये हमारे जो इष्ट कर्तव्य है, उनको पीठ दिखाकर अपना उद्देश्य साध्य करने के लिये इन कर्तव्यों की पारिवारिक जिम्मेदारियों को नजर अंदाज नहीं करना चाहिये क्योंकि

शास्त्र के अनुसार पारिवारिक विषय भी पारमार्थिक है तथा पारमार्थिक विषय भी ऐहिक है। यानि परमार्थ तथा प्रपंच परस्पर परावलंबी हैं। अर्थात् ऐहिक में पारमार्थिक विषय भी ऐहिक है। यानि हमारे जीवन में जरूरत के अनुसार जो-जो सुख प्राप्त हुये हैं, उनके प्रति समाधान व्यक्त कर समाधानी होना, यह विचार पारमार्थिक अवस्था की नींव है। पारमार्थिक अवस्था में चौबीस घंटे भगवान का चिंतन कराने यानि परमार्थ नहीं है। "उस चिंतन में अपने कर्तव्य को ध्यान में रखकर, "उसे यथायोग्य निभाने का कर्तव्य मुझे ही करना है" यह सोचकर जीवन व्यतीत करना यानि ऐहिक विषय से पारमार्थिक विषय तथा पारमार्थिक विषय से ऐहिक विषय इस तरह इन दोनों विषयों को यदि आप ध्यान में लेंगे तभी उस समय जो जन्म इष्ट कर्तव्य को पूरा करने के लिये प्राप्त हुआ है उसका सार्थक होगा और इस जन्म में जो इष्ट कर्तव्य करना है, उसे प्राप्त करने की भी सार्थकता आप प्राप्त कर पायेगें। यह जो विचारों का संतुलन आप सहजता से प्राप्त नहीं कर पाते, और जिसकी प्राप्ति कृपाशीर्वाद के बिना नहीं हो सकती ऐसा कृपाशीर्वाद आपने जीवन में पच्चीस प्रतिशत उपासना अवस्था से साधक अवस्था तक प्राप्त किया है।

अब अनुग्रह दीक्षा से गुरूदीक्षा तक को जो काल भक्तभाविकों को गुरूमार्गदर्शन के अनुसार आचरण में लाना है, यह जिम्मेदारी आसान है ऐसा गुरूभक्तों को समझना नहीं चाहिये। क्योंकि जिस गुरूतत्व के साथ आप एकरूप हुये हो और जिस तत्व में आपको भगवान के सगुण होने का साक्षात्कार हुआ है, वह अनुभव दिलाने में गुरूमाध्यम ने भी यथोचति कर्तव्य निभाया है। ऐसे समय मार्गदर्शन में आपको जो नित्य उपासना करना सूचित किया जाता है, उस उपासना के साथ आपको एकनिष्ठ रहना चाहिये। वह उपासना कितनी छोटी है, इसका विचार न कर वह "गुरूप्रसाद" है अर्थात् वह छोटी न होकर महान है, इस तरह की भावना का आविष्कार आपके विचारों में पूरी तरह से भरा हुआ होना चाहिये। क्योंकि इस तरह की अवस्था से भविष्य में हमारा जो विकास होना है, यह जिम्मेदारी भक्तभाविकों की अपेक्षा गुरू की अधिक होती है इसलिये वे सरल से सरल तथा छोटी उपासना

इस कारण सूचित करते हैं कि आपके नित्य उपासना से आपके देह में और देह के बाहर उस उपासना में सिर्फ जितनी आवश्यकता हो उतनी ही और भावी अवस्था को पोषक है ऐसे ही वलयों का निर्माण होना चाहिये। मान लीजिये गुरू ने आपको सिर्फ राम यह छोटे से ही नाम का उच्चारण करो ऐसा कहा, तो इस नाम का मैं पहले भी उच्चारण करता था इस नाम से मेरा कौन सा उद्धार होगा? इस तरह का विचार निर्माण नहीं होना चाहिये। गुरूवाणी से निकला शब्द किसी भगवान का संबोधन ऐसा नहीं होता, तो गुरू में निहित शक्ति का संक्रमण शब्दों के स्वरूप में निर्मित स्पंदन गुरू मुख से ध्वनित होकर जब आप सुनते हैं, उस समय निवास कर रही शक्ति, शब्द रूप में यानि शब्दब्रह्म से आपको साथ हितसंबंधित होती है। ऐसा इस का अर्थ ध्यान में रखकर, गुरूवाणी से निकला शब्द ही ब्रह्म है, इतना विश्वास करो। उसके ऐवज में राम शब्द का उच्चारण करने को कहा है इसलिये श्रीराम जयराम जय जय राम इतना विस्तृत "राम" शब्द का उच्चारण करने से हम कुछ अधिक कृपाशीर्वाद प्राप्त करेंगे, ऐसी जो आपकी पारमार्थिक मार्ग के संबंध में भावना है, उसे किसी भी जन्म में आप साकार नहीं कर पायेंगे।

साधक, सिद्ध, साध्य अवस्था :

यह अवस्था प्राप्त करने के बाद साधक अवस्था से सिद्ध अवस्था तक पहुंचने की जिम्मेदारी साधक या गुरूभक्ति को अपने जीवन में प्राप्त करनी होती है। उससे पहले गुरू माध्यम द्वारा होने वाली लोककल्याण की भूमिका की जानकारी होनी चाहिये। जो गुरूमाध्यम साध्य अवस्था तक "सिद्ध" है, ऐसी का पंचभौतिक शरीर यानि देह हमें अपने जैसा ही लगा तो भी उनमे दो शक्तियों का आविष्कार हुआ होता है। इन दो शक्तियों को संतुलित रूप से कार्य करने के लिये प्रेरणा देनेवाली तीसरी शक्ति होती है, वह है उनपर हुई गुरूकृपा या देवदेवताओं की कृपा। प्रथम जो दो शक्तियां हमारे कल्याण के लिये कार्य करती हैं, उनमे से दैहिक शक्ति आपकी अड़चनों के निवारण के लिये गुरूमाध्यम द्वारा कार्य करती है। इस शक्ति के द्वारा आपके कल्याण के लिये गुरूवाणी से जो उद्‌गार निकलते हैं, वह

सत्य अनुभव होने के लिये उनकी आत्मिक शक्ति कार्य करती है तथा वाणी द्वारा उच्चारित शब्द भक्तों के जीवन में कार्य करने के लिये जो तीसरी शक्ति कार्य करती है, वह गुरूकृपा या देवादिको की कृपा होती है।

इस तरह की ये तीनों शक्तियां साधक अवस्था के माध्यम को एक तो पूर्व पुण्य से प्राप्त होती हैं या इस जन्म में गुरू आज्ञानुसार सेवासाधना कर उन्हें प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार गुरूकार्य के शक्ति का विस्तार आपको आज तक ज्ञात न होने से आप भिन्न-भिन्न मार्गदर्शन के बलि का बकरा बनते हैं। जो साधक भूत-भविष्य के बारे में कुछ अवास्तविक बातें बताकर हमें अपने भावी जीवन के बारे में असंभव ऐसी आशा निर्माण करते हैं, ऐसे साधकों का कार्य केवल दैहिक शक्ति से कार्य करता है। लेकिन जो साधक तीनों ही शक्तियों द्वारा कार्य करते हैं, वे मार्गदर्शन करते समय "आप भगवान की कृपा से सुखी होंगे" इतना ही वाणी से उच्चारण कर भक्त को अपने कर्तव्य का अहसास करा देते हैं। वे कदापि भविष्य के बारे में अवास्तविक आशाएं बताकर ज्यादा भक्तगण जुटाने का प्रयत्न नहीं करते हैं।

पहली देहिक अवस्था के साधको के बारें में गुरू मार्ग को लांच्छनास्पद ऐसी उनकी कार्यपद्धति जो अनुभव होती है वह यह है कि यद्यपि किसी साधनमार्ग से उन्होंने देहिक शक्ति अन्यों की अपेक्षा अधिक प्राप्त की होती है, तो भी उनके देह के साथ हितसंबंधित विकार तथा षड्रिपू पर काबू पाने में वे असमर्थ होते हैं। इसलिये उनसे मार्गदर्शन लेने के लिये आये हुये भक्तो में जो सुखी जीवन बिताने वाले हैं, रईस हैं या सट्टा, जुआ खेलनेवाले हैं, ऐसे लोगों के लोभ का ये साधक शिकार बन जाते हैं। साधक अवस्था का पूर्णत्व यह तीन शक्तियों का एकरूपत्म होता है। उसको समाज के धनवान लोगों का आधार या आश्रय लेने की कभी भी जरूरत नहीं होती है क्योंकि वह गुरू आश्रित होता है।

पहली अवस्था के साधकों से थोड़ी बहुत उच्च अवस्था के साधक वे होते हैं, जिनकी आत्मिक शक्ति देहिक शक्ति के साथ कार्य करती है। ऐसे साधकों को समाज में ऐहिक सुख का उपभोग करने

वाले व्यक्तियों के प्रति थोड़ा आदर होता है और उसमे हम सहभागी हो ऐसी उनकी इच्छा होती है। लेकिन देहिक अवस्था के साधकों जैसा वे इस विषय की ओर इतना आकर्षित नही होते हैं क्योंकि उन्होंने अंगीकृत किये हुए कार्य का अहसास उनका आत्मिक तत्व उन्हें बार-बार करा देता है। लेकिन इस साधक अवस्था में जो कोई भी साधक है, अगर वे पहली अवस्था से ऊपर है, तो भी उनकी कार्यपद्धतियां समाज को अधिक मोहित तथा आकर्षित करने वाली होती हैं। क्योंकि इस अवस्था में साधकों को क्षुद्रसिद्धि प्राप्त हुई होती है। इसका कारण दोनों शक्तियों की अवस्था पूरी होकर तीसरी शक्ति का प्रारंभ हुआ होता है। इस समय जिनको ये क्षुद्रसिद्धियां प्राप्त होती हैं, उस माध्यम से वे विविध चमत्कार समाज को दिखाकर, ये चमत्कार ही भगवान का अस्तित्व है, ऐसा आभास निर्माण करते हैं। इसके अतिरिक्त इन साधकों के पढ़ने में अनेक शास्त्रीय पुस्तकें, धर्मग्रंथ, वेदवेदांत आदि आने से उनका इस विषय पर भाषा प्रभुत्व अन्यों की अपेक्षा ज्यादा होता है। इसलिये सुननेवाला मोहित होकर, हम ब्रहमज्ञान श्रवण कर रहे हैं, ऐसे मोह से वह उस गुरूमाध्यम का लाभ उठाता है।

तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि इन साधकों को तीसरी अवस्था का पूर्णत्व प्राप्त न होने से उनका इस जगत में जन्म होने का जो कुछ कार्यकारणभाव है, उस कारण के अनुसार उन्होंने इस दुनिया में निश्चित कौन सा कार्य करना है इसके मार्गदर्शन की दिशा उनको गुरूकृपाशीर्वाद से न मिलने के वजह से आजकल पढ़ने और सुनने में आता है कि फलाना-फलाना व्यक्ति विदेश गया है और वहां पश्चिमी लोगों को आध्यात्मिक प्राप्ति करा देने के लिये वह वहां कुछ समय तक निवास करेगा। वास्तव में इसमें कितना सत्य है, यह तो भगवान ही जाने। जिनको अपना कार्य दिखाने के लिये अखबार का सहारा लेना पड़ता है, ऐसे साधकों के पास निराधार भक्तों को आधार देने का सामर्थ्य है या नहीं, यह सूज्ञ भक्तों को समझ लेना चाहिये। वास्तव में आज विदेश में जाने का मोह विद्यावान छात्रों को होना चाहिये। क्योंकि पश्चिमी देशों में भारत की अपेक्षा विज्ञानयुग की प्रगति अधिक

होने से उन शास्त्रों का अध्ययन कर, और उन शास्त्रों का अधिक शोध लेकर, उन शास्त्रों का भारतीयों के कल्याण के लिये किस तरह उपयोग किया जा सकता है, ऐसी इन विद्यावान छात्रों की इच्छा होना स्वाभाविक है। लेकिन इसके विपरीत इन साधकों में पश्चिमी देशों में जाने की प्रतिस्पर्धा चल रही है और नित्य रूप से यह सुनने और पढ़ने को मिलता है कि फलाने-फलाने साधक कार्य के लिये विदेश गये हुये हैं। वास्तव में जो साधक भारतीय है, उनको हमारे समाज में जो लोग दुखी है और अज्ञानी जीवन जी रहे हैं और जिनको अपने जीवन कल्याण का मार्ग अज्ञान के कारण सूझ नहीं रहा है, ऐसे लोगों को सज्ञान करना होता है। ऐसा होते हुये भी ये साधक बार-बार विदेश जाकर रहते हैं। वहां ये साधक क्या करते हैं उसे हम पांच-दस हजार मील की दूरी से देख नहीं सकते। इसलिये उन्होंने केवल विदेश गमन का पोषाक पहन रखा है, तो भी उनके अन्तर मन में भगवान का निवास कितना है इसको हम सहज ही समझ सकते हैं। अगर वह साधक तीसरी अवस्था प्राप्त किया हुआ होता है अर्थात् गुरूकृपा या देवादिकों को पूर्ण रूप से प्राप्त करता है, ऐसा साधक अपना जीवन जिस कार्य के लिये व्यतीत करना है वह कार्य निसंकोच रूप से, निरपेक्षता से, निःस्वार्थ रूप से समाज को किस तरह दिया जा सकता है, ऐसा सविचार मन में सदैव रखकर अपने कार्य के साथ एकरूप होकर श्रीसद्गुरू आज्ञा से प्रदत्त कार्यक्षेत्र तथा उसकी सीमा का गलती से भी उल्लंघन नहीं करेगा।

आज हमारे देश की भौतिक प्रगति पिछड़ी हुई है, इसलिये हमारे विद्यावान छात्रों को पश्चिमी देशों की जो अनचाहे मिन्नतवारी करने के लिये जाना पड़ता है, उसी तरह जिस देश के देशवासियों का आध्यात्मिक विकास नहीं हुआ है, या जिनको इस जन्म का कर्तव्य क्या है, इसका ज्ञान नहीं है ऐसे लोगों को अपने प्राप्त जीवन का ज्ञान प्राप्त करने की चाह होगी, तो वे स्वयं भारत में आकर अपने इस ज्ञान की भूख यहां बिना किसी संकोच के आंकठ तक तृप्त करा सकते हैं। आज पश्चिमी लोग इस ज्ञान के केवल प्यासे हैं इतना ही

नही, तो वह प्यास भी एक क्षणिक प्यास है। वास्तव में अभी तक उस ज्ञान के वे सच्चे रूप में भूखे नहीं है। ऐसा होने पर भी ऐसे लोगों को, अनादिकाल से जतन किये हुये यह शास्त्र उस देश में जाकर उन देशवासियों को जिनको की आचार विचार, संस्कृति, नीतिमत्ता देवादिक आदि का कतई भय अभय नहीं है, उन्हें देना यह कार्य के रूप में हम साधकों ने स्वीकारा है। यदि हम साधक स्वयं को गुरू आश्रित तथा गुरूचरणों के दास कहलाते हैं तो ऐसे साधकों ने अपनाई यह कार्य भूमिका को क्या सही रूप में कार्य कहा जा सकता है? उदाहरण के लिये अपने परिवार के बाल बच्चे अन्न, कपडा, मकान के अभाव में दुखी होते हुये, जो दूसरो के लिये अन्न, वस्त्र, मकान की व्यवस्था करता है, उसको सूज्ञ पिता नहीं कहा जा सकता। यही स्थिति आज विदेश में जाने वाले साधकों ने निर्माण कर रखी है। विदेश गमन की और वहां के अनगिनत भक्तों की संख्या की उपाधि अपने साथ लगाने से इस मार्ग में हम श्रेष्ठ है, और केवल अंगीकृत मार्ग से हम कार्य कर रहे हैं, ऐसा बाहरी दिखावा निर्माण करना और ऐसा आभास निर्माण करना यह सत्य ठीक नहीं भाता। इसके विपरीत अपने व्यक्तिगत जीवन में कोई भी विदेशी उपाधि का स्वीकार न कर, अगर निःस्वार्थ, निरपेक्ष बुद्धि से अपना जीवन अपने देशवासियों के लिये व्यतीत किया और उसकी जानकारी मिलने पर अगर किन्हीं विदेशी बंधुओं को सच्चे रूप से जीवन के उद्धार की भूख है, तो हे साधकों, आप उनकी यह भूख निस्वार्थ, निरपेक्ष बुद्धि से मिटाने के कार्य को अवश्य अग्रक्रम दीजिये। लेकिन उससे पहले जो विद्या अनादिकाल से शास्त्र परंपरा से देवादिकों से जतन की गयी एक ही ऐसी अमानत है, जिसे अनेक देशों द्वारा हम पर आक्रमण किये जाने पर भी वे आक्रमक हम से छीन नहीं सके हैं। ऐसी यह अमानत अगर आप केवल व्यक्तिगत नाम कमाने के लिये विदेश ले जाते हो तो यह निर्यात आपको कभी भी लाभदायक नहीं होगा। क्यांकि इस भूमि की अनादिकाल से यह परंपरा रही है कि जो शास्त्र हमारे हित तथा कल्याण के लिये ऋषिमुनियों ने और देवादिकों ने निर्माण किये हुये

हैं, उन शास्त्रों की नींव देवदेवताधिष्ठित हैं। आपने व्यक्तिगत महत्ता और प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये यदि विदेश गमन किया और वहां कार्य करने के लिये संस्थाएं स्थापित की और शास्त्रों के साये में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई, तो भी जिस शास्त्र का अधिष्ठान देवदेवता है वह शास्त्र विदेश पहुंचा तो भी देवदेवता विदेश गमन नहीं करेंगे, इतना निश्चित ध्यान में रख कर, भविष्य में आपने स्वीकार किया कार्य केवल भारत में करना उचित है या विदेश में इसका निर्णय आप स्वयं को ही करना है। मात्र यद्यपि शास्त्र के अनुसार आप का वेषांतर, देशांतर, धर्मातंर करना है। आपके अपने देहाधीन है तो भी देवताओं को देशांतर करना, आपने अनेक जन्म लेने के बावजूद भी आपको असंभव है।

आप भक्तों को साधक अवस्था में लोककल्याण का कार्य कर रहे दो विभिन्न साधक माध्यमों के लोक कल्याण कार्य की पद्धति विदित की गयी है। अब जिस साधक में देहिक और आत्मिक शक्तियों का विकास हुआ है, और ये दोनों शक्तियां गुरूकृपाशीर्वाद से कार्य करती है ऐसी तीसरी अवस्था में स्थित साधकों के कार्य का स्पष्टीकरण करना है। ऐसे साधकों का कार्य यद्यपि औरों जैसा ही पंचभौतिक माध्यम से होता है, तो भी उनका जो देह जिस पंचभौतिक तत्वों से निर्माण हुआ होता है, उन पंचभौतिक देह के सभी देहिक धर्म और अंतर्गत भावभावनायें उनके देहाधीन नहीं होती है, और अगर हुये तो भी साधक की इच्छानुसार वे कार्यन्वित नहीं होती हैं। क्योंकि ये दोनों शक्तियां गुरूतत्व के साथ या गुरूशक्ति से जब एक रूप होती है, तब यद्यपि उस साधक के ऐहिक अस्तित्व का हमें अनुभव होता भी है या हमने उसका परिचय करा लिया है, तो भी जिस तीसरे तत्व का आविष्कार उनके पंचभौतिक तत्व में गुरूकृपाशीर्वाद के रूप में हुआ है, ऐसे साधक के कार्य की योजना, उस साधक की इच्छा या अपेक्षा पर निर्भर न होकर वह गुरूशक्ति के अधीन होती है और उस शक्ति के अनुसार मिलनेवाली प्रेरणा जब आप भक्तभाविकों के जीवन से एकरूप होती है तब ऐसी क्रिया को ही कृपाशीर्वाद कहते हैं।

प्रथमावस्था का साधक यानि देहिक शक्ति से कार्य करनेवाली और आत्मिक शक्ति से कार्य करनेवाला व्यक्ति ऐसा ही कार्यकारणभाव व्यक्त करता है। लेकिन ऐसी शक्ति का जो लाभ हमें होता है, उसे कृपाशीर्वाद न कह कर उसे केवल "आशीर्वाद" कहना होगा। ये दो शब्द अर्थ में एक-दूसरे के नजदीक लगते हैं और इन शब्दों का वैकल्पिक प्रयोग हम व्यवहार में करते भी हैं तो भी इन शब्दों से व्यक्त होनेवाली क्रिया या कार्य सहजता से समझ में आ जाये इतना आसान या सुलभ नहीं हैं। जब हम आशीर्वाद प्राप्त करते हैं उसका प्रभाव हमारे जीवन में मर्यादित काल तक ही होता है और उसके बाद फिर हमारा जीवन असंगठित हो जाता है। लेकिन कृपाशीर्वाद का लाभ जिनको मिलता है, वह उन्हें इस जन्म में निरंतर रूप से तो मिलता ही रहता है किन्तु भविष्य में भी यह कृपाशीर्वाद जन्म-जन्म तक अपना इष्ट कर्तव्य करता रहता है। हम मानवों का जन्म पांच ऋणानुबंधों के अनुसार हुआ है, यह ऊपर विदित किया ही गया है। उनमें से केवल एक ऋणानुबंध यानि "जन्मकर्म" और उसके अनुसार जो अड़चनें आती है उनके निवारण के लिये पहली दो साधक अवस्थाओं के साधकों का हम लाभ लेते हैं, और वे उन्हें सुलभता से भी करा देते हैं, तो भी आपका जीवन जो पांचों ऋणानुबंधों से हितसंबंधित है, उनमें से केवल एक ही ऋणानुबंध आप अनुकूल कर लेंगे और उसके अनुसार सुख, शांति, समाधीन की प्राप्ति हुई भी हो तो भी शेष चार ऋणानुबंध हमें अनुकूल है, या प्रतिकूल इसकी जानकारी आपको तो होती ही नहीं है, लेकिन साधकों को भी इन ऋणानुबंधों की पहचान न होने से प्राप्त सुखों का कुछ समय तक उपभोग लेने के बाद, अन्य चार ऋणानुबंधों के कारण पुनश्च हमारे जीवन में विकट समस्याएं निर्माण होती है।

जिस साधक में ये तीनों शक्तियां एकरूप होकर उसे कृपाशीर्वाद का साक्षात्कार हुआ होता है उससे मार्गदर्शन के लिये आप जाते हैं तब जो मार्गदर्शन का लाभ आपको होता है, वह लाभ लेने की अवधि में हम भक्तों के मन में केवल क्षणिक सुख की ही संवेदना

होती है। इसलिये प्राप्त कृपाशीर्वाद और उसके सामर्थ्य का अनुभव नहीं होता है क्योंकि इन साधकों के कार्यपद्धति की नीव ऐहिक या क्षणिक सुख की नहीं होती है। वास्तव में ऐहिक जीवन में अड़चने आती हैं, उनके निवारण के लिये मार्गदर्शन करना, यह उनका मुख्य कार्य नहीं होता है। यह कार्य उन्हें इसलिये करना पड़ता है कि इससे बहुजन समाज के अधिकांश लोगों को अपने प्राप्त जीवन के संबंध में देवादिकों के बारे में, तथा धर्म के प्रति कर्तव्य के बारे में, और प्राप्त जन्म की सार्थकता का ज्ञान हो। लेकिन लोकसंग्रह कर उन्हें मार्ग दिखाने का जो कार्य इन साधकों का है उनके इस मुख्य कार्य का बोध हम भक्त ध्यान में नहीं लेते। केवल अड़चनों के निवारण के लिये ही इन साधकों ने इस कार्य को स्वीकार किया है, ऐसा आप समझते है। यद्यपि सुलभता से और सरल मार्ग से जाने का गुरूमार्ग हमारे लिये भगवान ने निर्माण किया है, तो भी हमारे सम्मुख उपस्थित साधक माध्यम किस कार्य के लिये इस दुनियां में हमारे हित के लिये अपना आयुष्य व्यतीत कर रहे हैं, इसका ज्ञान हमें नहीं होता है। इसलिये यद्यपि इस जन्म को सार्थक करने का सामर्थ्य इस गुरूमाध्यम में है, तो भी हमारे अज्ञानवश इस बहुमूल्य कृपाशीर्वाद का लाभ हम नहीं ले पाते हैं। इन साधकों की कार्यपद्धति का मुख्य उद्देश्य हम मानवों के कल्याण के लिये होता है, उस विषय में आप भक्तों के आचार विचार आपके जीवन को पोषक बना कर, और जो देवदेवता आपके घराने या परिवार के हैं, उनका कृपाशीर्वाद प्राप्त करने के लिये आज आप अपने आचार-विचार के कारण लायक नहीं होते हैं, वह पात्रता अपने मार्गदर्शन द्वारा आपको प्राप्त करा देने का हेतु होता है। इसके अलावा आप मानवों का जन्म जिन पांच ऋणानुबंधों से हुआ है, उन ऋणानुबंधों की अनुकूल-प्रतिकूल क्रिया से आपके घराने में विद्या धन संतान इनका नाश हो रहा है उनका भी वे ऋणामोचन करते हैं। ये मार्गदर्शन ऐहिक जगत के लिये होता है। लेकिन प्राप्त जन्म का आपका हितसंबंध पारलौकिक तत्व के साथ भी हैं उनके भी जो हितसंबंध मातृपितृ तथा इतरेजनों के ऋण के कारण आपको

भुगतने पड़ते हैं, उस परलोक पर भी इन साधकों का उतना ही अधिकार होता है। इसके कारण, ये जो दोष कई पीढ़ियों से समाज में पीड़त जैसे अनुभव हो रहे हैं। उनका भी वे सहज रूप से विमोचन करते हैं। ये दोनों निराकरण आधिदैविक तथा अध्यात्मिक निराकरण है, जिनका संबंध आप भक्तों के जीवन में स्थल, काल, समय तथा चर सीमा आदि के कारण आता है, उसे ही हम "अकस्मात् संकट" कहते हैं। इस संकट की पूर्वसूचना कभी भी और किसी को भी नहीं होती है। किन्तु जब हम इस जन्म में पूर्ण रूप से सद्गुरूरूप होते हैं, तभी इसका लाभ हमें मिलता है। क्योंकि जिस अकस्मात् संकट से हमारी अकस्मात् हानि होने वाली है उसके लिये हम अपने अपने घर में रहकर तथा सद्गुरू अपने निवास में रहकर यह कार्य उनको करना असंभव है। इसलिये बार-बार गुरू के दर्शन को जाकर उसका लाभ उठाना चाहिये। आज हमारी भूमिका यह होती है कि जब कोई आपदा आती है तभी उसके बारे में पूछने के लिये गुरूस्थान पर जाना है। लेकिन मध्यावकाश में हम पर क्या संकट आने वाले हैं, इसका आभास ये संकट हमें संकटों के पूर्वकाल में नहीं देते हैं। इन संकटों के आपात की तीव्रता मामूली से लेकर मनुष्य के अस्तित्व को नष्ट करने तक भी हो सकती है। इसके लिये जो आसान उपाय गुरूमार्ग से सूचित किया गया है, उसे ही "सत्संग" कहा गया है।

साधक अवस्था की ये तीनों अवस्थायें हमारे पढ़ने में आने पर हम इतना ही विचार कर सकेंगे कि गुरूमार्ग यहां तक ही है, लेकिन इस गुरूमार्ग की तीन अवस्थायें और उन अवस्थाओं तक का जो गुरूकृपाशीर्वाद का कार्य है इस संबध में ही यहां तक उपरोक्त विवेचन हुआ है ये तीनों अवस्थायें प्राप्त होकर साधक में आविष्कृत शक्ति साधक के माध्यम से लोक कल्याण के लिये सेवा के रूप में कार्य करती है। यह सेवा निःस्वार्थ, निरपेक्ष बृद्धि से दो तपों तक करने पर साधक गुरूकृपाशीर्वाद से "कारण" और "महाकारण" इन महान दीक्षाओं को प्राप्त करने के लिये लायक होता है। इसका अर्थ यह है कि, दो तपों तक लोक कल्याण के लिये स्वीकार की गयी सेवा जिस शक्ति

के कृपाशीर्वाद से साधक के देहिक माध्यम द्वारा की जाती उस शक्ति के मूल रूप के साथ यह साधक एकरूप होकर "कारणदीक्षा" और "महाकारण दीक्षा" की अवस्था तक पहुंचने लायक होता है। उदाहरणस्वरूप तीसरी अवस्था का साधक यद्यपि देवदेवता का उपासक होगा, या दत्त उपासक होगा, या नाथ परंपरा का उपासक होगा, तो भी "कारणदीक्षा" में वह साधक जिस शक्तिमाध्यम से कार्य करता है, उस मूल शक्ति के साथ एकरूप होकर वह पूर्णरूप से मूलशक्ति रूप होता है। इस अवस्था के प्राप्त होने पर साधक को यद्यपि अनचाहे अपने अंगीकृत लोक कल्याण के कार्य से अलग होना भी पड़ा, तो भी वह साधक प्राप्त बहुमान से गर्वित न होकर, इस अंतिम साधक अवस्था के प्राप्त होने के पूर्व उनकी जो प्राप्त साधना है वे अपने प्रिय भक्तों में शक्तिरूप में संक्रमित कर और उन्हें अपने कार्य में समाविष्ट कर अपना अंगीकृत कार्य "नियुक्त सेवक" के रूप में उन्हें सौंप देते हैं। इसका अर्थ गुरू ने मार्गदर्शन देना बंद किया है, ऐसा समझ कर आपने नियुक्त सेवक से मार्गदर्शन न लेना गलत है। वास्तव में इस तरह का कार्य करने की परंपरा अनादिकाल से नाथ संप्रदाय में होने से लगातार होने वाले प्रगति अगर यह साधक "यह प्राप्त गुरूसार्थ्य की अमानत मेरे लिये ही है" ऐसा समझ कर इन दो तपों के बाद वह शक्ति अपने में ही निहित रखता है, तो परंपरा के भविष्य में जो कार्य लोककल्याण के लिये निरंतर जारी रखना है यह परंपरा खंडित होकर, इस साधक के अंत के पश्चात उसके इस काल तक ही सेवा और उस सेवा कार्य के लिये प्राप्त सिद्ध साधना साधक के अंत के साथ लोप होती है।

गुरूमार्ग की उपरोक्त दीक्षाविधियों की परंपरा काल्पनिक न होकर, उसका उद्‌गम श्रीनवनाथ परंपरा से चला आ रहा है। ये क्रमशः दी जाने वाली दिक्षायें और उन्हें स्वीकार करने वाला गुरूभक्त एक-दूसरे के बीच कृपाशीर्वाद की लेन-देन है, इसका आस्थापूर्वक विचार कर उसे कार्यान्वित करना चाहिये। लेकिन जो गुरूमाध्यम साध्यावस्था की परिपूर्ति की ओर तक पहुंचा हुआ है उस माध्यम का इहजगत् में अंगीकृत प्रमुख कार्य लोक कल्याण का होता है। इस कार्य के लिये

वह माध्यम मानव जीवन यह विषय अपने अध्ययन तथा कार्य के लिये अपनाता है। इस विषय के अनुसार मानव जीवन में निर्माण होने वाले दुख या तो कर्मों के अनुसार होते है या ऋणानुबंधों के अनुसार होते हैं उसी तरह वे देवादिकों के अनुसार भी होते हैं। दुखों का क्रमशः कर्म के अनुसार निराकरण, ऋणानुबंधोंनुसार निवारण और देवादिकोनुसार आचरण की पद्धति गुरूमाध्यम द्वारा अपनाई जाती है। इस तरह की कार्यपद्धति से उस मार्गदर्शन का लाभ अगर भक्तभाविकों को गुरूमाध्यम से मिलेगा, तो ही उनके उद्धार के लिये या कल्याण के लिये उनको दी जानेवाली दीक्षायें अर्थात् उपासना दीक्षा, गुरूनामस्मरण दीक्षा, अनुग्रह दीक्षा और गुरूदीक्षा जो क्रमशः लेनी होती है, उन दीक्षाओं के अनुसार उन भक्तभाविकों का यथोचित देहिक, आत्मिक व कारणिक विकास होने में कोई भी अवरोध नहीं होगा। ये जो दीक्षायें बतायी गयीं है वह केवल इस समाज में "मैं गुरूस्थान के लिये लायक हो गया हूं या मैं भक्तगणों में आदरणीय हूं", इसलिये दीक्षायें देने की जल्दबाजी साधक को नही करनी चाहिये। प्राप्त अधिकारानुसार दीक्षा देने के पहले साधक ने अपनी जिम्मेदारी पर विचार करते हुये स्वयं को यह प्रश्न पूछना चाहिये कि मेरे भक्तों के ऐहिक कल्याण के लिये और जीवन उद्धार के लिये, मैं जो दीक्षायें अपने भक्तगणों को देनेवाला हूं, क्या उन दीक्षाओं की अनुभूति मुझमे पूर्ण रूप से है या नहीं? ऐसा प्रश्न अप्रत्यक्ष रूप में समाज में बाल अवस्था में कार्य कर रहे साधकों से क्यों पूछा जा रहा है? इसका कारण यह है कि जिन-जिन व्यक्तियों ने समाज के अनेक भक्तभाविकों को दीक्षाविधि में शामिल करा कर, दीक्षायें दी हैं, उनके अच्छे-बुरे अनुभव गत पच्चीस सालों में इस कार्यपद्धति का मार्गदर्शन करते समय आये हैं।

अनेक व्यक्ति जो सुखी और समाधानी रूप में अपना पारिवारिक जीवन व्यतीत कर रहे हो और जीवन में अपने कर्तव्य को स्वीकार करते हुये अपना जीवन सुख और समाधान में व्यतीत कर रहे हो ऐसे कई व्यक्तियो ने इस प्रकार गैर दीक्षा लेने से अपने परिवार तथा कर्तव्य की ओर से मुंह मोड़ कर मानो परमार्थ का राज्यपद हमें इस गुरूदीक्षा से प्राप्त होनेवाला है, इस आशा से बहुमूल्य जीवन का

अनावश्यक रूप से दुरूपयोग किया है। ऐसे अनेक प्रकार दीक्षाविधियों के बाद दीक्षा ले चुके व्यक्तियों के बारे में अनुभव होते हैं। दीक्षाविधि से पहले कभी देव (भगवान) शब्द का उच्चारण भी इनके मुंह से नहीं निकला होता तथा परमार्थ विषय खाने-पीने की चीज है या आचरण के लिये है इस पर भी उन्होनें विचार नहीं किया होता। लेकिन दीक्षा विधियों के बाद चौबीसों घंटे चलते-चलते गुरूदेव दत्त, हरिओम आदि भगवान के नाम की पुकार इनके ओठों पर रहती है। जैसे कि भगवान अपना कर्तव्य छोड़कर इनकी पुकार को सुनने के लिये इनके द्वार पर खड़ा है। इसके अलावा कोई स्नेही, इष्ट दोस्त, सगेसंबंधी मिलने के लिये आने पर एक-दूसरे का कुशल पूछने के बजाय भक्तिमार्ग और परमार्थ इन दोनों विषयों पर बोलने का अधि कार अपने को प्राप्त हुआ है ऐसा आभास निर्माण कर, परिचित व्यक्तियों के आगे इनका अनाहूत वक्तव्य होता रहता है। ऐसे माहौल में दीक्षा बड़ा कि साधक बड़ा या भगवान बड़ा कि बक-बक करने वाला व्यक्ति बड़ा इस तरह का संभ्रम इन व्यक्तियों का वक्तव्य सुननेवाले लोगों को होता है। इसलिये ऐसी दीक्षाविधियों से हर एक को यह सावधानी बरतनी चाहिये कि इस जन्म में हमें भगवान का दर्शन भी नहीं हुआ किन्तु तो भी कम से कम हमारा नुकसान तो नहीं होगा। लेकिन जिस कर्म के लिये जन्म हुआ है, उस कर्तव्य को न निभाकर वह व्यक्ति यदि भगवान की ओर परमार्थ की खोज करने के प्रयास में अपना जीवन व्यतीत करेगा तो भावी पीढ़ियों को, ऐसे भक्तों ने इस प्रकार भगवान की खोज करने में अपना जो जीवन खर्च किया है उनका दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है।

दीक्षाविधि का विस्तार से खुलासा आपको ज्ञात हो इसलिये अनुभवसिद्ध पद्धति से निवेदन किया गया है। इसके अलावा जिस उपासना का उल्लेख ऊपर किया गया है, उसकी पुनश्च यहां पर जानकारी उपलब्ध करा देने से, उसका कारण अधिक सुस्पष्ट होगा इसलिये पुनः उसी दीक्षाविधि के संबंध में मार्गदर्शन किया जा रहा है।

पहले दी जाने वाली उपासना दीक्षा का हितसंबंध आपके घराने की परंपरागत कुलदेवताओं से संबंधित है। जब हम अपने घर में कोई धार्मिक विधि करने का निश्चय करते हैं, उस विधि के प्रारंभ में पहले हम अपनी इष्ट कुलदेवता के सामने नारियल, पान (खाने के पान के दो पत्ते) सुपारी और दक्षिणा के तौर पर पैसे रख कर घर में होने वाले विधि के लिये कृपाशीर्वाद मांगते है। उसी प्रकार भविष्य में जिन दीक्षाओं का आप क्रमश: स्वीकार करने वाले हैं, उन गुरूदीक्षाओं को स्वीकार यद्यपि गुरूमाध्यम से करना है, तो भी उससे पहले अपने कुलदेवताओं से कृपाशीर्वाद लेना आवश्यक है। इन उपास्य देवदेवताओं के दीक्षाविधि का संस्कार अपनी काया पर होना महत्वपूर्ण है।

उसके बाद की दीक्षा गुरूनामस्मरण दीक्षा है। इसका हितसंबंध यद्यपि गुरूतत्व से है तो भी यह दीक्षा गुरूतत्व से संबंधित न होकर, अपनी वाणी से संबंधित है क्योंकि वाणी का धर्म यद्यपि शब्द रूप में अपने विचार व्यक्त कर उनका भाव (मतलब) दूसरों की समझ में आ जाये तो भी इस वाणी माध्यम के विषय के अनुसार होने वाली जो क्रिया है, उन क्रियाओ का हितसंबंध परा, पश्यंति, मध्यमा, वैखरी आदि से होता है। ये स्वाभाविक क्रियाएं और उनकी अनुभूति क्रमश: अगली दीक्षांतविधि में अनुभव होती है लेकिन उससे पहले इस वाणी को उन क्रियाओं का परिचय करा देने के लिये नामस्मरण दीक्षा दी जाती है। उसका हितसंबंध गुरू के साथ न जोड़कर वह अपनी वाणी से है, इस प्रकार निश्चय कर, गुरूदीक्षा के समय जो नामस्मरण करना है, वह कितनी बार दोहराना है, यह बताया जाता है। लेकिन इस आदेश को हम जान-बूझकर अनदेखा करते हैं। वैसा न कर, वाणी को स्वाभाविक क्रिया प्राप्त करा देने के लिये यानि वाणी सिद्ध करने के लिए यह दीक्षा है, यह गर्भित अर्थ ध्यान में रखना चाहिये और यह दीक्षा यानि गुरूकृपाशीर्वाद की प्राप्ति ही है, ऐसा नही समझना चाहिये।

अनुग्रह दीक्षा के बारे में सुनने और पढ़ने में आने पर हम इसका यह अर्थ लगाते हैं कि, जो हमारा गुरूमाध्यम है, वह माध्यम जिस गुरूपरंपरा का है, उस परंपरा की दीक्षा को स्वीकार हम ने किया है। उदाहरणार्थ, हमारा गुरूमाध्यम नाथ परंपरा या दत्तपरंपरा का है, इसलिये

अनुग्रह दीक्षा विधि स्वीकार करने पर हम नाथपंथी के या दत्तपंथी हो गये, ऐसा नहीं है। यह जो दीक्षा है उसका संस्कार मन पर किया जाता है। क्योंकि मन का कार्यकारणभाव और इस जन्म में देह के अनुसार उसका कार्य, जन्मकर्म और जन्मजन्मांतर से संबंधित है। इसलिये कई बार यह अनुभव होता है कि, कोई बात जब अधिक तीव्रगति से करने की इच्छा होती है, तब थोड़े बहुत अंश में वह न की जाये इस तरह का भी संकेत मन में सूचित होता है। पहली अवस्था का संकेत जन्म कर्म के अनुसार होता है, और उसमें यश नहीं मिलेगा इसका एहसास जन्मजन्मांतर को होने से, उसकी ओर से पहली अवस्था की प्रतिध्वनि न मिलने से एहसास के रूप में यह संकेत देहमाध्यम की ओर भेजा जाता है। इन दोनों अंदाजों से हितसंबंधित मन साधक अवस्था में एक ही विषय के साथ एकचित्त होना आवश्यक होता है, इसलिये यह अनुग्रह दीक्षाविधि मन पर किया जाता है।

इस तरह की साधक अवस्था में महत्वपूर्ण दीक्षाविधि और जिसका संस्कार मन पर होना आवश्यक है यह साधन परंपरा पढ़ने या सुनने में यद्यपि आती है, तो भी प्रत्यक्ष रूप में उसे कार्यान्वित करना अत्यंत कठिन है क्योंकि मन यह माध्यम जिसका हितसंबंध देह के साथ जोड़ा जाता है इस मन की स्वाभाविक अवस्थायें कितनी हैं, इसकी पहचान आज तक किसी साधक ने कर दी होंगी, ऐसा नहीं लगता। मन व्यक्त और अव्यक्त क्रियाओं द्वारा कार्य करता हैं। मन की व्यक्त अवस्था स्थूल देह की ओर होती है, जन्मकर्म के अनुसार यह देह जो हमेशा विषयाधीन होने का प्रयत्न करता है, उसे केवल आवश्यक इतना ही विषयाधीन होने का धर्म प्राप्त हो, इसलिये स्थूल मन उस पंचभौतिक शरीर को वैचारिक रूप में विषय से परावृत्त कराने का संकेत देता रहता है। वह इसलिये की देहिक धर्म विषयाधीनता की ओर झुकता है तो भी देह आवश्यकता से अधिक विषयाधीन होगा तो देह द्वारा करने के प्राप्त कर्तव्य सफल नहीं होंगे।

मन की अव्यक्त अवस्था यानि सूक्ष्म मन इसका संबंध जन्मजन्मांतर से होने से उसका अव्यक्त कार्य कारण देह से होता

है। हम जो पूजन आदि विधि करते हैं, वह क्रिया देहधर्म के अनुसार होती है। किन्तु हम जो पूजा करने की क्रिया करते हैं, उसे "पुण्य" नहीं कहा जायेगा। जिस भावभावना से यह क्रिया देह के माध्यम से की जाती है, उससे पहले उस क्रिया से संबंधित भाव-भावना हममें निर्माण होती है हममें स्थित सूक्ष्म मन या जिसे हम "अन्तर्मन" कहते हैं, उसके माध्यम से इन भाव-भावनाओं की निर्मिती होती है। इस तरह भावनात्मक क्रिया की पूज्यता से, यह पूजनादि विधि करने पर, वह भाव अव्यक्त रूप में सूक्ष्म मन में समाहित होकर, वह आगे कारण देह में समाहित होता है। इस तरह के देह द्वारा होने वाली क्रिया को "पुण्यसंचय" कहा जाता है। इस प्रकार आपने अंगीकृत अनुग्रह दीक्षा को कुछ समय तक उचित रूप में आचार-विचारों में लेकर जब गुरूमार्गदर्शन के अनुसार आप सेवा करते हैं उसके पश्चात् अपने जीवन का जो काल सेवासाधन में व्यतीत किया होता है और उसके कारण देह में पुण्यसंचय किया होता है, यह पुण्यसंचय यद्यपि अपने भावी जन्म के लिये करना होता है, तो भी इस पुण्यसंचय का लाभ अन्य लोगों के कल्याण के लिये करने का आप विचार करते हो, तो प्राप्त पुण्य से अधिक पुण्य इस सेवाव्रत से प्राप्त होता है। इस तरह साधन मार्ग से संचित किया हुआ पुण्य, यद्यपि आप ऐच्छिक विषय के रूप में प्राप्त करने का प्रयास करते हैं तो भी उसका लाभ यदि स्वयं को, या परिवार के अन्य लोगों को, इस जन्म में आपको करा देना चाहिये हो तो उसके लिये प्राप्त पुण्य योग्य साधक द्वारा करना होता है। यदाकदा इस जन्म में संचित पुण्य सिद्ध करा कर आप उसे कार्यान्वित नहीं कर पाये तो वह पुण्य अगले जन्म में आपके काम आयेगा। इस तरह प्राप्त पुण्य सिद्ध होकर, उसके उचित लाभ के लिये जो प्रथम दीक्षा, उपासना दीक्षा है, वह आपके इष्ट देवदेवताओं से संबंधित होने से आपके जीवन के प्रारंभ में आपको सुख, शांति, समाधान प्राप्त कराया जाता है। अगर प्रथम अवस्था में उसका लाभ प्राप्त नहीं हुआ तो, अगली दीक्षायें जो जीवन के उद्धार के लिये हैं, उनके लिये जो पुण्यसंचय आवयश्क होता है उसे भी

प्राप्त करने के लिये पारिवारिक परिस्थिति पर्याप्त रूप में समाधानकारक न होने से आपको योग्य अवसर नहीं मिलता है। गुरूमार्गदर्शन के अनुसार अपनी प्रगति होने के लिये आप गुरूमार्ग में देवदैविक उपासना दीक्षा से लेकर अनुग्रह दीक्षा विधि तक का जो काल भगवान की सेवा में तथा चिंतन में व्यतीत करते हैं, उस काल में जो पुण्यसंचय आपकी सेवा से आपको प्राप्त होता है यह पुण्य सिद्ध करा कर कार्यान्वित करने के लिये दी जाने वाली दीक्षा "गुरूदीक्षा" है।

गुरूमार्ग की दीक्षाविधियों का लाभ जिन भक्तभाविकों को करा दिया जाता है या जो इनका लाभ उठाते हैं, उनको उनकी देहिक अवस्था में क्या परिवर्तन हुआ है इसका ज्ञान होना महत्वपूर्ण है। अपने स्थूल मन तथा बुद्धि का देह से जो हितसंबंध है और जो हितसंबंध कर्म के अनुसार जीवन में व्यतीत होता है, वह योग्य कारण के अनुसार व्यतीत हो, इसलिये स्थूल मन और बुद्धि इन दोनों माध्यमों में संतुलन निर्माण होना आवश्यक है इसलिये ये पहले दो दीक्षा विधियों का प्रयोजन है। अनुग्रह दीक्षा विधि में सूक्ष्म मन और सूक्ष्म बुद्धि या मस्तिष्क का पिछला भाग इन दोनों का कार्य जो योग्य रूप से जीवन में होना आवश्यक है उसे बनाया जाता है। इन माध्यमों का साधक अवस्था में बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य कारणभाव है। उसकी जानकारी न होने से इस ओर हमारा ध्यान नहीं जाता है। कारणवश दीर्घकाल तक भिन्न-भिन्न देवदेवताओं की, उपास्य देवताओं की, तथा गुरू की सेवा मन से की, तो भी उसकी आत्मिक अनुभूति अनुभव नहीं होती हैं। जो गुरूदीक्षा विधि भक्तों के कल्याण के लिये किया जाता है, इस दीक्षा विधि के पूर्णत्व का अनुभव "समाधि अवस्था" के रूप में अनुभव होता है। इस तरह की समाधि अवस्था का कार्यान्वित होने वाला कार्यभाग यानि, कारणदेह के साथ जो ईश्वर विषय धारण हुआ है, उसके साथ जब सूक्ष्म मन तथा सूक्ष्म बुद्धि सहाकार होते हैं। तब देहिक अस्तित्व का विलय होकर कारण अवस्था मे कारणदेह में जो भगवान विषय है, वह साक्षात्कार के रूप में स्थिति देह माध्यम में साकार होता है। उस समय देह की स्थिति विलुप्त होकर, ईश्वरी

विषय में देह पूरे रूप से एकरूप होता है। इसी अवस्था को "समाधि" अवस्था कहते हैं। प्राप्त गुरूदीक्षा और उस दीक्षा की आत्मप्रचीति इनके द्वारा समाधि अवस्था तक ले जाने का साधन यद्यपि उस गुरूदीक्षा विधि में है, तो भी इस दीक्षाविधि को स्वीकार करने पर मार्गदर्शनानुसार हम अपने आचार-विचार इस दीक्षाविधि को पोषक हो, इस तरह से रखकर, अगर सूचित साधन उचित समय और उचित रूप से करेगें, तो ही हमें जो दीक्षाविधि जिस संप्रदाय परंपरा से प्राप्त हुई है, उस संप्रदाय परंपरा में हम उस संप्रदाय के गुरूभक्त बने हैं, यह सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ दत्त संप्रदाय या नाथ संप्रदाय।

इन दीक्षाओं का परिपूर्णत्व प्राप्त हुए साधक की प्रगति समाधि अवस्था तक होती है, ऐसा पढ़ने पर स्वाभाविक रूप से आप भक्तों के मन ऐसा प्रश्न उठेगा कि यदि यह साधना इतनी आसान और सुलभ है, तो जो साधक इस अवस्था तक और इससे भी आगे पहुंचे हैं, उनकी समाधि लगती है या नहीं, और वह लगने पर कितने काल तक होती है? समाधि अवस्था में जाने पर अपना खुद का और दुनिया के अन्य विषयों का विस्मरण हमें होना ऐसा इसका अर्थ न होकर, दीक्षाविधि के बाद कारण देह में जो पुण्यसंचय आपने कर रखा है, उस पुण्यसंचय को "सिद्धावस्था" प्राप्त होने पर उस सिद्धावस्था के कार्य के लिये प्रधान विषय के रूप में "गुरूआज्ञा" होनी होती है। ऐहिक जीवन में हमारे बोलचाल में अमुक-अमुक ने अमुक अमुक करना चाहिये, ऐसा कहा जाता है उसे भी आज्ञा कहा जाता है। लेकिन वास्तव में आज्ञा जो शब्द है, वह ध्वनि रूप में साधक के सुनने में न आकर जब सूक्ष्म बुद्धि और सूक्ष्म मन कारण देह के साथ एकरूप होते हैं और वहां का पुण्य इस दीक्षाविधि के पश्चात् जब सिद्ध होता है तब भगवान का अस्तित्व यद्यपि साकार होते हैं और बाद में वे उस साधक को इसका ज्ञान वैचारिक रूप में देते हैं। इसी को प्रेरणा कहते हैं इस प्रेरणा के अनुसार जो साधक गुरू अंकित होकर, गुरू आज्ञानुसार जीवन के अन्य विषयों को गौण मानकार गुरू विषय को ही प्रधानता देता है, उस साधक की क्रिया को "आज्ञा"

कहते हैं। इस तरह आज्ञा और प्रेरणा को प्रधान विषय के साथ एकरूप कर जब साधक "माध्यम" बन कर कार्य करता है, तब किये गये कार्य का एहसास देहिक अवस्था को कदापि नही होता है। जब ऐसी स्थिति होती है, उस समय साधक प्रधान विषय के अनुसार जो सेवा अपनाता है, उस सेवा का समाधान किसी भी ऐहिक विषय से नहीं होता; ऐसे सात्विक और शुद्ध समाधान में वह साधक स्थितप्रज्ञ होता है। यह अवस्था प्राप्त करना ही समाधि अवस्था है।

उपरोक्त चार दीक्षाविधियों के पश्चात् साधक सिद्धवस्थाप्रज्ञ जाता है इस सिद्धावस्था तक का काल अपने दैहिक, आत्मिक और कारणिक अवस्थाओं का विकास करने के लिये और योग्य विषय के अनुसार कार्यान्वित करने के लिये, उसका लाभ प्राप्त होने पर सिद्धावस्था के साधक ने अपने जीवन के प्रति अहंभाव न रख कर जिस भगवान की कृपा से वह इस पद तक पहुंचा है, उसका अवधान रखकर ऐहिक जगत् में अपने परिसर में आने वाले अनेक-विद् विषयों से दूर रहकर प्राप्त कृपाशीर्वाद का लाभ निरपेक्ष और निःस्वार्थ बुद्धि से देकर, बहुसंख्य भक्तों के जीवन में भगवान धर्म, इष्ट कर्तव्य तथा प्राप्त जन्म का उद्धार इन विषयों के संबंध में जो अज्ञान है, उसको निरस्त कर उचित शिक्षा देकर, उनको इस भक्तिमार्ग के साथ एकरूप करा लेना चाहिये। ये सेवा करते समय, अपने को कृपाशीर्वाद देते समय भगवान ने अपने में स्थित कम-ज्यादा दोषों की ओर ध्यान न देकर यह साधक मेरा एक भक्त है और उसका उद्धार मुझे करना है इस सहानुभूतिपूर्वक सूझबूझ से मुझे कृतार्थ किया है, तब हमने अंगीकृत की हुई सेवा कृतार्थ भाव और भावना द्वारा संसार को परिचित होना आवश्यक है ऐसी भावना रखनी चाहिये।

इन चार दीक्षाविधियों के उपरांत साधक को प्राप्त होनेवाली सिद्धावस्था के कारण मनुष्य के जन्म के जो हितसंबंध ऋणानुबंधों के अनुसार इहलोक के साथ होते हैं, उनसे वह मुक्त होकर, गुरूऋण के साथ हितसंबंधित होता है। ऐसे समय अगली अवस्थायें यानि "कारणदीक्षा" और "महाकारण दीक्षा" का लाभ प्राप्त करने के लिये उसका देहिक

माध्यम विकसित होता है। आज हम मानवों को प्राप्त जन्म कर्माधीन होने से संपूर्ण जीवन कर्म के अनुसार ही व्यतीत करना होता है। लेकिन कारण दीक्षा से महाकारण दीक्षा तक जो काल साधक के जीवन में भावी जन्म का कार्यकारणभाव प्राप्त करने के लिये है, ऐसे समय कारण अवस्था की दीक्षा प्राप्त कर वह सिद्ध होने तक अमर साधक इस साधन के बारे में कृतार्थ रहेगा, तो भावी जन्म कर्म के अनुसार न होकर इच्छा के अनुसार होगा। इस तरह का जन्म कोई व्यक्ति प्राप्त करता है, तब उसकी बाल अवस्था से ही उसमे स्थित ईश्वरी तत्व का अनुभव होने लगता है, पूर्वजन्म के अनुसार ऐसी अवस्था प्राप्त कर, ऐसा साधक पुनः इच्छा जन्मी होने के बाद पूर्वजन्म की कारण दीक्षा के अनुसार उसे इष्ट प्रेरणा होकर, वह पुनः वही गुरूसेवा के व्रत को धारण करता है। ऐसी अवस्था में आत्मिक और कारणिक अवस्था पूरे रूप से विकसित होती है तो भी दुनिया को अपने जन्म लेने की जानकारी हो, इसलिये उन्हें पंचभौतिक देह माध्यम की जरूरत होती है। इस अवस्था में यद्यपि उन्होंने पंचभौतिक देह का माध्यम कार्य के लिये अंगीकृत किया, तो भी गुरू प्रेरणा के अनुसार उस देह को भी वे अपनी सेवा से सिद्धवास्था प्राप्त करा देते हैं। इसके कारण उन्होनें धारण की दैहिक अवस्था वे जन्म से ही सिद्धावस्था के रूप में कार्यान्वित कर सकते हैं। ऐसी अवस्था को "ईश्वर स्वरूप अवतार" कहते हैं।

उनकी यह दैहिक स्थिति इहलोक में सामान्य मनुष्य जैसे ही कार्यकारी है यह महसूस होने से उनमें जो प्रखर शक्ति निवास कर रही है, उसका ज्ञान उनके परिचित भक्तों को न होने से, ऐसे सिद्धपुरूष हमारे कल्याण के लिये इहलोक में मानव रूप में आकर भी, हमारी मानवी दृष्टि को उनके जन्म की गूढ़ता देह में निहित शक्ति की भव्यता तथा पूरी दुनिया के दुखी लोगों को अपने में समाहित कर, जो दुखी हैं उनका दुख अपना ही दुख है, इस तरह भक्तियुक्त सहिष्णुता, जिस से वे दुनिया के कल्याण के लिये अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इसका ज्ञान आपको नहीं होता है, उनका यह निःस्वार्थ,

निरपेक्ष सद्हेतु ईश्वरी प्रेरणानुसार यद्यपि भगवान स्वरूप होता है, और उनकी बोलचाल सामान्य मनुष्य जैसी आपको अनुभव होती है, तो भी उनके भक्तों के बारे में आचार विचार ब्रह्मस्वरूप होते हैं। हमारा देह कर्मबंधन से जकड़ा होने के कारण, आप में विचार-अविचारों, की इच्छा वासनाओं का, द्वैवत सदैव जारी रहता है। इसलिए यद्यपि कोई कष्ट न उठाते हुए भी अनजाने में पूर्वजन्म के कुछ पुण्य की कृतज्ञता के कारण ऐसे ईश्वरस्वरूप अवतार पुरूषों का लाभ आपको हुआ, तो भी आप अपने अज्ञान से उसे खौ बैठते हैं। ईश्वर को आपके कल्याण के लिए अंगीकृत की हुई यह एक अपूर्व ऐसी योजना होने पर भी उसका यथोचित लाभ हम प्राप्त नहीं कर सकते हैं। यह कारण दीक्षा अवस्था जैसी इच्छा जन्मी होती है वैसी ही यह इच्छामरणी भी होती है। ऐसे संतपुरूषों को अपना इष्ट कार्य इस संसार में क्या है तथा कितने काल तक है इसका बोध होने के बाद वे उस काल तक अपना जीवन व्यतीत कर अल्पकाल में ही इस संसार से बिदाई ले लेते हैं। कई बार ऐसा कहा जाता है कि अधिकारी व्यक्ति होने पर भी वे अल्पायुषी कैसे होते हैं? किन्तु उनकी वह अल्पायु तथा उनका सामर्थ्य आप जैसे सामान्य जन्म लेने वालों के जन्मकर्म बंधन के परे होते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से ऐसा कह सकते हैं कि हमने लिये दीर्घकाल के सात जन्मों की आयु अधिकारी व्यक्तियों के एक जन्म के बराबर होती है। इतना तात्विक भेद इनमे है। इसलिए इष्टकार्य के सफल होते ही अगली अवस्था प्राप्त करा लेने के लिए तथा अगले कार्य की योजना ईश्वरी प्रेरणा से अंगीकारने के लिए वे अल्पकाल में ही इस संसार से जुदा होते हैं। इसी में उनके जन्म की सार्थकता है। हमें दीर्घकाल तक जीने का और दीर्घायुषी होने का जो मोह होता है इसका कारण यह है कि हमारे जन्म लेने का कर्तव्य कारण क्या है इसकी समझ किसी भी जन्म में न होने से कर्मो के अनुसार सुख की निर्मिती कर, तथा उसका उपयोग लेकर भविष्य के जन्मों के लिए नए दुखों की निर्मिती करना इतना ही हमारे जन्म का कार्य है। इसलिए हमें यद्यपि दीर्घायु प्राप्त हुई तो भी जब तक प्राप्त जीवन

की सफलता नहीं होती तब तक ऐसे दीर्घायु की तनिक भी शोभा नहीं होती। सिद्धावस्था का पूर्णत्व होने तक ही प्राप्त की हुई दीक्षाएं मानवी स्वरूप में निहित परमात्मा के कृपाशीर्वाद का लाभ है। किन्तु कारण दीक्षा से महाकारण दीक्षा तक का जो काल साधक के जीवन में व्यतीत होता है, उस दौरान मिलने वाली ये दो महान दीक्षाओं से उस साधक का जो गुरूतत्व होगा, वहीं गुरूतत्व उसे यह दीक्षा देता है।

आप भक्तों के जीवन में ऊपर उल्लेखित सिद्धपुरूषों के कार्य का लाभ लेने का सुयोग आया भी होगा या आगे-पीछे कभी आयेगा। लेकिन जो सिद्धस्वरूप सत्पुरूष हैं, उनके सामने क्या इच्छा व्यक्त की जाये, इसका ज्ञान न होने से आपने अपना जीवन जो केवल ऐहिक सुख भोगने का प्रपंच बना रखा है इस अन्यमनस्क जीवन को सुसूत्रता में लाकर और ज्यादा ऐहिक सुख किस तरह से मिलेगा यह इच्छा मन में रखकर आप इन सिद्धपुरूषों के दर्शन के लिये या कृपाशीर्वाद पाने के लिये जाते हैं। हम मानवों का जन्म जिस कर्म के अनुसार हुआ है, उसमे ऐहिक सुख कम-ज्यादा प्राप्त होना स्वाभाविक है। लेकिन जो परमार्थ प्राप्त करने के लिये अनेक जन्मों तक मनुष्य का जन्म लेकर भी उसे वह प्राप्त नहीं होता है वह मुझे किस तरह प्राप्त होगा और आप अपने कृपाशीर्वाद से कृतार्थ कर क्या उसका लाभ मुझे देंगे "इस तरह की नम्र भावना की इच्छा कोई भी भक्त की वाणी से भूल से भी प्रकट नही होती"। इसका कारण सिद्धपुरूषों का सामर्थ्य कितना है, यह जानने और पहचानने में आज आप असमर्थ हैं। अगर उनके सामर्थ्य की पहचान दिलानी हो, तो ऐसा कह सकते हैं कि आपके जीवन में ऐहिक अपेक्षापूर्ति करने से लेकर जन्म-मृत्यु बंधन से मुक्त करने तक का सामर्थ्य उनमे होता है। ऐसे सामर्थ्य का लाभ होकर भी आप अपना जीवन सद्गुरू को बहाल करने को तैयार नहीं होते। कई बार हमारे पढ़ने में आता है कि किसी अवतारी पुरूष ने अपने भक्त को उसकी अल्पायुष्य टालकर उसे दीर्घायुष्य प्रदान किया। इस तरह का असामान्य चमत्कार वे सहजता से दिखवाते हैं। उनका यह सामर्थ्य नियति के सामर्थ्य पर भी मात कर देता है। जब आप भक्तो के जीवन में अकस्मात् मृत्युयोग, दुर्घटना या जन्मकर्म

के अनुसार अन्य संकट आते हैं, तब आपकी देहिक स्थिति इस तरह की होती है कि आपके जन्मकर्म और जन्मजन्मांतर या तो एक-दूसरे से अलग होने के मार्ग पर होते हैं या पूरे रूप से अलग हुये होते हैं। ऐसी स्थिति में इन दोनों अवस्थाओं में जो दरार पैदा होती है वह दरार यानि इन दोनो ऋणानुबधों में एक-दूसरे से सबंध न होना है। ऐसे समय उस व्यक्ति की दुर्घटना में मृत्यु या अपमृत्यु आदि संकटों को उसके परिवार के लोगों को सहने पड़ते हैं। यह दरार यद्यपि हमें महसूस नहीं होती है तो भी सिद्धपुरूष उसे निश्चित रूप से जान लेते हैं, और अपने कृपाशीर्वाद के सामर्थ्य से यह दरार मिटाकर दोनो ऋणानुबधों को कृपाशीर्वाद के साथ एकरूप करते हैं। इस तरह जब हम संकटमुक्त होते हैं सब यह क्षण अपने जीवन का पुनर्जन्म ही है, यह सुविचार कर भावी जीवन ऐहिक विषयों की सेवा में ऐहिक विषयों के साथ रहकर ऐहिक सुख प्राप्त करने के लिये उनके अधीनस्थ होना है या जिस कृपाशीर्वाद से आपके पुनर्जन्म मिला है उसे गुरूचरणों में समर्पित करना है यह ज्ञान जिस सूज्ञ भक्तभाविक को होगा, और उसका जो जीवन सद्‌गुरू कृपाशीर्वाद से पुनर्जीवित हुआ है उसे भावी जीवन में वह भक्तभाविक ऐहिक विषयों से मुंह मोड़कर गुरूपद से एकरूप होगा, तो कृतार्थ होने का इस प्राप्त जन्म का जो उद्‌देश्य है उसकी प्राप्ति के लिये भविष्य में प्राप्त होने वाले साधारणतः तीन जन्म और कर्म के अनुसार भुगतने की यातना से वह मनुष्य मुक्त होकर गृरूकृपाशीर्वाद से प्राप्त जीवन में वह कृतार्थ प्राप्त करता है।

इसके बाद की दीक्षा महाकारण दीक्षा है। उपरोक्त निवेदित कारण दीक्षा तथा महाकारण दीक्षा का लाभ साधक को प्रत्यक्ष रूप से भगवान से ही होने से पहली अवस्था में यानि कारण दीक्षा में भगवान स्वरूप होकर दुनिया के कल्याण का कार्य स्वीकारना है। इस कार्य का पूर्णत्व ही कारण दीक्षा की पूर्तता है। इसके बाद जब साधक को महाकारण दीक्षा प्राप्त होती है उस समय वह इस धरती पर इच्छा जन्मी तथा इच्छा मरणी के रूप में नहीं आता है। उसका इस दुनिया में जन्म लेने का हेतु उसके अधीन न होकर भगवान के अधीन होता

है। कई बार हम ऐसे सिद्धपुरूषों के जन्म के उत्पत्ति की मीमांसा करने का या उसकी खोज करने का प्रयत्न करते हैं। उसी प्रकार उनका इष्ट कर्तव्य पूरा होने पर जब वे समाधि लेते हैं उस समय भी उसकी खोज करना हम कर्माधीन मानव छोड़ते नहीं है। लेकिन इस ईश्वरी तत्व का न आदि और न अंत होता है। ऐसे तत्वों की खोज करने में समय नष्ट करने की बजाय, उसका जो लाभ इस दुनिया को हुआ है उस पर समाधान मान कर निरंतर उनके चिंतन में हम कैसे रहेंगे, यह सोचना चाहिये। उनकी यह दैहिक अवस्था यद्यपि मानव रूप में चर्मचक्षुओं को अनुभव होती है, तो भी अखिल ब्रम्हाण्ड का लिप्त की हुई जो अद्भूत शक्ति अदृश्य होकर भी हर क्षण चेतन है वह शक्ति इन सिद्ध पुरूषों के देहिक शक्ति के परे उनके कार्य के पीछे सदैव सिद्ध रहती है। ऐसे सिद्धपुरूषों को "परेमश्वर अवतार" कहते हैं। उनके देहिक स्थिति का कार्य उनकी बाल अवस्था से यानि साधारणत: आयु के आठवें वर्ष से ही शुरू होता है। जिस उम्र में हमारे बाल बच्चों को खाने-पीने का भी ज्ञान नहीं होता है उस उम्र में सिद्धसाधक अवस्था के बालक बड़े ही हर्ष से ब्रह्मलीला दिखाते रहते हैं। इस तरह का यह अवतार कार्य भगवान ने हमारे मानव कल्याण के लिये कितना सिद्धसाधन, शास्त्रीय और अनुभवसिद्ध पद्धति से आयोजित किया है इसका अगर हम विचार करेंगे तो हमारी बुद्धि यह विचार करने में असमर्थ होने से दंग रह जाती है।

आज दुनिया में अनेक व्यक्तियों को प्राप्त जीवन में पारमार्थिक सुख की धरोहर प्राप्त हो ऐसी इच्छा होती है। ऐसे व्यक्तियों समाज के साधक अवस्था के व्यक्तियों की ओर मार्गदर्शन के लिये जाने पर ये साधक, जिन्होंने अधिकार न होते हुये भी, समाज में "गुरू" रूप में मान्यता प्राप्त की है, वे आने वाले व्यक्तियों को कठिन साधनों का अवलंब सेवा के रूप में अनेक वर्षों तक करने को सूचित करते हैं। लेकिन सच्चे गुरूमार्ग में कोई व्यक्ति पारमार्थिक सुख का लाभ हो इस इच्छा से आती है, तब उस व्यक्ति के जीवन परिसर में जो कुछ दूषित वलय होते हैं, उनका पहले विमोचन किया जाता है। इन दूषित वलयों को उपरोक्त वर्णित गुरूपरंपरा के लोग पहचानने में असर्थ

होने से यद्यपि उन्होंने कुछ जाप, तप आदि साधन करने को कहा तो भी उस व्यक्ति को लाख जाप करने पर भी "साधक-सिद्ध-साध्य" इन अवस्थाओ में से पहली यानि साधक अवस्था भी प्राप्त नहीं हो सकती। इसका कारण पूर्वजन्म के अनुसार या जिस घराने में हम जन्म लेते हैं, उस घराने के दोष जन्मप्राप्ति के बाद भी हमारे साथ होते हैं, और ये दूषित वलय अदृश्य रूप में होने पर भी कम-ज्यादा रूप में प्रखर होते हैं। इसलिये यद्यपि हम पारमार्थिक सुख का लाभ लेने के लिये मार्गदर्शन के अनुसार साधना शुरू करते हैं, तो भी साधक अवस्था की यह प्राथमिक अवस्था होने के कारण, जो दोष अनेक जन्मों से और पीढ़ियो से धारण किये हुये हैं, वे हमें जो साधन हम कर रहे हैं, उसको फलप्रद नहीं होने देते हैं। इसलिये गुरू के मार्गदर्शन का लाभ प्राप्त करने जो जाते हैं, उनको साधनसेवा करने के पूर्व उनकी देहिक अवस्था के परिसर में जो प्रतिकूल वलय होते हैं, उनका प्रथम विमोचन करने की जिम्मेदारी गुरू की होती है। इसके साथ ही देहिक माध्यम से होने वाली साधना साकार हो ऐसी इच्छा मार्गदर्शन लेने वाले व्यक्ति की होती है उस व्यक्ति के देहिक माध्यम का इष्ट विकास कौन से साधन पद्धति से यानी दीक्षांत विधि के अनुसार होगा, यह भी साधन इस गुरूमार्ग के व्यक्तियों को प्राप्त होना चाहिये। इसलिये जिस दीक्षा माध्यम से भक्तगणों का देहिक विकास करना होता है, ऐसी दीक्षाये पहले गुरूमार्ग के व्यक्तियों को संकल्प से सिद्ध करनी होती है। ऐसे संकल्प से जब ये दीक्षाये सिद्ध होती है और भक्तगणों को दी जाती है तब इन दीक्षाविधियों के संकल्प भक्तों के देहिक माध्यम में अनभिज्ञ रूप में कार्यरत होकर उनके देहिक माध्यम का विकास इन दीक्षाओं के अनुसार होता है। केवल दीक्षा देने के जिम्मेदारी की लेन-देन जब गुरू शिष्य में होती है, तब फलाने गुरू से हमने दीक्षा ली है इतना ही गुरू के नाम का ढिंढोरा पीटने के अलावा उससे कोई भी अवस्था प्राप्त नहीं होती है।

सत्पुरूषों के कार्य :

आज भारत में भूतकाल के अनेक अवतारी पुरूषों की समाधि यां "तीर्थक्षेत्र" के रूप में विद्यमान है। अनेक भक्तभाविक इन तीर्थक्षेत्रों

में वर्षों से जा रहे हैं और उन समाधियों की मन से सेवा कर रहे हैं। लेकिन इन अवतारी पुरूषों ने भगवान की आज्ञा से यह जो कार्य इस दुनियां में "ईश्वरी कार्य" के रूप में किया है, इनमें ब्रह्मांड शक्ति का कोई एक विशिष्ट गुण तन्मात्र रूप में (यानि शब्द, स्पर्श रूप, रस, गंध) धारण हुआ होता है। इन गुणों में से कौन सा निश्चितगुण हमें प्राप्त होने के लिये हमारे देहिक और आत्मिक तत्व पोषक है, इस बात का साधन मार्ग का अवलंब करने से पूर्व अनुभव लेना चाहिये। केवल देह से वर्षो तक इन तीर्थक्षेत्रों का लाभ लेने से अपनी पारमार्थिक उन्नति होगी ही ऐसा नहीं है। इसका स्पष्ट और अनुभव हुआ एक उदाहरण यह है कि आज अपने समिति के कार्यकेद्रों पर श्री सद्गुरू पंत महाराज ने जिन पदों गीतों की शब्द रचना की है वे गीत सुनते समय हमारे शरीर में प्रत्येक शब्द के अनभिज्ञता से स्पंदन उठते हैं। इसका अनुभव सब ने लिया है। इसका कारण दत्तपरंपरा के इन अवतारी पुरूषों में "शब्दब्रह्म" का आविष्कार हुआ है। इसलिये उन्होंने जो श्ब्द रचना श्री गुरूदत्त को समर्पित की है वह हरएक शब्द साक्षात् पर ब्रह्म है और वह हमारी वाणी से जब गाया जाता है तब अनभिज्ञ रूप से परिसर में शब्द ब्रह्म के स्पंदन उठते हैं, और उन स्पंदनों के वलयों में हमारा चित्र तल्लीन हो जाता है। हम भक्तों को इन बातों का योग्य विचार कर, केवल अवतारी पुरूषों की समाधियां अस्तित्व में है, इसलिये वहां जाना उचित नहीं।

प्रत्येक अवतारी परंपरा के सत्पुरूषों का धर्म यद्यपि कृपाशीर्वाद देने का है तो भी अवतार कार्य में उनका जो प्रधान गुणधर्म ब्रह्मस्वरूप होकर उनमें था, उसे हम मानवों के कल्याण के लिये वे इहलोक में छोड़ गये हैं। ब्रह्मांड की उत्पत्ति जैसे पंचतन्मात्र से हुई है, उसी प्रकार मानव देह की धारणा भी पंचतन्मात्राओं से युक्त होने से जब हम अवतारी परंपरा के सत्पुरूषों के दर्शन का लाभ जोड़ते हैं, तब उनमें ब्रह्मरूप में जो तन्मात्र गुण था, वह गुण हमारे देहिक अवस्था के तन्मात्र में धारण हुआ तो जो दैहिक अवस्था का तन्मात्र है, वह ब्रह्मरूप होता है। दैहिक अवस्था का एक तन्मात्र जब ब्रह्मरूप होता

है, तब वह देहिक अवस्था के अन्य चार तन्मात्राओं को भी ब्रह्मरूप नाता है, और किसी भी दीर्घ जाप-ताप साधना न करते हुये हमें साधक सिद्ध-साध्य अवस्थाएं सुलभता से प्राप्त होती है। इस प्रकार की अवस्था जिन गुरूओं को प्राप्त हुई है ऐसे ही गुरूओं की भेंट करने का लाभ पूर्व पुण्य से इहजन्म में मिला तो इहलोक में प्राप्त इस जीवन का सार्थक होता है, और जिस जीवन का सार्थक इतनी शस्त्रशुद्ध तरीके से हुआ होगा, वहीं साधक इहलोक में लोक कल्याण कर सकता है। अन्यथा लोक कल्याण होने के बजाय लोकसंग्रह करना ही लोक कल्याण है यह प्रचार समाज में दृढ़ होता है।

आप भक्तों में स्थित तन्मात्र देहिक-आत्मिक अवस्था में थे। मेरे माध्यम में भी वही तन्मात्र है। लेकिन गत चार तपो से (तप-१२ साल) श्री सद्गुरू के कृपाशीर्वाद के लायक होने से वे पांचों ही तन्मात्र ब्रह्मरूप बने। इस तरह का लाभ मुझ जैसा आप भक्तों को मिले इसलिये गोवा में स्थित शिरोडा शहर में आठ साधना सम्मेलन आयोजित किये गये। पहले दो सम्मेलनों में, मैं आप लोगों से सामूहिक साधना करवा लेता था और मुलाकात का लाभ देता था। इस समय मेरी वाणी के माध्यम से जो ब्रह्म आप श्रवण करते थे, उन श्रवण किये शब्दमाध्यमों से आपको अज्ञात रूप से आपके शब्द तन्मात्र देहिक आत्मिक अवस्था में न रहकर ब्रह्मस्वरूप हुये और बाद में जो सम्मेलन हुये उन सम्मेलनों का ब्रम्हानंद आप भक्तों ने उठाया ही और शेष चारों तन्मात्र भी ब्रम्हस्वरूप हुये। प्राप्त देह पंचतत्वों (पृथ्वी, आग, तेज, वायु, आकाश) से धारण हुआ है तन्मात्राएं अतिसूक्ष्म अवस्था है। जब लोककल्याण के लिये गुरू को किसी साधन को सिद्ध करना होता है तब इसमे भक्तों के माध्यमो का सदुपयोग करना होता है। ऐसे समय आवाह्न की गयी शक्ति सूक्ष्म से सूक्ष्म होने से, भक्तगणों के देहिक माध्यम के तन्मात्र जागृत अवस्था में होना आवश्यक होता है तो ही वह शक्ति साधन की सिद्धता के लिये धारण होती है, आप भक्तों के ऐसे माध्यम जब तैयार हुये तभी लय शक्ति को आवाह्न कर, भक्तों के माध्यम में उस शक्ति की धारणा की गयी। आठवें सम्मेलन में आप भक्त लय शक्ति यानी ब्रह्मशक्ति धारण कर जब

उपस्थित हुये, तब शिरोडा में आप सभी भक्तों के माध्यमों की शक्ति एकरूप कर "शक्तिपीठ" का आवाहन किया और आपके माध्यमों द्वारा धारण की गयी शक्ति इस शक्तिपीठ में अंतर्भूत की गयी। अब भविष्य में लोककल्याण का यह कार्य सरल और सुलभ पद्धति से होने के लिये शक्तिपीठ का आसान से आसान कार्य इससे पहले निवेदन किये अनुसार केवल प्रार्थना माध्यम से यानि अपने में स्थित शब्दतन्मात्र से होने वाला है।

पंचमी, एकादशी, पौर्णिमा, अमावस्या का महत्व :

गत कुछ वर्षों से आप भक्तों को कार्यकेंद्र पर उपस्थित होकर पंचमी, एकादशी, पूर्णिमा और अमावस के दिन "अनुष्ठान" करने की आज्ञा हुई थी, और उसके अनुसार यद्यपि आप उसे करते थे, तो भी यह अनुष्ठान इन्हीं दिनों करने का क्या महत्व है, और वह भगवान के लिये है या अपने लिये है, यह आप भक्तों के ध्यान में आया होगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। साधरणतः पंचमी, एकादशी, पूर्णिमा, अमावस का स्मरण होते ही हमारा ध्यान तिथि और वार (दिन) की ओर जाता है। वास्तव में यह ध्यान भगवान के लिये नही किया जाता है। हम भक्तों को प्राप्त अवस्था में काया, वाचा, मन से वे कितने एकरूप हुये हैं, इसका अनुमान लगाने के लिये ये दिवस श्रीगुरू ने निश्चित किये हैं। "पंचमी" यानि महिने के पहले या दूसरे पखवाड़े का पांचवा दिवस, यह अर्थ नहीं है। पंचमी यानि हमारा देहिक माध्यम जिसकी धारणा पंचतत्वो (पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश) से हुई है उससे इस दिन का अनुष्ठान हितसंबंधित है। इन पांच तत्वों से यद्यपि हमारे देह की धारणा होती है, तो भी ये पाचों तत्व निर्यात से निर्धारित प्रमाण में नहीं होते हैं। इसलिये जब हम अपना जीवन व्यतीत करते हैं, तब वह संतुलित रूप से व्यतीत नही होता है। इसलिये पहले साधनामार्ग के आरंभ में ये पांच तत्व, जो विषम रूप में होते हैं, उनको कृपाशीर्वाद से नियाति के अनुसार संतुलित रूप दिया जाता है। इसीलिये देहिक माध्यम से जो क्रियाकर्म होता है, उसके बारे में हम निराश न होकर हर्षित होते हैं। यह जो अवस्था साधना के आरंभ में श्री गुरू ने प्राप्त

कर दी है, उस प्राप्त अवस्था में क्या विषमता निर्माण हुई है, इसका पता पंचमी के दिन होने वाले अनुष्ठान से लगाना है। साधनामार्ग में अग्रकर्म पंचभौतिक देहिक माध्यम का होता है। यदा-कदा इन पंचतत्वों में विषमता होगी, तो कोई भी साधन आप करेंगे उसमे एकरूपता प्राप्त नहीं होगी। इसलिये पंचमी के अनुष्ठान में अपने पंचभौतिक देह तत्वों में अगतिक विचार, विकार से उत्पन्न विषमता निर्माण हुई है या नहीं इसका अनुमान अनुष्ठान से पूर्व के दिनों से निकालना चाहिये।

एकादशी को जो अनुष्ठान आप करते हैं, उस दिन पंचभौतिक देह के पंचकर्मेन्द्रियों, पंचज्ञानेन्द्रियों और बुद्धि का जो इष्ट विकास कृपाशीर्वाद से हुआ है, उस माध्यम में क्या कुछ कमी या अधिकता हुई इसका अनुभव लेना है। उसकी अनुभवसिद्ध पद्धति यह है कि अनुष्ठान को उपस्थित रहने पर या उससे पहले के कालविधी में सुविचारों के बारे में विचारों की कितनी प्रगति हुई है और अविचारों की कितनी बढ़ोतरी हुई है यह अनुभव करना इस तरह की छानबीन करते समय अगर सुविचारों की मात्रा अधिक है तो हमारी विकसित अवस्था में वृद्धि हो रहीं है, यानि गुरूकृपाशीर्वाद में हमारा जीवन अधि क व्यतीत हो रहा है, यह अनुभव होगा।

पूर्णिमा या अमावास इस दिन देह के अतिसूक्ष्म तत्व यानि पंचतन्मात्र, पंचप्राणकोश, बुद्धि, मन, चित्त, अहंकार और आत्मा आदि इस साधना में समाहित होते हैं। आज प्राप्त अवस्था के अनुसार श्री गुरू ने कृपावंत होकर, देहिक आत्मिक अवस्थाओं की एकरूपता आनंदमयकोश के साथ करा देने के कारण अब उस आनंदमय तत्व स्थल पर श्रीगुरू हमेशा निवास करते हैं। इस दिन अनुष्ठान करते समय पंचमी या एकादशी से अधिक एकाग्रता होनी चाहिये। अगर वह न हुई तो उसका कारण यह है कि उपरोक्त दो दिनों में हमने अपने देहिक माध्यमों का अनुष्ठान काल के अलावा अन्य समय में दुरूपयोग किया है। अगर इस तरह माध्यमों का दुरूपयोग हुआ है तो पूर्णिमा या अमावास के दिन अन्य दिनों की अपेक्षा जो ज्यादा एकाग्रता अपेक्षित

है व नहीं हो पाती। इसलिये पंचमी से पूर्णिमा या अमावस तक अपने ज्ञान अज्ञानवश प्राप्त जीवन का दुरूपयोग विचार, आचार, विकास के अनुसार क्या हुआ है, इसका जायजा लेकर, अनुमान पद्धति से हमारी अनजान में होने वाली गलतियां अब सुधारनी चाहिये। इससे पूर्व के जीवन में हम भक्तगणों के परिवार परंपरा से या जन्मकर्म के अनुसार जो दोष देह के बाहर थे उनका निवारण करना हमारे सामर्थ्य के बाहर था। इसलिये गुरू ने कृपावंत होकर उन दोषों का निवारण किया। लेकिन जो दोष देह में है, यानि जिनके हमारे सारे इन्द्रियां आदि हो चुके है, ऐसे दोषों का निवारण करने का काम गुरू का न होकर आप भक्तों का है ऐसे दोषो की जानकारी दूसरों ने करा देने पर भी आप उसकी ओर ध्यान नहीं देते। इसलिये गुरू ने पंचमी, एकादशी, पूर्णिमा या अमावस के दिन प्राप्त अवस्था के प्रति आपको क्या सावधानी बरतनी चाहिये इसका ज्ञान होने के लिये आपको इस दिन अनुष्ठान करने की आज्ञा दी थी।

श्रीगुरू और जो भक्त अड़चनों के कारण गुरूओं से मिलने आता है, यह जो भेंट इस जन्म में अड़चनों के कारण होती है, यह भेंट करने का (योग) पहले के अनेक जन्मों के कारण होता है। अगर हम अड़चनों में न पड़े तो अड़चनों के निवारण के लिये गुरूमार्ग की ओर नहीं जायेंगे या देवदेवताओं की पूजा, आराधना नहीं करेंगे। तो सूज्ञ भक्तों ने प्रथम गुरूभेट होने पर अड़चनों का विचार न करते हुये, जो गुरू भेंट इस जन्म में हुई है, इसका लाभ प्राप्त जन्म में ज्यादा से ज्यादा इहजन्म के लिये और भावी अनेक जन्मों के लिये किस तरह लिया जा सकता है, इसका विचार कर गुरू द्वारा सूचित सेवा का लाभ उठाया, तो जिस सुख की याचना के लिये वे गुरू के पास आये हैं, वह सुख उनके कदमों में उपस्थित है, यही प्रचीति उनको निश्चित होगी। यह सूचित करने का महत्व का कारण यह है कि आज की अवस्था में भक्तों के देहिक और आत्मिक माध्यम अथवा जीवन माध्यमों को एकरूप कर, श्री गुरू ने इस जुड़ी हुई देहिक आत्मिक अवस्था में अपना अस्तित्व अनंतकाल के लिये निर्माण कर रखा है, इसलिये जीवन व्यतीत करते समय अड़चनों का आभास

यदि निर्माण हुआ भी तो उसके बारे में दुखी और असमाधानी न होकर "उन अड़चनों का निवारण करने का सामर्थ्य श्री गुरू दे" इतनी ही प्रार्थना करने की अब भविष्य में जरूरत है। इसका महत्व का कारण यह है कि, समिति का यह कार्य प्रारंभिक अवस्था में यद्यपि एक व्यक्ति माध्यम से साकार हुआ है, तो भी उसका लाभ सारी दुनिया को होने के लिये कृपावंत हुये अनेक व्यक्ति माध्यमों की भविष्य में जरूरत है।

आज जो अवस्था हम भक्तों को प्राप्त हुई है वह सहजता से और सुलभता से हुई है, इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये किसी भी प्रखर साधन या किसी बंधनों को अपनाना नहीं पड़ा, इसलिये प्राप्त अवस्था को बहुत ही मामूली नहीं समझना चाहिये। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये आप भक्तों ने लाखों रूपये खर्च किये होते तो भी आज की अवस्था प्राप्त नहीं होती। आज गत चार तपों से मैं गुरूमार्ग की सेवा में हूं, गुरू और गुरूमार्ग के अनेक व्यक्तियों के कार्य का और जीवन का बरीकी से अध्ययन मैंने किया है। इस अध्ययन में मुझे यह अनुभव हुआ है कि गुरूमाध्यम की जो अवस्थायें प्राप्त होती हैं, उन अवस्थाओं का लाभ वे अपने भक्तगणों को नहीं करा पा रहे हैं। केवल प्राप्त अवस्था से वे कृपाशीर्वाद देनें का कार्य ही कर सकते हैं। इसलिये यद्यपि उनके भक्तगणों की सख्या ज्यादा होती है फिर भी व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त अन्यों को सुख-शांति-समाधान देने का कार्य, कृपावंत होकर भी वे नहीं कर सकते। इसलिये मैं जो "कामकाज" और "निराकरण" आप भक्तों की अड़चनों के लिये कर रहा था, उस कार्य को गत कुछ वर्षो से स्थगित कर, गुरू ने कृपावंत होकर मुझे जिन अवस्थाओं का लाभ करा दिया, उन अवस्थाओं को आप भक्तों के जीवन में साकार करने के लिये समय-समय पर गुरूमार्गदर्शन के अनुसार साधनामार्ग का अवलंब कर, वहीं साधना आप भक्तों के भी दैहिक माध्यम द्वारा करा ली। ऐसी अवस्था (यानि मुझे प्राप्त अवस्था) की लेन-देन गुरू और शिष्य में होने के लिये गुरू का काया-वाचा-मन जो त्रिगुणात्मक हुआ होता है ऐसी त्रिगुणात्मक अवस्था भक्तों को सूचित की गई साधना द्वारा

करा लेनी होती है। ऐसी त्रिगुणात्मक अवस्था गुरू के साथ शिष्य की भी हो इसलिये गुरू और शिष्य में जो लेन-देन होता है इसके लिये जिस साधना का उपयोग करना होता है, वह भी त्रिगुणात्मक होनी चाहिये। यानि इस साधना से गुरू में प्राप्त अवस्था, शिष्य की साध ना के स्पंदनों से धारण होती है। ऐसा साधना यानि गत पांच वर्षो से आपसे करायी गयी ॐकार साधना है।

इस ॐकार साधना की दीक्षा मुझे अपने जन्म गांव में श्री भैरवानाथ ने प्रथम दी। उस दीक्षा के अनुसार मैं गत तीन तपो (एक तप यानि 12 वर्ष) से यद्यपि यह साधना नित्य रूप से कर रहा था, तो भी अन्यों के कल्याण के लिये ॐकार साधना की सिद्धता की आवश्यकता महसूस होने से ॐकार तत्व सिद्ध करने के लिये एक वर्ष के लिये श्री क्षेत्र नरसोबावाडी में हर पूर्णिमा को उपस्थित रह कर ग्यारह पूर्णिमाओं को हवनविधि किया। इन ग्यारह पूर्णिमा के हवनविधियों की समाप्ति महारूद्र स्वाहाकार से करने पर जो ॐकार तत्व सिद्ध हुआ इस तत्व की दीक्षा भक्तों को कारण दीक्षा के रूप में दी। इस कारणदीक्षा की सिद्धता होकर वह कारण दीक्षा महाकारण अवस्था के रूप में आप भक्तों को उसका लाभ हो इसलिये श्री गणेश देवता की, जिसका मूल आत्मस्वरूप ॐकार मय है यानि अ-उ-म अथवा उत्पत्ति-स्थिति-लय है, उस देवता को प्रसन्न कर आप भक्तों को महाकारण दीक्षा का लाभ करा दिया। इस दीक्षा तक समय-समय पर आप भक्तों ने जो दीक्षायें (उपासना दीक्षा नामस्मरण दीक्षा अनुंग्रह दीक्षा, गुरू दीक्षा, कारण दीक्षा महाकारण दीक्षा) ली थी, उन दीक्षाओं की एकरूप्ता त्रिगुणात्मक शक्ति के साथ कर वह ॐकारमय अवस्था बत्तीस शिराला इस स्थान पर श्री गोरखनाथ के चरणों में समर्पित कर उनकी आज्ञा से आप भक्तों को नाथपंथ का अनुग्रह प्राप्त कर दिया। जो अवस्थायें गुरू को प्राप्त हुई हैं उन अवस्थाओं का प्रतीक शिष्यों मे धारण होना ही अनुग्रह है। केवल एकाध मंत्र देकर उसका तंत्र उपलब्ध कर देना अनुग्रह नहीं हैं आज की अवस्था तक का आपका गुरूमार्ग का प्रवास यानि गुरूचरणों में लीन हुआ ऐसा आपका आत्मिक तत्व साकार होकर अब निराकार हुआ है। इस अवस्था कार्य भविष्य में दुनिया के कल्याण

के लिये भक्तो से हो इसलिये गुरू को प्राप्त अवस्थाएं भक्तों में साकार करने की साधनपद्धति से भक्तों में गुरू की अवस्थाओं का जो आविष्कार होना चाहिये इसके लिये भक्तमाध्यम को एक ही साधन माध्यम द्वारा साधना करने को सूचित करना होता है। ऐसे समय यह साधन अन्नमय कोश से यानि नाभिस्थान से शुरू करा कर आनंदमय कोश तक यानि ब्रह्मरध्र तक ले जाकर, सूचित साधना का पूर्णत्व भक्त के ब्रह्मरंध्रमें करना होता है। क्रमशः इन अवस्थाओं के अनुसार अब आप भक्तगणों के देहिक माध्यम द्वारा यह साधना ब्रह्मरंध्र में लय अवस्था यानि पूर्णत्व प्राप्त करती है, उस अवस्था को ही "सहस्त्रदलकमल का उदय" हुआ, ऐसा कहते हैं। लेकिन दत्त, नाथ और सूफी पंथ के अनुसार इस अवस्था की प्राप्ति यानि देहिक और आत्मिक शक्यिों की एकरूपता गुरूशक्तिस्थान में होकर इस त्रिगुणात्मक शक्ति को प्रतीक के रूप में ब्रह्मरंध्र में ध ारण कर देना होता है। इस अवस्था की प्राप्ति जो आज आप भक्तो को हुई है वह "कृपाशीर्वाद के शक्तिपीठ" इस रूप में आपके काया-वाचा-मन के माध्यम अन्यों के कल्याण के लिये कार्य करने वाली है। ऐसे समय जिस काया-वाचा-मन की एकरूपता शक्तिपीठ में हुई है वह गुरूकृपाशीर्वाद है। इस शक्ति का स्पंदन आप भक्तों के वाणी से अब से आगे निकलने वाले हैं। इसके लिये जो प्रार्थना आप आगे नित्य से करेंगे वह प्रार्थना केवल शब्दरूप में आपके वाणी से उच्चारित न होकर मनोभाव से की हुई यह प्रार्थना वाणी द्वारा उच्चारित शब्द अन्यों के कल्याण के लिये शास्त्र, शस्त्र और अस्त्र के रूप में परिसर के वातावरण के कार्यान्वित होगा। परिणामतः आज जो वातावरण गैर विचारों से दूषित हुआ है वह शुद्ध होकर हरेक को भगवान ने बुद्धि की अमूल्य देन देने पर भी जितने व्यक्ति उतनी प्रकृति, इस न्याय से बुद्धिमाध्यम में उत्पन्न आने वाले अविचारों के दोषों का नित्य रूप से कही जाने वाली इस प्रार्थना से निवारण होगा। भविष्य का यह महान कार्य श्रीगुरू ने कितना आसान और सुलभ कर दिया है इसका भक्तों को सूज्ञता से विचार करना चाहिये।

अन्यों के कल्याण के लिये प्रार्थना करने की जिम्मेदारी आप भक्तों पर ड़ाली गयी है यह जिम्मेदारी निभाते समय किसी भी कारणवश

अपना काया वाचा मन अशांत, असमाधानी और किसी भी विकास से ग्रस्त नहीं होना चाहिये। आज तक आप भक्तों ने श्रद्धा से भक्ति से अनेक गुरूपूर्णिमायें मनाकर श्री गुरू को गुरू दक्षिण दी होगी, लेकिन जिस गुरू का अधिकार इस त्रिभुवन पर होता है उनको जो कुछ गुरूदक्षिणा आप देते हैं, वह गुरूदक्षिणा न होकर वह अपनी भक्ति-भावना का एक प्रतीक होता है। सच्चे अर्थ से गुरूदक्षिणा तो आपको अब देनी है क्योंकि प्राप्त जन्म का व भावी जन्मों का सार्थक करने का जो सामर्थ्य किसी भी मनुष्य को किसी भी जन्म में प्राप्त होना असंभव है, वह केवल आपको गुरू की शरण में जाने से प्राप्त हुआ है। अब से आने वाले जीवन में गुरूआज्ञा का पालन करना यही व्रत भविष्य के लिये आप भक्तों को करना है, और इसकी पूर्तता आप भक्तों ने की तो ही गुरू ने हमारे कल्याण के लिये जो किया है उसके उत्तरदायित्व के रूप में आप गुरूपूजन कर गुरूदक्षिणा देंगे। यही अपेक्षा भविष्य के लिये कर, आठवें सम्मेलन में मैंने आप भक्तों को यह सूचित किया कि इसके आगे मेरा व्यक्ति के रूप में पूजन न कर मेरे माध्यम से जिस शक्ति ने आपके जीवन को आकार और साकार अवस्था प्राप्त करा दी है, उस शक्ति की मनोभाव से, श्रद्धाभक्ति से पूजा करो। यानी उसके संबध में ज्यादा से ज्यादा पूज्यभाव निर्माण करो। यही आप भक्तों द्वारा दी हुई मेरी "गुरूदक्षिणा" है।

आप भक्तों ने अपने परिवार में भक्तिभाव से पूजनार्थ मेरा जो फोटो रखा है, उसके बारे में मुझे आज तक कभी भी धन्यता महसूस नहीं हुई। उसी प्रकार अनेक भक्तों ने मुझे अपने घर बुलाकर "गुरू" के रूप में भरपूर आतिथ्य किया है। इस आतिथ्य से आप भक्तों को यद्यपि समाधान मिला होगा, लेकिन मुझे इसका समाधान कभी भी नहीं मिला। इसका कारण यह है कि आप इस कार्य के मार्गदर्शन के लिये आये और जब अपने ऐहिक जरूरतों का हल मेरे माध्यम से किया तब ही आप भक्तो ने पूजनार्थ मेरे फोटो का स्वीकार किया। यह सब ऐहिक सुख अगर मैं आपको प्राप्त न करा देता तब क्या आपने मेरे फोटो की पूजा की होती? यह प्रश्न मैं अपने आप

से पूछता रहता हूँ। आप भक्तों की जो अपेक्षायें हैं, ओर उन्हें पूरी करने के लिये आप मेरे पास आते हैं, उसी प्रकार आज भी मेरी कुछ अपेक्षायें है और जो आप भक्तों द्वारा पूरी होगी, ऐसी इच्छा थी और आज भी है। समय समय पर मुलाकात में और प्रत्येक सम्मेलन में आप मेरा गुणगान करते आ रहे हैं। इनको मैंने सुना भी है, किन्तु मैंने जो आप भक्तों के लिये जो कुछ भी किया है वह करने के लिये मैने इह जन्म नहीं लिया है। उसमे महत्व की बात यह है कि मेरे जैसा ही आपका प्राप्त जन्म भी अच्छे कामों में व्यतीत हो। आपको कितना ऐहिक सुख प्राप्त हुआ है और किन-किन संकटों का गुरूकृपाशीर्वाद के कारण निवारन हुआ, इस संबध में मुझे कोई भी धन्यता महसूस नहीं हुई। इसका कारण यह है कि जिस व्यक्ति माध्यम को जन्म लेकर भगवान का कार्य करना है, ऐसे व्यक्ति माध्यम का सामर्थ्य पत्थर को भगवान बनाने का होता है। इसलिये जो ऐहिक सुख आपको गुरूकृपाशीर्वाद से प्राप्त हुआ और उस सुख के कारण आपने मेरी प्रशंसा की इसकी अपेक्षा अपनी पारमार्थिक प्रगति कितनी हुई इस संबंध में आपने कुछ निवेदन किया होता, तो मैंने जो कर्तव्य आप भक्तों के लिये किया है, उसके बारे में मुझे समाधान मिलता। इसका स्पष्ट खुलासा यह है कि गुरूमार्गदर्शन के लिये आने से पहले आपके काया-वाचा तथा मन पूर्ण रूप से षड्विकारों के अधीन थे। देहिक अवस्था का विकास न होने से आपका जीवन विकारमय अवस्था में था। कृपाशीर्वाद प्राप्त होने के बाद किन-किन विकारों की प्रखरता कम हुई है, और आपका जीवन जो विकारमय था वह गुरूकृपाशीर्वाद से कितना विचारमय हुआ है इसका जायजा लेने पर आपको यह महसूस होगा कि आपकी अपनी अवस्था में यह जो बदलाव आया है, वह गुरूकृपाशीर्वाद से आया है और यह बदलाव गुरूकृपाशीर्वाद के अभाव में आपके जीवन के अन्त तक आपको संभव नहीं था, उसका बोध आपको होगा।

दूसरा महत्वपूर्ण बोध मेरी साधनसेवा के हितसंबंध में कहना है वह यह है कि आज तक दुनिया में मनुष्य के कल्याण के लिये जिन सिद्धसाधकों ने इस प्रकार का कार्य गुरूआज्ञा से स्वीकार किया और

लोककल्याण करने की सेवा भी की, तो भी उनका यह कार्य "व्यक्तिगत परंपरा से कार्यन्वित हो इसलिये गुरू आज्ञानुसार कार्य" इस रूप में हुआ और उनके पश्चात् उनका यह कार्य असंगत हो गया। लेकिन मेरी मन:पूर्वक ऐसी उत्कृष्ट इच्छा है कि मैंने प्राप्त किये हुये यह गुरूकृपाशीर्वाद के साधन इहजन्म में मेरे जीते जी कार्यान्वित होकर अमर बन जाये, ताकि मेरे पश्चात् इस सिद्धसिद्धांत पद्धति का अस्त न हो। इसलिये इन सब साधनों को मैंने गत वर्ष में सिद्धस्वरूप में सिद्ध कर परंपरा से कार्यान्वित हो इसलिये गुरूआज्ञानुसार गुरूपूर्णिमा के दिन उन्हें योग्य सेवकों में आंतरिक रीति से एकरूप करा दिया। आज मेरी अनुपस्थित में जो सेवक कार्यकेंद्र पर मार्गदर्शन कर रहे हैं उनकी तरफ देखने की आपकी दृष्टि पूर्णत: संकुचित है। इसलिये मैं अपने आत्मविश्वास से और आत्म-प्रचीति से यह कह सकता हूँ कि ये सेवक यद्यपि सिद्धावस्था है और आपके दु:ख ऐहिक विषयों के अनुसार निवारण कर सकते हैं, फिर भी गुरूमार्ग की परंपरानुसार आप भक्तों की श्रद्धा व्यक्तिपूजन का विषय होने से आपका दुख केवल वं दादा के आशीर्वाद से ही निवारण होता है" यह जो आपकी श्रद्धा है, वह आगे विचार में न लाये क्योंकि जो नियुक्त सेवक कार्यकेंद्र पर कार्य कर रहा है, उसकी नियुक्ति उसकी इच्छानुसार न होकर वह गुरूआज्ञा का एक प्रतीक है। ऐसी श्रद्धा और विश्वास अगर आप रखेगें तो आपके ऐहिक विषयों के अनुसार आये दुख निवारण करने में मेरी बहुमूल्य शक्ति व्यर्थ में खर्च न होकर वह शक्ति आपके प्राप्त जन्म को सार्थक करने में मैं उपयोग में ला सकूंगा।

गुरूमार्ग में जीवन सार्थक होने के लिये नामस्मरण विधि, दीक्षांत विधि, अनुग्रह विधि अनेक बार और अनेक जगह किये जाते हैं और वह आप लेते हैं या सुनते हैं। लेकिन जीवन का सार्थक होने का यह विषय इतनी सहजता से प्राप्त होने वाला सरल और सुलभ नहीं है जिसको इसे प्राप्त करने की आर्तता है उसके भी सामर्थ्य से बाहर यह विषय होने से अगर भक्तों के कल्याण के लिये गुरूमाध्यम अपना तन, मन धन और काया, वाचा, मन पूर्ण रूप से श्रीगुरू को समर्पित

करेगा, तो ही उसका फल आप भक्तों के कल्याण के लिये है, इसकी प्रचीति या अनुभव उदित होगा। अन्यथा आप भक्त गुरूमार्गी हुये हैं इसलिये ऊंचे और गहन विषयों के शब्दों का उच्चारण करना, और उन्हें आपने सुनना इससे ज्यादा आप लोगों का उद्धार नहीं हो सकेगा।

आज तक मैंने आप भक्तों की जो सेवा की यह मेरे इस जन्म की सार्थकता है और उसका इसी जन्म में मुझे अनुभव हुआ है इससे बढ़कर अधिक बड़ा सुख, समाधान और शांति अन्य कोई हो सकती है ऐसा मैं मानता नहीं। आज तक आपकी सेवा में मुझसे ज्ञान अज्ञानवश अच्छा भी हुआ होगा, बुरा भी हुआ होगा, लेकिन जो अच्छाई आपको मिली होगी, उसको स्वीकार कर, जो बुराई होगी उसको भूल जायें। बाल अवस्था से आज तक मेरा पंचभौतिक दैहिक माध्यम जो उसके बाहरी रूप में आप जैसा ही दिखाई देता है किन्तु वह मेरे काया, वाचा और मन से परिपूर्ण गुरूरूप होने से स्वाभाविक रूप से आत्मिक विचार तथा सद्‌भावना से गुरूममता दुलारने वाले हाथों से मैंने आपको पुचकारा तो भी आप भक्तों की दैहिक अवस्था ऐहिक विषयों से लिपटी रहने से, यह मेरा प्रेम जो जन्मदाता मां-बाप से भी बढ़कर था उसको आपने पहचाना नहीं। आज तक व्यतीत जीवन में मैंने श्री सद्‌गुरू से कृपाशीर्वाद के अलावा कुछ भी नहीं मांगा, तो ऐसी दशा में आप भक्तों के पास कुछ अपेक्षापूर्ति के लिये मैं आऊं यह मुझे शोभा नहीं देता और मेरे सद्‌भाग्य से इस तरह की अपेक्षा करने की नौबत श्रीसद्‌गुरू कृपाशीर्वाद से मुझ पर आयी भी नहीं।

इस वर्ष गुरूआज्ञा से मुझे जो साधना करनी पड़ी उसका सिद्धसाध्य हेतु मैंने आप भक्तों के अध्ययन के लिये निवेदन किया है इसका आस्थापूर्वक विचार कर यह कार्य "दादा का है ऐसा न मानकार हम सब का है यह भूमिका धारण कर, आपके यथाज्ञान से और यथासामर्थ्य से यह कार्य आगे बढ़ाने का भाग्य आपको मिला तो ही मेरे प्राप्त जन्म का सार्थक हुआ यह कह सकूंगा।

साधना मार्ग में अवधान, ध्यान, और चिंतन ये तीन महत्वपूर्ण अवस्थायें हैं उनका परिचय आगे दिया जा रहा है।

अवधान अवस्था :

गुरूमार्ग में यह अवस्था प्राप्त करना दुर्लभ है क्योंकि जन्म लेने पर कर्म करने का बंधन पीछे लगता है, और इस कर्म बंधन से मुक्ति पाने के लिये हम गुरूमार्ग में जाते हैं। इस समय सुख की प्राप्ति की अपेक्षा न रखकर, गुरू की प्राप्ति कब होगी इसकी आस लगानी चाहिये। केवल खान-पान, कपड़ा लत्ता, ऐषोआराम आदि में जीवन व्यर्थ न गवांकार, जीवन को निश्चित आकार मिलना चाहिये। यह आकार गुरू देते हैं। गुरूमार्ग में "गुराखी" (पशुपालक) और "गुरू" ये दो शब्द है। पहला सिर्फ पशुपालन करता है और दूसरा मार्ग दिखाती है। जन्म लेने पर वह जाया न जाये, दूसरों को उसका उपयोग हो इस असीम करूणा से जो राह दिखाते हैं, उन्हें "गुरू" कहते हैं। गुरू को अपना जीवन तन, मन, धन, से भक्तों के लिये लगाना चाहिये। जो दिक्कतें भक्तों के जीवन में आती हैं, उन्हें न बताते हुये, वे जिस कर्म के कारण आती है, उनका विमोचन कर उस भक्त को अभयदान देना होता है। दुखों को निवारण कैसे किया जाये यह बात तो सड़क पर बैठे ज्योतिष भी बताते हैं। इस स्थिति में यद्यपि भक्त अज्ञानी होता है तो भी उस भक्त को गहन ज्ञान का लाभ करा देने का महत्वपूर्ण कर्तव्य गुरू को भूलना नहीं चाहिये। केवल ऐहिक सुखोपभोग के लिये ही इहजन्म नहीं है इसका प्रत्यय देना चाहिये। यह विचार जब भक्त के मन में हद होता है तब भक्त की जीवन के ओर देखने की दृष्टि धीरे-धीरे बदलती जाती है और वैसे ही वह होनी चाहिये क्योंकि यह जीवन क्षणभंगुर है। जो-जो प्राप्त करना है, उसका लाभ जन्म-जन्म तक मिलना चाहिये। केवल लगाव से काम नहीं चलेगा। इहजन्म का ज्ञान और लगाव हमें होता है, उसको न बढ़ाकर हम जैसे-जैसे मार्ग में जायेंगे वैसे-वैसे लगाव कम कर, लाभ किस तरह होगा, इसका विचार करना चाहिये। यानि मैं दुनिया में तो हूं, लेकिन मेरी दुनियां इहलोक में नहीं हैं इस तरह बोलना और बर्ताव करना यह अवधान अवस्था है इहलोक का कर्तव्य करते हुये उसमे खुद न होकर केवल हमारी महक होनी चाहिये ऐसा होने से

कर्मों का विषय केवल उपभोग लेना यह न रहकर धर्म पालन से कर्मों से छुटकारा पाना यह अवस्था प्राप्त होती है। यानी स्वाभाविक रूप इहजन्म में ही भावी जन्म यानि परलोक का प्रारंभ होता है। इस समय हम जो ॐकार साधना करते हैं, इस अवस्था में केवल "अ" तत्व सिद्ध होता है। "अ" तत्व यानि विश्व की उत्पत्ति है। इस समय हमारी आत्मा जन्म लेती है और गुरूमार्गी होने पर वह आत्मा ॐकार की "अ" अवस्था प्राप्त करती है, इसलिये ये साधना करते समय सौ प्रतिशत अवधान रखना चाहिये।

ध्यान अवस्था :

पहले के अनेक जन्मों में हमने अनेक कर्म किये हैं प्रणामतः पुनः इस जन्म में हमने जन्म लिया है। लेकिन उन पूर्व जन्मों की याद हमें अभी नहीं रहती है पुनः पुनः वही पाप या प्रमाद हम से होते रहते हैं और पुनः पुनः सुख का लाभ बढ़ता है। पणिामस्वरूप पुनः जन्म लेना होता है। इस तरह यह चक्र चलता रहता है। लेकिन किसी न किसी जन्म में हमने पुण्यकर्म निश्चित रूप से किया है। इस पुण्य कर्म का प्रतिदान हो इसलिये वह हमें गुरूमार्ग में ले जाता है। लेकिन उस समय हमें गुरू का स्मरण नहीं होता है। इसलिये कोई संकट हमारे जीवन में निर्माण होता है। ऐसे समय हमें सुख कैसे प्राप्त होगा यह जानने के लिये आप गुरू के पास जाते हैं। वास्तव में वह दुख नहीं होता है। हम अपने मार्ग से भटक जाते हैं, इसलिये आपको जागृत करने के लिये और अपने सही स्थान पर स्थित करने के लिये कर्म द्वारा किया गया वह उपकार है। उस समय पुनः इस तरह का कर्म आप से न हो, इसलिये श्रीगुरू, वशं और कर्म का विमोचन कर, उसके ऐवज में दीक्षा देते हैं। वास्तव में वंश में और कर्म में जो दोष होते हैं, वे दूर होकर जीवन निर्दोष हो, यह गुरू की इच्छा होती है, और भावी जन्म का इन्तजाम वह कर देते हैं। लेकिन आप अपने आसपास की दुनिया देखकर वैसे जीवन आपको प्राप्त हो, इसलिये विमोचन और दीक्षा को महत्व नहीं देते। किन्तु जब इसका एहसास

होगा तब उसका महत्व क्या है, यह मालूम होगा। यह जन्म बार-बार नहीं मिलता। पुन: जन्म प्राप्त करने के लिये कई-सौ वर्ष लगते हैं। इसलिये ज्ञानी पुरूषों ने जीदन व्यर्थ व्यतीत न करने की सलाह दी है। इस जीवन का हम उपभोग लेकर, दूसरों को भी उसका उपयोग हो इस तरफ ध्यान देना चाहिये। वास्तव में जन्म के समय यह जीवन "वन" जैसा था। गुरू मिलने पर उसका नंदनवन बनना है। यह धर्म गुरू का है। तथापि हम कर्माधीन होने के कारण गुरू ने आपको क्या दिया है, यह प्रश्न आपके सामने खड़ा होता हैं। जिस समय "कर्माधीन" अवस्था समाप्त होती है, उसी समय धर्माधीन अवस्था शुरू होती है और हमारा जीवन दूसरों के लिये है, वह बोध होता है इसलिये पुन: पुन: जन्म लेकर कर्माधीन होने की अपेक्षा "हमें जन्म लेना है लेकिन गुरूकृपा के धर्म के लिये" इस बचन का पालन करना चाहिये। एकाध दिन भोजन का विस्मरण हुआ तो भी चलेगा क्योंकि जीवन उससे मूल्यवान है, यह आस होनी चाहिये। हम जो ॐकार साधना करते हैं, उस साधना में जो "उ" अवस्था है, उसकी प्राप्ति ध्यान अवस्था में होती है। अब हमें गुरू से कुछ नहीं मांगना है, हमारा जीवन जो व्यर्थ में व्यतीत हुआ होता, वह गुरूकृपा से अर्थपूर्ण बना है, इसलिये इस जन्म की गुरूदक्षिणा गुरू को देनी है। यह दक्षिणा यानि हमें "दक्ष" रहना है यह हमारे हित के लिये है। जिस वशं में जन्म लिया है वह वंश न रहकर अब हमारा गुरूअंश बना है। इसलिये भविष्य में संतान अवस्था प्राप्त न कर "संपत्ति" के रूप में जन्म लेना है इसका अर्थ न खत्म होनेवाली संपत्ति, ऐसा कृपाशीर्वाद गुरू देते हैं।

चिंतन अवस्था :

यह अवस्था क्या है, इसका ज्ञान ज्ञानी पुरूष को भी नहीं होता। इहलोक में जन्म लेना यानि भाग्यवान होना यह अर्थ है। त्रिभुवन में इहलोक जैसा श्रेष्ठ जन्म नहीं है। क्योंकि हमारा जीव (आत्मा) जन्म लेने पर विकास कर सकता है। अन्यथा दूसरे लोग केवल जीवंत है। उनमे जीव की धारणा होती है फिर भी उत्क्रांति इहलोक में होती

है। इसका शास्त्रीय कारण यह है कि, इस सृष्टि पर पांचो तत्वों का अधिष्ठान है। जीवन की धारणा होने के लिये देह की आवश्यकता है, और वह देह पांच तत्वों से बनता है। देह+जीव जीवन ऐसा अर्थ है। यह जीव जब जन्म लेता है, तब देह नये रूप से धारण होता हैं लेकिन जीव, जीवात्मा या आत्मा पहले की ही होती है। इस तरह के जीवन का उपभोग जीव ले चुका है लेकिन उसका लाभ देह को नहीं होता है। इसलिये जन्म प्राप्ति के बाद देह को लालसा होती है और जीव या आत्मा को सही लाभ कैसे होगा इसकी चिंता होती है। इस तरह दोनों में द्वैव चलता रहता है। अगर योग्य गुरू न मिले तो जीवन भर चिंता ही पीछे लगी रहती है और चिंता में हमेशा व्यस्त रहकर ही देह चिंता पर रखा जाता है। गुरू लाभ न होने पर श्री दत्तप्रभु से जिंदगीभर "मेरे जीवन का अंत आनंदमय बनाईये" ऐसी प्रार्थना करने पर भी वह इच्छा वैसी ही रहकर अंत में चिंता तो क्रम प्राप्त होती है। इसलिये गुरूमार्ग में यह द्वैत समाप्त होकर, अद्वैत का ज्ञान होना चाहिये। जीवन क्षणभंगुर है, इसलिये किस सुख की आस लगानी चाहिये, यह प्रश्न खुद को पूछकर देखें। तब सुख की आस करने की अपेक्षा "सुख का ग्रास" यह सुख गुरू देते हैं। अन्त में जीवन आनंदमय तथा मधुर हो यह आशीर्वाद मांगना अपना कर्तव्य है, यह न होकर जैसी करनी वैसी भरनी ऐसा जीवन प्राप्त होता है। जन्म लेने पर हमारे ईर्द-गिर्द हमारे रिश्तेदार और सगे-संबंधी नजदीक आते हैं और अंत में हमें उन्हे छोड़कर जाना पड़ता है, क्योंकि परलोक में कोई भी हमारा नहीं होता इसलिये श्री पंत महाराज ने अपने दोहों में "अकेला ही आना है, अकेला ही जाना है" यह बोध व्यक्त किया है और गुरूमार्ग ही "भला" कहा है। परलोक में आत्मा को देह नहीं होता। केवल देह को अपनी और दूसरों की पहचान होती है। इसलिये परलोक में केवल आत्मा और उसके कर्म का अस्तित्व होता है। अगर सत्कर्म किया है, तो वह परलोक में साथ होता है, शेष वासनारूपी कर्म इहलोक में रह जाता है। वासनारूपी कर्म इहलोक में स्थित होता है, इसलिये जन्म होता है। जब सत्कर्म हमारे साथ रहेगा तो हमारा पुन्र्जन्म होगा। इसका जब हमें ज्ञान होगा, वही चितंन अवस्था होगी। यानि पहले के

अनेक जन्मों में हम जन्म से कृतज्ञ नहीं होते हैं। वह हो इसलिये चिंतन "चि" यानि चिरंजीव और तन यानि कारण देह की प्राप्ति। इस तरह का गुरू से आशीर्वाद लेकर परलोक में आत्मा का प्रवास शुरू होता है। चिंता व चिंता में जीवन फंसा न होकर चिंतन यानि आत्मा का कार्य दया, क्षमा और शांति यह त्रिपुट का जिसके आचार और विचार में अनुभव होता है, वह आत्मा परमात्मा होती है। इतनी तजविज करने पर श्रीपंत महाराज का कहना है, कुछ साधन सेवन होने पर भी अपने निजधाम का रास्ता परमात्मा दिखाता है। इसका मतलब है हमारी कुछ भी साधन सेवा न होते हुये भी हमें परलोक में स्थान दिया है, इस तरह हमारा जीवन होता है। अतः श्रीपंत महाराज अपने लिखे हुये एक पद में भगवान से क्षमा का अनुरोध करते हुये ऐसी पंक्ति लिखी है कि "हे दयावंत गुरूदत्ता मुझ पर दया करो क्योंकि अपने दुर्गुण दूर करने में मैं असमर्थ हूँ और इसलिये हे भगवान मुझे क्षमा करो" इसी तरह के चिन्तन की त्रिपुटी होने पर साधक "सच्चिदानंद" होता है और इसके उपरांत जीवन में लेन-देन आदि न रहकर "स्वीकार क्या करना है? यह प्रश्न भगवान साधक को पूछता है।

श्री महाकारण दीज्ञा (दिशा) :

श्रीसद्गुरू कृपावंत होकर भक्तभाविकों को श्री महाकारण दीक्षा प्रदान करते है। श्री महाकारण दीक्षा "प्रेरणा" है। वह अवस्था है, कल्पना इसका ध्यान रखना चाहिए। जगत् कल्याण के कार्य की चिंता तथा व्याकुलता आत्मा को होती है और उसे भगवान का सहाय प्रेरणा के रूप में मिलता है। लोककल्याण कार्य केवल कल्पना करने से नहीं होता, क्योंकि कल्पना बुद्धि का कार्यकारण भाव है। बुद्धि से प्रेरणा मिलती है तो भी मूलतः बुद्धि की धारणा कर्म के अंग से युक्त होकर कर्म से बुद्धि को गति मिलती है। इसलिये ऐसी गति को प्रेरणा नहीं कहा जाता। प्रेरणा चैतन्ययुक्त होती है और आत्मा में उसका आविष्कार होता है।

मूल प्रेरणा की निर्मिती होकर वह साकार हुई तो भी प्रेरणा को आकार देने में कुछ शताब्दियां लगती हैं। इस काल के दौरान दुनिया में अवतीर्ण अनेक सत्पुरूषों का सहभाग प्रेरणा की सिद्धता करने के लिये कार्यान्वित होता है। इस तरह जगत् कल्याण के लिये निर्मित

हुई भगवान की प्रेरणा की सिद्धता अनेक अवतारी पुरूषों के प्रयास और समर्पित जीवन से होने में कुछ शताब्दियां लगी, तो भी सिद्धावस्था तब पहुंची वह ईश्वरी प्रेरणा दुनियां के अन्त तक जगत् कल्याण का कार्य करती रहती है।

आज सिद्ध रूप में हमें प्राप्त महाकारण दीक्षा ही ईश्वरी प्रेरणा है। उसकी परंपरा श्री आदिनाथ से है। श्री आदिनाथ ने नवनारायणों को अनुग्रहित कर नाथ बनाया और नवनाथों ने अनाथ जगत् को सनाथ और सज्ञान कर श्रीगहिनीनाथ ने अगले कार्य के लिये श्री निवृत्तिनाथ को अनुग्रहित किया। इस काल तब पचहत्तर प्रतिशत वैराग्य और पच्चीस प्रतिशत भक्ति यह उपासना का सूत्र था। श्रीज्ञानेश्वर ने मूल प्रेरणा यानि ईश्वर की क्या इच्छा है यह दुनिया को पता लगे इसलिये "पसायदान" का मंगल शब्दोच्चार किया और पचास प्रतिशत ज्ञान और पचास प्रतिशत भक्ति इस तरह की उपासना पद्धति दुनिया के सामने रखी। जो ज्ञान शब्दों में व्यक्त होता है उसके पीछे अगर शक्ति हो तो ही वह ज्ञान प्रभावशाली होता है और निश्चित कोई कार्य कर सकता है इसलिये श्रीज्ञानेश्वर ने ज्ञान+ईश्वर का सिद्धान्त दुनिया को दिया।

इसी परपंरा से आज श्री साईनाथ महाराज ने भविष्य के लिये मूल ईश्वरी प्रेरणा को मूर्त रूप देकर भूतलपर ईश्वरी शक्ति को अधिष्ठित किया। जो शक्तिपीठ प्रार्थना गुरूबंधुभगिनियों को दी गयी है, वह प्रार्थना ही पसायदान है। दुनिया को सुख, शांति, समाधान प्राप्त हो इसलिये मूल ईश्वरी प्रेरणा को शब्दरूप से साकार कर आपके सामने आज श्रीसद्‌गुरू ने रखी है। आप भक्तों ने कुछ भी याचना न करते हुये या अपने मन में न होते हुये भी जिस कृपा की प्राप्ति श्रीसद्‌गुरू से होती है वह कृपा की धरोहर ही "ईश्वरी प्रेरणा है। इस कृपा की प्राप्ति आज आपको सुलभता से और केवल भक्तियुक्त भावना से किये गये श्रीसदगुरू नामस्मरण से हो इसलिये कारण महाकारण और श्रीसाईशक ऐसी तीन प्रतिमायें दी गयी है। इस तरह ढ़ाई हजार वर्ष पहले विश्व में व्यक्त हुई ईश्वरी प्रेरणा आज श्रीगुरूकृपा से साकार होकर दुनिया में मानवता युग का आविष्कार कराने के लिये सिद्ध हुई है।

श्रीमहाकारण दीक्षा (प्रेरणा)

श्री आदिनाथ	बैराग्य पचहत्तर प्रतिशत
श्री नवनाथ	भक्ति पच्चीस प्रतिशत
श्री गहिनीनाथ	ज्ञान पचास प्रतिशत
श्री निवृत्तिनाथ	भक्ति पचास प्रतिशत
श्री ज्ञानेश्वर	भक्ति सौ प्रतिशत
श्री साईनाथ	नामस्मरण

आप भक्तों को गुरू कृपाशीर्वाद से प्राप्त जीवन में जो दीक्षाओं का लाभ होकर जो अवस्था प्राप्त हुई यह अवस्था साधक अवस्था में एक अत्यंत कठिन तथा दुरापास्त अवस्था है। ऐसी साधक अवस्था की अत्यंत कठिन अवस्था प्राप्त होने के लिये वास्तव में इसे प्राप्त करने के लिये हम मानवों का प्रखर साधनों के मार्ग का अवलंब करना पड़ता है और इतना करने पर भी यह अवस्था हम निश्चित रूप से प्राप्त कर सकेगें, ऐसा दावे के साथ कहना असंभव है। लेकिन आज स्वयं श्री गुरू ने ही कृपावंत होकर हम भक्तों का जीवन दीक्षाओं के अनुसार साकार किया है। यद्यपि यह अवस्था हम भक्तों को कुछ भी साधनसेवा न करते हुये प्राप्त हुई है, तो भी इस प्राप्त अवस्था का सचेत होकर विचारपूर्वक और गंभीर रूप से अध्ययन करना भक्तों का कर्तव्य है। इस कर्तव्य की पूर्तता विचार पूर्वक और गंभीरता से करने से ही भावी पीढ़ियों को सुख-शांति-समाधान देने का इन्तजाम आप भक्तो ने कृपाशीर्वाद से किया है ऐसा कहा जा सकता है।

आप भक्तभाविकों को दीक्षाओं का जो लाभ हुआ है, इन दीक्षाओं के अनुसार अपने जीवन की निश्चित रूपरेखा यानि प्राप्त गुरूकृपाशीर्वाद का जतन करना और उस मार्ग के अनुसार आपका और भावी पीढ़ियों का नित्याचरण गुरूमार्ग अनुसार रखना, इतना ही कर्तव्य आपके लिये शेष है। आप को इन दीक्षाओं का लाभ देते समय श्री सद्‌गुरू ने

कृपाशीर्वाद देकर आपकी अनेक भावी पीढ़ियों के सुख, शांति और समाधान का इन्तजाम कर रखा है। यही प्राप्त करने के लिये आप ज्ञान अज्ञानवश कुलधर्म, कुलाचार, व्रत, उपवास, जापताप, मिन्नतें, श्राद्ध आदि कर्म करते थे, तो भी प्राप्त जीवन का अपेक्षिता सुख-शांति का लाभ इन रूढी परंपरा का अनुकरण करने की पद्धति से न होने से आप गुरूकृपाशीर्वाद की खोज में आयें। कार्य पद्धति के मार्गदर्शनानुसार आपके परिवारजनों के कल्याण के लिये वंशविमोचन, कर्म विमोचन, ऋणविमोचन आदि विमोचन कर आपके प्राप्त जीवन के हितसंबंध घराने के किसी दिवंगत व्यक्ति के हितसंबंध मे इच्छावासना बन कर दोषों के रूप में कार्य कर रहे थे, ऐसे दोषों को विमोचन किया। ऐसे दिवंगत व्यक्तियों को सद्‌गति प्राप्त होने के लिये आप भक्तों ने वर्षों तक श्राद्ध आदि विधि किये त्रिस्थल (प्रयाग, काशी, गया) की तीर्थयात्राएं की तो भी हमारा इष्ट हेतु आपको प्राप्त नहीं हुआ। उसी प्रकार अपने घराने के वंशपरांपरागत की कुलदेवता के लिये कुलधर्म, कुलाचार, होमहवन, दानधर्म भी किये। लेकिन इन देवताओं के कृपाशीर्वाद के मार्ग का अवलंब करने पर भी हम भक्तों को इष्टदेवताओं के कृपाप्रसाद का लाभ नहीं हुआ।

आज आप भक्तों को प्राप्त दीक्षा की अवस्था केवल प्राप्त जीवन में आपकी ऐहिक प्रगति के लिये नहीं है। किन्तु प्राप्त जीवन में पारिवारिक कर्तव्यों की पूर्तता कर प्राप्त जीवन की सार्थकता करने का कार्य इन दीक्षाओं के अनुसार आप भक्तों को करना है। इस गुरूकृपाशीर्वाद के कारण आप भक्तों ने अपने घराने के दिवंगत व्यक्तियों को सद्‌गति करा दी, और उसी के साथ प्राप्त जीवन में अपने घराने की जो कुलदेवताएं हैं, उनका भी कृपाशीर्वाद प्राप्त करने लायक आप बने। इसके अलावा आपका प्राप्त जीवन जिन जन्मकर्म ऋणानुबंधों के कारण आपकी उपासना में अवरोध उत्पन्न करता था। ऐसे कर्म का भी विमोचन हुआ। प्राप्त जन्म में जीवन को सार्थक करने की दुर्लभ अवस्था श्रीसद्‌गुरू ने केवल कृपावंत होकर आप भक्तों को इसी जन्म में प्राप्त करा दी है।

इस हितसंबंध में आप भक्तों को मुलाकात द्वारा ऐसा सूचित किया गया था कि इहजन्म के उर्वरित काल में आप भक्तों को प्राप्त जीवन को सार्थक करने का कर्त्तव्य निभाना है। लेकिन अनेक भक्तों को प्राप्त जीवन को सार्थक करना यानि क्या करना है, इसका ज्ञान न होने से उन्होनें कारणदीक्षा प्राप्त होते ही अपने जीवन की कर्तव्य पूर्ति करने की अपेक्षा ज्यादातर समय गुरूकृपाशीर्वाद प्राप्त करने में खर्च करना हैं ऐसा अर्थ लगाया है। वास्तव में दीक्षा प्राप्त होना इसका अर्थ ही आपको गृरूकृपाशीर्वाद प्राप्त हो रहा है यह है। इसलिये अधिक समय तक सेवा करने का कर्तव्य आप भक्तों पर श्रीगुरू ने न सौंप कर, प्राप्त कृपाशीर्वाद का केवल जतन करने का कर्तव्य निभाने की जिम्मेदारी आप पर सौंपी है। इस कर्तव्य की पूर्ति करते समय "जिस समाज में हमने जन्म लिया है उस समाज के प्रति कुछ परोपकार करने का मेरा कर्तव्य है" यह ध्यान में रखकर "क्या मुझे प्राप्त हुए जीवन के ऐहिक सुख-शाति-समाधान में अन्य लोगों का भी अशंमात्र हिस्सा है? यह प्रश्न अपने आपसे पूछना चाहिये"। ऐसा सवाल विचार में लेने पर हमारे सामने मुख्यत: जो विषय प्रश्नचिन्ह बन कर खड़े होते हैं वे इस प्रकार हैं। क्या मुझे देवधर्म करना चाहिये? क्या मुझे दानधर्म करना चाहिये? इसके अलावा मुझे द्रव्यदान, वस्त्रदान, अन्नदान, विद्यादान, भूदान करना चाहिये?

इनमें से पहले कर्तव्य का भाग यानि देवधर्म और दानधर्म, इन कर्तव्यों से हमारी मुक्ति गुरूकृपाशीर्वाद से हो चुकी है। यह मुक्ति गुरूकपाशीर्वाद से करने का कारण यह था कि आज तक आप भक्तों ने इस मार्ग का अवलंब केवल अंधश्रद्धा और अनुकरण के रूप में किया। वास्तव में हमें प्राप्त जीवन यह अन्य लोगों को भी सुख-शांति-समाधान का कारण बने इस कर्तव्य की पूर्तता करने के लिये है। यह समाज कल्याण का और अनभिज्ञ रूप में होनेवाले परोपकार का लाभ लेने के कर्तव्य का विचार मन में अभी तक हम ने गलती से भी किया नही है।

अब दूसरा मार्ग द्रव्यदान, वस्त्रदान, अन्नदान, विद्यादान इत्यादि का है। यह मार्ग भी जीवन की कर्तव्य पूर्तता और जीवन की सार्थकता

करने का है लेकिन नित्य के जीवन में हम इन में से किस मार्ग का कर्तव्य करते हैं? अन्नदान करने पर, हम बचा-खुचा बासी अन्न भिखारी को देते हैं और मैं अन्नदान करता हूं ऐसा कहते हैं। वास्तव में जो भिखारी दोपहर माध्यान्न समय की क्षुधा बुझाने के लिये भीख मांगता हैं, उसे भी सुग्रास अन्न खाने की इच्छा होती है। लेकिन कर्म के कारण भीख मांगने का जीवन जिसे प्राप्त हुआ है, उसकी ओर हम कभी आस्थापूर्वक नहीं देखते। हम रोज दो बार नित्य से खाना खाते हैं ऐसे वक्त अपने सामने आया अच्छा देखकर अपने आप को यह प्रश्न पूछना चाहिये कि जिस गुरूकृपा से मैं जो यह अन्न ग्रहण कर रहा हूं, क्या उसमें अन्य का भी हिस्सा है? और क्या उसे देने का कर्तव्य मैं काया-वाचा-मन से निभा पाऊँगा? इसी प्रकार वस्त्रदान, द्रव्यदान, विद्यादान करते समय यही सवाल अपने आपको पूछने का कर्तव्य नित्य रूप से करना और कर्तव्य के अनुसार अपने आचार-विचार हमेशा इसी प्रकार रखने चाहिये यही जीवन की सार्थकता है।

जीवन में किसी भी प्रकार की साधनसेवा न कर दीक्षा प्राप्त हुई है, इसलिये ऐहिक सुख की अधिक प्राप्ति होगी, इस इच्छा अपेक्षा से प्राप्त दीक्षा का कभी भी अनादार न कर, जीवन में प्राप्त सुख, शांति-समाधान किस तरह अनुभव होगा, इस कर्तव्य को ध्यान में रखकर प्राप्त सुख का समाधान से उपभोग करना ही जीवन का सच्चा परमार्थ और उसकी सार्थकता है।

इस तरह जीवन को सार्थक करने का इतना सरल मार्ग सूचित करने पर, प्राप्त जीवन में तथा भविष्य में अपने बालबच्चों के कल्याण के लिये क्या करना इष्ट है इसका फैसला करना यद्यपि आप भक्तों को संभव नहीं, तो भी सद्गुरूकृपाशीर्वाद से आप भक्तों के कल्याण के लिये श्रीसद्गुरू कुछ ना कुछ निश्चित मार्ग इसलिये सूचित करते हैं, कि उसका लाभ आप भक्तों का प्राप्त जीवन में तो होगा ही, लेकिन भविष्य में भी आप की पीढ़ियों का कल्याण इस मार्गदर्शन में शामिल है।

आज तक आप भक्तों ने जीवन में अपेक्षित सुख-शांति-समाधान प्राप्त करने के लिये अन्य मार्गों का अवलंब किया उसके लिये पैसे खर्च करने में कष्ट उठाये फिर भी निश्चित रूप से सुख शांति समाधान का लाभ आप नहीं प्रात कर सके। लेकिन आज आप भक्त गुरूकृपाशीर्वाद के लिये लायक बनने से, ऐहिक सुख प्राप्ति तो हुई ही, साथ ही प्राप्त जीवन को सार्थक करने के लिये कृपाशीर्वाद भी प्राप्त किया। इस प्रकार प्राप्त जीवन का लाभ लेते हुये, वैयक्तिक स्वार्थ की भूमिका रखकर श्रीसद्गुरू के दिये हुये कृपाशीर्वाद का ऋण हम चुकता नहीं कर पायेंगे। वास्तव में गुरूकृपाशीर्वाद का ऋण हम मानव किसी भी जन्म में चुकता नहीं कर पायेंगे। यद्यपि यह सत्य है, तो भी आज दुनिया में लोककल्याण के कार्य के रूप में कुछ प्रकार सेवा जारी है। लेकिन ऐसे सेवा कार्य का महत्व या ऐसे सेवा कार्य में हम शरीक हो ऐसा भी आप विचार न कर और समाज के कल्याण के लिये चल रहे कार्य की पूरी पहचान न कर, अज्ञानवश आप उसकी निंदा ही करते रहते हैं। लेकिन जब हम सद्गुरूकृपाशीर्वाद से सुख-शांति सामधान का लाभ लेने का कर्तव्य प्राप्त करते हैं, उस समय अन्यों के सेवाकार्य के कर्तव्य को आपने किसी प्रकार से मदद करना यह आपका इष्ट कर्तव्य है, यह भूल जाते हैं। गुरूकृपाशीर्वाद के फलस्वरूप आपको देवदेवादिकों के धर्मकृत्य परंपरानुसार करने की आवश्यकता अब नहीं रही है। इसके कारण आपके पैसों की कुछ बचत हुई है। उसी तरह अन्य प्रकार से सुख प्राप्ति के मार्ग से भी आप गुरूकृपाशीर्वाद से राहत पा चुके हैं और इस वजह से भी आपके पैसों की बचत हो रही है। इस तरह की पैसों की बचत केवल गुरूकृपाशीर्वाद से ही होती है। इस कृपाशीर्वाद का सूज्ञ भक्तों ने ऐसा अर्थ लेना चाहिये कि "पूर्व में अंधश्रद्धा तथा दूसरों का अनुकरण करने के कारण अनावश्यक रूप से हमारा जो पैसा खर्च होता था वह खर्च उचित रूप से ही इसलिये श्री सद्गुरू ने कृपावंत होकर अनुकरण तथा अंधश्रद्धा से हमें बचाकर अभय दिया है" "केवल अपनी संचित धरोहर बढ़ाने के लिये कृपाशीर्वाद दिया गया है" ऐसा अर्थ लगाना उचित नहीं होगा। गुरूकृपा

का यह हिस्सा समाज के अन्य कार्यो के सेवा में लगाकर उसका लाभ आपने उठाया, तो ही दीक्षा के अनुसार अपने जीवन की सार्थकता का मतलब क्या है इसकी आपको पूरी पहचान होगी।

आप भक्तों के जीवन के इष्ट कर्तव्य का ज्ञान और पहचान उपरोक्त विवेचन से कर देने पर हमें यह महसूस होगा कि क्या वंदनीय दादा ने इस कार्यपद्धति में कुछ नये सेवाकार्य की योजना बनायी है?

श्री साई स्वाध्याय मंडल :

परमपूज्य साईनाथ महाराज के आज्ञानुसार श्री साई स्वाध्याय मंडल की स्थापना हुई है। इस संस्था का कार्य और परिचय हम भक्तभाविको को होना आवश्यक है।

आप भक्तों के पारिवारिक जीवन में जो दिक्कते आती हैं, उसके संबंध में पूछने के लिये जब आप आते हैं, तब उस संबंध में मार्गदर्शन करने का कार्य श्रीसाई आध्यात्मिक समिति गत अनेक वर्षों से कर रही है। आपको केवल धर्म का और भगवान का परिचय हो इस सीमित हेतु से यह कार्य स्थापित नहीं किया गया है। इस दुनियां में जो जन्म लेता है उसके धर्म और भगवान तो है ही परंतु प्रत्येक की विचार धारणा यह हुई है कि खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता प्राप्त करना ही जीवन है, और इस सुख की प्राप्ति हो केवल इसलिये मनुष्य भगवान और धर्म का विचार आज कर रहा है। अपने प्राप्त जन्म का कारण क्या है, और उसके अनुसार अपना इस दुनियां में क्या कर्तव्य है, इसका विचार कोई भी नहीं करता, इसलिये मनुष्य को उस कारण तथा कर्तव्य की पहचान नहीं होती। जिस भगवान ने हमें जन्म दिया है उसकी पहचान हमें होनी चाहिये। लेकिन मनुष्य तो व्यस्त अपने कर्म की पहचान करने के प्रयत्न में होता है, और उसकी पहचान भी उसे पूरे रूप से होती नहीं। यद्यपि इस दुनिया में जन्म लिया है "ऐसा हम कहते हैं, तो भी सही माने में जन्म प्राप्ति अभी होनी है। क्योकि प्राप्त जन्म का ज्ञान होने पर ही सही माने में जन्म प्राप्ति होती है ऐसा कह सकते हैं। यह अवस्था जिसे गुरू की भेंट हुये बिना प्राप्त नहीं होती। दुनियां में जन्म यानि उत्पत्ति अवस्था प्राप्त जिसे होती है, उसे "लय" अवस्था भी होती है, लेकिन "स्थिति" प्राप्त होना यानि जन्म प्राप्त होना ऐसा कहा जा सकता

है। इसलिये परिवर्तन होना आवश्यक हैं। यह कार्य गुरू कृपा बिना संभव नहीं।

जन्म लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति के जन्म प्राप्ति के पीछे कुछ एक निश्चित कारण होता है, यह हमें ज्ञात होना चाहिये। इसीलिये आज तक समिति ने इस कार्य का परिचय श्री साईनाथ महाराज के कृपाशीर्वाद से आपको करा दिया है। प्रत्येक मनुष्य की सुख-शांति समाधान के संबंध में अपेक्षायें होती है। लेकिन इन अपेक्षाओं की फलप्राप्ति क्यों नहीं होती है, इसका शास्त्रीय कारण कोई भी ध्यान में नहीं लेता। इन सुखों की प्राप्ति नहीं हो रही है। इसलिये अपने स्वयं के जीवन में और समाज में अशांति निर्माण करने के लिये हम स्वयं जिम्मेदार होते आ रहे हैं। इसलिये इस दुनिया में सुख का कोई मार्ग प्राप्त करने के लिये बिना ज्ञानी बने मनुष्य अज्ञानी मार्ग का अवलंब का ज्यादा अज्ञानी बन रहा है इस तरह के मानव जीवन में निश्चित ऐसा मार्ग हम मानवों को प्राप्त हो इसलिये परमपूज्य बाबा ने समय समय पर कृपाशीर्वाद के रूप में मार्गदर्शन किया है। यह कृपाशीर्वाद यानि आज तक हजारों वर्षों से अवतार लिये पुरूषों ने मानव कल्याण के लिये की सिद्धसाधनाएं है। उसकी प्राप्ति साधारण मनुष्य को सुलभता से प्राप्त हो इसलिये किसी बिचौलिये के माध्यम से यह कार्ययोजना भगवान करते हैं वह कार्य योजना उस बिचौलिये व्यक्ति के विचार से निर्माण नहीं हुई होती। लेकिन इस कार्य में मानव को जीवन में सुख-शांति समाधान मिलने की योजना होकर भी, मनुष्य अज्ञानवश इस मार्ग से दूर जाता है।

ऐसी योजनाओं में से वंशविमोचन साधन बहुत महत्वपूर्ण है और इस साधन का लाभ आप भक्तों ने उठाया है। मानव जीवन में संपत्तिनाश, संताननाश और विद्यानाश प्रमुख दोष है। उसके निवारण के लिये पूजापाठ, मन्नतें आदि मानवी प्रयत्न अपर्याप्त होते हैं, गुरुकृपाशीर्वाद का लाभ होने पर ही इन दोषों से हमारी यानि हमारी भावी पीढ़ियों की मुक्ति होती है। इस में अगर विद्यानाश दोष निर्माण हुआ तो एक पीढ़ी के कुछ लोगों का विद्यार्जन होता है, कुछ व्यक्तियों

का हो नही पाता। आगे कालांतर में इस दोष में बढ़ोत्तरी होकर, परिवार में क्षमता होकर भी विद्यार्जन नहीं किया जा सकता। आज और भविष्य में प्रत्येक व्यक्ति के लिये विद्यार्जन करना आवश्यक है। लेकिन ऐसे दोषों का निवारण गुरूकृपाशीर्वाद का लाभ होने पर ही होता है। इसके लिये श्रीसद्गुरुकृपा से "श्री साई स्वाध्याय मंडल" संस्था की स्थापना की गयी है, समिति के प्रत्येक कार्य केन्द्र पर एक बही रखी गयी है। हम सब भक्तभाविकों और अपने परिवारजनों ने अपने हस्ताक्षर से इस बही में अपना नाम और पता लिखकर, श्री साई स्वाध्याय मंडल का सदस्य बनना चाहिये।

आप विद्यार्जन करते और उस शिक्षा से आगे नौकरी-धंधा आदि व्यवसाय कर द्रव्यार्जन करते हैं। लेकिन सुख प्राप्त होने पर भी शांति प्राप्ति का अनुभव नहीं होता। इसका कारण विद्या यह दान करने के लिये होती है। लेकिन हम में परोपकार करने की भावना न होने से आपको उसका लाभ नहीं मिलता। भविष्य में अपने परिवार में जो कोई विद्या विद्यार्जन कर ज्ञानी होंगे, उनकी प्राप्त विद्या का सदुपयोग दुनिया के कल्याण के लिये हो, ऐसी परमपूज्य बाबा की इच्छा है। इसके लिये श्री साई स्वाध्याय मंडल की स्थापना की गयी है। इस संस्था के सदस्य बनने के लिये किसी भी प्रकार का चंदा इकठ्ठा नहीं किया गया है। आप भक्त सदस्य बने इस लिये परमपूज्य बाबा का आशीर्वाद इस स्वाध्याय मंडल को प्राप्त हुआ है, और यह धरोहर आप इस संस्था के सदस्य बनने के नाते अपना नाम दर्ज करने से पहले ही प्राप्त हुई है।

हम भक्तभाविक आज तक अड़चनों का निराकरण करने के लिये गुरुचरणों में आते रहे हैं और भविष्य में भी आते रहेंगे। जीवन के दुख दर्द दूर होकर सुख-शांति प्राप्त करने की हमारी इच्छा होकर भी विद्या द्वारा जो ज्ञान प्राप्त करना है अगर वह ज्ञान प्राप्त न हुआ तो कितना भी सुखप्राप्त हुआ तो भी समाधान प्राप्त नही होगा क्योंकि "समाधान" यह अवस्था पैसों से प्राप्त होने वाली नहीं है, वह विद्यार्जन से ज्ञानी होने पर ही प्राप्त होती है। इसका विचार सूज्ञ भक्तभाविकों को भविष्य पर नजर रखकर करना चाहिये।

सर्वसामान्य रूप से मनुष्य यह विचार रखता है कि उच्च शिक्षा प्राप्त करना यानि ज्ञानी होना है। लेकिन “ज्ञान” अलग अवस्था है, वह दैहिक माध्यम के आचार, विचार और उच्चारण से व्यक्त होनी चाहिये। दुनिया में कुछ लोग जन्मत: ही असामान्य बुद्धिवाले होते हैं। ऐसी बुद्धि का सदुपयोग दुनिया को ज्ञानी बनाने के लिये होना चाहिये। क्योंकि पूर्वपुण्य के कारण उन्हें ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ होता है कि विश्व के घटनाचक्र का ज्ञान प्राप्त करने की अवस्था उनमें धारण हो। लेकिन इसका ज्ञान न होने से ऐसे व्यक्ति विश्व-विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर, केवल अपने चरितार्थ का ही विचार करते हैं। इसलिये दुनिया को ज्ञान देने का कर्तव्य उन से नहीं होता है। ऐसे व्यक्तियों को यद्यपि सुख प्राप्त हुआ भी तो वे समाधान अवस्था का अनुभव प्राप्त नहीं कर सकते।

गुरुमार्ग में जो ज्ञानी हैं, उन्होंने यह ज्ञान पाठशाला या विश्वविद्यालय में प्राप्त न कर, उनकी यह प्राप्ति स्वयं या गुरुमार्ग में किसी विशिष्ट साधना से होती है। यही ब्रह्ज्ञान है, और इस ज्ञान को 'अपौरूष' कहते हैं। ज्ञान का प्रारंभ 'श्री' से होता है और अन्त भी 'श्री' से होता है। पहली 'श्री' यानि लक्ष्मी और दूसरी 'श्री' यानि सरस्वति है। पहले श्री की प्राप्ति किसी को भी होती है, लेकिन दूसरी श्री प्राप्त करने के लिये पूर्वपुण्य, पूर्वसंस्कार या कृपाशीर्वाद की आवश्यकता होती है। आज दुनिया में ऐसे कितने लोग है, जो पूर्वपूण्य से जन्म ले सकते है? इस बीसवीं सदी में शिक्षा के बिना जीना, हम मानवों के लिये असंभव है। ज्ञान पूर्वपुण्य पर निर्भर होने से, दुनिया में इने-गिने लोग ही इस ज्ञान अवस्था का लाभ ले सकते हैं। लेकिन बहुत से लोग पूर्वपुण्य के अभाव में और जीवन के दोषों के कारण, शिक्षा न मिलने से दुखी होते हैं। इस बात का दुख होने पर भी इस स्थिति को बदलने का मार्ग आज समाज के सामने नहीं है। इसका लाभ ज्योतिषी आदि लोग लेते हैं। अमुक ब्रत, मन्नत या जाप करो, आपका पुत्र कालिदास बनेगा', इस प्रकार वे मार्गदर्शन करते हैं। लेकिन

कालिदास बनने की बजाय यह पुत्र किसी का दास बन कर अपना जीवन बिताता है। विद्यार्जन और ज्ञानप्राप्ति न होने की समस्या से दुनिया के पचहत्तर प्रतिशत लोग ग्रसित हैं। तब इस परिस्थिति में कुछ मार्ग निकल सकता है या नहीं? यह सवाल मैंने यह कार्य स्थापन करने से पहले परमपूज्य साईनाथ महाराज को किया था। भविष्य में जब बेला आयेगी, उस समय मार्ग बताऊंगा', ऐसा उत्तर परमपूज्य बाबा ने दिया था। यह बेला आने में पैंतीस वर्ष लगे। यही गुरुमार्गदर्शन का मर्म है।

अपने जन्मकारण और जीवन का ज्ञान हम भक्तों को हो, इसलिये इस कार्यपद्धति में आज तक साधना सम्मेलन आयोजित किये गये। इन सम्मेलनों का प्रमुख विषय मानव जन्म जो प्राप्त होता है उसकी 'जीवन उत्पत्ति और कार्य' था। यद्यपि हम मानव जन्मप्राप्त करते है, तो भी जीवन जीना एक कला है और उसका लाभ गुरुकृपा बिना नहीं होता है। इसमें गुरू से भेंट होना या गुरु को मानना इतना ही न होकर, गुरु जो मार्गदर्शन करते हैं उसके अनुसार आवश्यक कर्तव्य है वे हमें ही करने पड़ते हैं। यह शिक्षा इन सम्मेलनों में भक्तभाविकों को दी गयी। इसके साथ ही देहिक विकास के लिये आवश्यक सेवा यानि ॐकार साधना और श्रीसद्‌गुरुनामस्मरण साधना भी सिखाई गयी।

इन सम्मेलनों से भक्तभाविकों को जिस अलौकिक ब्रह्मज्ञान का लाभ हुआ, उसके कारण आप प्राप्त जीवन में सज्ञानी होकर, आपके काया-वाचा-मन में, केवल गुरु तत्व ही इस दुनिया में साक्षी हैं, इस प्रकार की आदरपूर्वक (धरोहर) प्राप्त हुई है। यह अमूल्य धरोहर हरेक के जीवन में और हमारे परिवार में पीढ़ियों तक हमेशा निवास करती रहे, इसका प्रमाण ही श्री साई स्वाध्याय मंडल संस्था की स्थापना है। बाप सबने अपने परिवार के लिये भविष्य में इस तरह का आशीर्वाद प्राप्त करना है कि हरेक को जन्म प्राप्त करने पर विद्यार्जन की धरोहर जन्मतः प्राप्त होकर, ज्ञान अवस्था का लाभ हो। यह ज्ञानज्योति हमारे परिवार में अखंड रूप से जलती रहे इसलिये श्री

साई स्वाध्याय मंडल का सदस्य "श्री गुरू आपको बनाये" ऐसी प्रार्थना परमपूज्य बाबा के चरणों में मैं कर रहा हूं।

दुनिया में संस्था स्थापना करने के लिये लोग पैसा इकठ्ठा करते हैं। श्री साई स्वाध्याय मंडल संस्था की यह विशेषता है कि हम सबको इस संस्था का सदस्य बनना है, लेकिन पैसा देकर नहीं, जिस गुरु को हमने काया-वाचा-मन से माना है, यह अमूल्य धरोहर यानि 'श्रद्धा' ही चंदा है और उसे हमे देना है। श्री साईनाथ महाराज का कृपाशीर्वाद और आप भक्तों ने उनके चरणों में अर्पित आपकी श्रद्धा, इससे श्री साई स्वाध्याय मंडल संस्था जो कार्य इस दुनिया में करेगी, वह कार्य सच्चे अर्थ में 'लोककल्याण कार्य कहलायेगा। इस प्रकार के अलौकिक तत्वों पर स्थापित यह संस्था दुनिया में अखंड रूप से कार्य करती रहेगी और उस कार्य का घोषवाक्य, "इस दुनिया में जो दुखी है, पीड़ित हैं, उन्हें जो अपना कहेगा" जे का रंजले गांजले, त्यांसी म्हणे जो आपुले") होगा। आप सभी भक्तभाविक जिन्हें श्री गुरुकृपा से अपने काया-वाचा-मन का विकास कर ज्ञान अवस्था का लाभ हुआ है, ये आपके काया-वाचा-मन में यहीं भाव निवास करता रहे ऐसी परमपूज्य बाबा के चरणों में प्रार्थना है।

आप सभी भक्तगणों को परमपूज्य बाबा ने इस समिति का सदस्य बनाया है, इसका अर्थ अपने घराने का विद्यानाश, जो वंश परंपरा से आगे भी होने वाला था, उसे विमोचित कर, भविष्य में आपने ली हुई विद्या की अदायगी दान करने से ही यह कृपाशीर्वाद आप अपने परिवार के लिये प्राप्त कर सकेंगे। इस कार्य में सभी भक्तभाविक कर्तव्यबुद्धि से शामिल हो ऐसी परमपूज्य बाबा के चरणों में प्रार्थना है।

आप भक्त अड़चनों के निवारण के लिये आने पर सुख-शांति-समाधान प्राप्त करने के लिये धर्माचरण, देवदेवतार्जन आदि मार्गो का परिचय देना पड़ा। लेकिन आज इस मार्गदर्शन के आगे की प्रगति का मार्ग यह है कि दूसरों के कल्याण के लिये प्राप्त जीवन में तन-मन-धन से इस कर्त्तव्य की पूर्ति आप अपने यथाशक्ति यथाज्ञान से करेगें और उसमें समाधानी होगें और दूसरों के कल्याण में स्वयं को

समाधानी रखना ऐसी अवस्था प्राप्त करना यह परमार्थ में सच्चे अर्थ से मुक्ति है। ऐसा कहते हैं।

आप भक्तों को कारणदीक्षा प्राप्त होने पर जो पुण्यकर्म करना है, उसमें साधन सेवा का अधिक काल तक विचार न कर, दूसरों के कल्याण के लिये जो कर्तव्य आपने अपनाया है, उसकी सार्थकता आप प्राप्त दीक्षा के अनुसार भक्त प्राप्त कर सकेंगे। इतना ही नहीं तो आपके किये कर्तव्यों की धरोहर भविष्य में आप भक्तों की भावी पीढ़ियों को सहजता से प्राप्त होगी, भविष्य में आप भक्तों के बाल-बच्चों को नये सिरे से देवदेवतार्जन, कुलधर्म, कुलाचार, उपवास, व्रत, दानधर्म, तीर्थयात्रा आदि कार्य कर पुण्यसंचय करने की आवश्यकता नहीं है।

तुम भक्तों के हित के लिये और कल्याण के लिये पोषक मार्गदर्शन कर, भविष्य में आपके बालबच्चों को इस मार्गदर्शन के अनुसार अपने आचार-विचार रखने में किसी भी प्रकार की दिक्कत न हो ऐसी पद्धति से यह कार्य अनेक वर्षो से चल रहा है। आज आप भक्तों को जो उपरोक्त निवेदन अध्ययन करने के लिये दिया है, उसे आपके परिवारजनों ने एकत्रित बैठकर, परिवार के सज्ञान लड़के-लड़कियों को भी निवेदन में उनके लिये जो हितकारक विषय है, उसे योग्य रूप से समझाकर, उनके भी नित्य के आचार-विचार प्राप्त दीक्षा को पोषक होंगे, इस तरह का आत्मविश्वास उनमें निर्माण करना चाहिये। आप भक्तों को दीक्षा के लिये लायक होने पर जीवन में मामूली दिक्कतें नहीं आयेंगी ऐसा नहीं है। यद्यपि वे आई भी तो गुरूकृपाशीर्वाद से उनका निवारण होगा, इसका इन्तजाम अपने जीवन में हुआ होने से, आने वाली दिक्कतों का आस्थापूर्वक विचार करना चाहिये। यदि किसी कारण से एकरूप हुये काया-वाचा-मन से जिस ॐकार साधना का आप लाभ उठाने वाले हैं, उस साधना में केवल एकाध मामूली अड़चन के कारण प्रतिकूल विचार निर्माण कर अशांति निर्माण करेंगे, तो प्राप्त दीक्षा से जो "साध्य" अवस्था आप भक्तों को प्राप्त करनी है, उसे प्राप्त करनें में इस प्रतिकूल विचार के द्वारा अवरोध निर्माण होगा। पहले आप इसी गुरूमार्ग के मार्गदर्शन का लाभ लेते समय सूचित

साधन सेवा आप नही कर पाते थे। इसका कारण प्राप्त जीवन के काया-वाचा-मन का हितसंबंध जन्मकर्म, जन्मजन्मांतर और अन्य ऋणानुबधों से था। इन दोषों का गुरूकृपाशीर्वाद से विमोचन होने से, आप भक्तों को सुलभ साधन सेवा पद्धति से "साधक" और "सिद्ध" दोनों अवस्थायें अज्ञात रूप से प्राप्त हुई, तो भी गुरूमार्ग की प्रधान अवस्था "साध्य" प्राप्त करने के लिये जो सुलभ साधन बताया गया है, साधन "साध्य" अवस्था तक ले जाकर उसे प्राप्त करने के लिये किसी भी प्रकार के व्रत, उपवास, दानधर्म या किसी मात्रा में जाप करने का मार्ग सूचित नहीं किया है। साध्य अवस्था प्राप्त करना कठिन होते हुये भी नित्य निश्चित रूप से आधा घंटा सेवा करने से साध्य अवस्था हमें प्राप्त हो सकेगी।

"साध्य" अवस्था प्राप्त करने के लिये जो साधन आप भक्तों को सूचित किये गये है, उस नित्य रूप से की गयी साधना से जब आप भक्त अपना देहिक माध्यम यानि काया-वाचा-मन नित्य की साधना से एकरूप करेंगे, उसी समय यह काया-वाचा-मन तन-मन-धन में परिवर्तित होकर आपमें धारण होगा। "साध्य" अवस्था का यह स्पष्ट खुलासा आपको करने पर यह प्रश्न निर्माण होगा कि काया-वाचा-मन और तन-मन-धन में फर्क क्या है। तो गुरूमार्ग में "साध्य" अवस्था प्राप्त होने में काया-वाचा-मन का परिपक्व होना आवश्यक है। परिपक्य काया-वाचा-मन की यह अवस्था ही तन-मन-धन है।

साधनामार्ग के प्रारंभ में आपके काया-वाचा-मन की जो देहिक अवस्था थी, उस अवस्था में ऐहिक विषयाधीन होने का कार्य निरंतर होने से, आप नित्य की साधना से कभी भी एकरूप नहीं हो पाये थे, जब इस काया-वाचा-मन का परिपक्व होकर तन-मन-धन अवस्था प्राप्त हुई, तब आपके जीवन का ईश्वर यह इच्छित विषय साकार हुआ होने की प्रक्रिया इसी देहिक माध्यम से आपके बिना जाने शुरू हुई। इस प्रकार जीवन में प्राप्त हुई यह अमूल्य दीक्षा अगर आपको प्राप्त जीवन में तथा भविष्य में परिवार के कल्याण के लिये संजोये रखनी है तो आगे जीवन में किसी भी कारण उत्पन्न अड़चनों के

निवारणार्थ किसी भी देवदैविक उपासना, उपवास, मन्नतें व्रत, तीर्थयात्रा, श्राद्ध आदि मार्गो का अवलंब नहीं करना चाहिये। इसका कारण यह है कि दीक्षा के "साध्य" अवस्था की प्राप्ति होने के लिये जो मार्गदर्शन सूचित किया गया है, यह सेवा निःसंकोच तथा निरंतर करने से ही "साध्य" अवस्था सिद्ध होगी। इस अवस्था में आप भक्तों को गुरूकृपाशीर्वाद के सामर्थ्य के संबंध में चमत्कार, दृष्टान्त, साक्षात्कार आदि विषयों के संबंध में सपने नही आयेगें, क्योंकि ये सब विषय साधक अवस्था के पूर्व के है और आप भक्तों को इस साधक अवस्था के आगे की सिद्धसाध्य यह अवस्था प्राप्त हुई है। यह होने पर आप भक्त पूर्णतः कृपावंत हुये हैं इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिये इस साध्य सिद्ध अवस्था प्राप्त होने के पश्चात् अब मार्ग के आरंभ की अवस्था आपके दैहिक माध्यम में पुनः पनपना संभाग्य नहीं है। इसलिये आप भक्तों ने आपस में इस संबंध में चर्चा कर, जो अवस्था प्राप्त करनी है, उस संबंध में एक दूसरे में संशय नहीं उत्पन्न करना चाहिये। दीक्षा अवस्था प्राप्त होना यानि आप में सद्‌गुरू कृपाशीर्वाद का साकार होना है। ऐसी अवस्था सहजता से आज आपको प्राप्त हुई है। ऐसी अवस्था के कारण आपका तन-मन-धन सद्‌गुरू रूप हुआ है यह जब हुआ है तब किन्हीं देवदेवताओं, का पुरूष का या अन्य बाधाओं का संचार अपने में निर्माण होगा या हुआ है, ऐसी भावना निर्माण कर उस अवस्था के कारण दूसरों में उस संबंध में भय या आदर निर्माण नहीं करना चाहिये।

दीक्षा और उस दीक्षा के अनुसार करने की सेवा का पूर्णरूप से परिचय उपरोक्त निवेदन से आप भक्तों को हुआ ही होगा। कारणदीक्षा प्रार्थना के साथ और एक प्रार्थना कहने के लिये आप भक्तों को दी गयी थी। इस प्रार्थना के संबंध में यथायोग्य खुलासा आप भक्त शायद समझे या न समझे होंगे, इसलिये ये इस संबंध में इस निवेदन में स्पष्ट खुलासा किया जा रहा है। वह यह है कि पहले आपने अपने घराने के इष्ट देवदेवताओं के कृपाशीर्वाद प्राप्त करने के लिये विभिन्न उपासना, व्रत, जाप, होमहवन आदि मार्गो का अवलंब सज्ञान

होकर नहीं किया था। वह एक केवल घराने की परंपरा का पूर्वजों द्वारा किये गये अनुकरण का मार्ग था और उसे ही आपने अपने नित्याचरण में लाया। लेकिन जब आप भक्तों को गुरूकृपाशीर्वाद के अनुसार उपासना, दीक्षा, नामस्मरण दीक्षा, अनुग्रह दीक्षा, गुरूदीक्षा आदि का लाभ हुआ, तभी प्राप्त जीवन में सुख, शांति, संपत्ति आदि का लाभ सुलभता से आपको प्राप्त हुआ। अपनी भावी पीढ़ियों का विचार करने पर, आप गुरूकृपाशीर्वाद प्राप्ति से पहले जिस देवदेवतार्जन के मार्ग का अवलंब करते थे, वह मार्ग भविष्य में भावी पीढ़ियां आचरण में ला सकेगी या आचरण में लाने का प्रयत्न करने पर भी उसे पोषक ऐसे आचार, विचार और आहार पालन कर सकेगी इसकी संभावना नहीं है। इसलिये आज प्राप्त कारणदीक्षा का लाभ लेते समय, भावी पीढ़ियों का इन्तजाम करने की जिम्मेदारी आप भक्तों की है, जो प्रार्थना कहने को कहा गया है, उस प्रार्थना का हेतु यह है कि भविष्य में आपके घराने के बाल बच्चें ने ज्ञान-अज्ञानवश अगर परिवार की परंपरानुसार कुलधर्म, कुलाचार करने का कर्तव्य नहीं भी निभाया, तो भी उसके कारण उनके जीवन में दुख और अशांति निर्माण होने का कोई कारण नहीं है, यही भविष्य में आपके परिवारजनों के कल्याण का इन्तजाम है। आप भक्तों ने आज तक ज्ञान अज्ञानवश जो देवदेवतार्जन, कुलधर्म, कुलाचार की रूढ़ी परंपरा का अनुकरण किया, उसका समापन आपके ही जीवन में आप भक्तों से हो और भावी पीढ़ियों को भविष्य में केवल एक "गुरूभक्ति" यही प्राप्त जीवन की सार्थकता का मार्ग सुलभता से प्राप्त हो, इस गुरूकृपा की आज्ञानुसार वह प्रार्थना आप भक्तों को कारण दीक्षा के साथ कहने के लिये दी गयी थी।

इस प्रकार की प्रार्थना आप करते है इसका मतलब अब आप अपने घराने के कुलदेवदेवताओं के हितसबंध से जिम्मेदार नहीं है, ऐसी गलतफहमी किसी भी भक्त को नहीं करनी चाहिये। कुलधर्म-कुलाचार परंपरा के रूढीपरंपरा से आप भक्तों को यद्यपि गुरूकृपाशीर्वाद से उस कार्य का समापन होकर अभयदान मिला है, तो भी घराने की

जिन देवदेवताओं के कृपाशीर्वाद से गुरूकृपाशीर्वाद के माध्यम का लाभ हुआ, उन इष्ट देवदेवताओं का परिचय आप भक्तों ने भावी पीढ़ियों को करा देने के कर्तव्य को अनदेखा नहीं करना चाहिये।

आप भक्तों को परमार्थ और जीवन की सार्थकता करने के संबंध में जानकारी गुरूमार्ग में आने पर हुई इसके पूर्व में आपके परिवार के बुजुर्ग व्यक्ति अपने परिवार के कल्याण के लिये और रक्षा करने के लिये अपने घराने की कुलदेवदेवताओं की मनोभाव से सेवा करते थे और यह योजना सर्व-सामान्य उपासकों से होकर मानवी अवतारों तक विभिन्न स्तरों के लिये बनायी है! अब दीक्षा लेने के उपरांत इस तरह की परंपरागत सेवा करना अनिवार्य नहीं होता है क्योंकि इस दीक्षा में ही देवदेवताओं का कृपाशीर्वाद अंतर्भूत है। फिर भी एक परंपरागत वार्षिक कुलाचार इस दृष्टि से नहीं किन्तु घराने की जिन देवदेवताओं के कृपाशीर्वाद से गुरूकृपाशीर्वाद की अमूल्य धरोहर प्राप्त हुई है, उन इष्ट देवदेवताओं के कृपाशीर्वाद के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिये घराने के बुजुर्गो ने अपने हाथों गोद भरना हल्दी कुंकुम देना आदि देवतार्जन किया भी तो यह कृति गुरूदीक्षा को बाधक ऐसी धारणा रखकर उस व्यक्ति के श्रद्धा भक्ति में अनावश्यक अवरोध किसी भी सूज्ञ भक्त को निर्माण नहीं करना चाहिये। पहले परिवार में जो देवतार्जन किया जाता था वह केवल रीतिरिवाज के रूप में होता था, उसे हम भक्त अब सज्ञान होकर करते हैं, तो उसका उचित लाभ होगा ही। पूर्व में जो धर्मकृत्य सालोंसाल करने पड़ते थे, उन्हें अब केवल वार्षिक त्यौहार के रूप में अपने विचार में लेने चाहिये।

हम मानव कर्माधीन है। कर्माधीन होने के कारण ऐहिक विषयों से अधिकाधिक एकरूप होकर उन विषयों का उपभोग लेना ही जीवन का इतिकर्तव्य है, ऐसा नहीं लगना मानवों के लिये स्वाभाविक है। तो भी हमारी देहिक अवस्था का विकास जो प्रत्येक मानव के लिये विभिन्न स्तरों पर होगा उनमें से हरेक स्तर में स्थित देहिक अवस्था को परम तत्व का लाभ हो इसलिये भगवान ने हमारे कल्याण के लिये मार्गदर्शन द्वारा योजनाएँ हमें परिचित करा दी है। ऐसा महान

उपकार कर जिस भगवान ने दुनिया की उत्पत्ति से अन्त तक हम मानवों के कल्याण के लिये जो सत्कार्य चलाया है, उसमें हमारा भी कुछ अंश तक सहभाग है। अगर हम ऐसे कार्य में शरीक न हो सके, तो भी उसके प्रति सहानुभूति रखने का कर्तव्य करने में किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं होना चाहिये। आज हमारे जीवन में जो हमारी आवश्यकतायें हैं, उनका बिना समाधान कहीं भी नहीं हो सकता है। आज प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे को अपनी सुविधानुसार मदद करने का प्रयास यद्यपि करता है, तो भी इस मदद में कहीं भी निःस्वार्थ, निरपेक्ष भाव अनुभव में नहीं आता। हरेक की मदद करने की जो भावना है, वह उपकार के रूप में विचार में ली जाती है। इसलिये किये हुये इस उपकार के बदले में कुछ मिल नहीं रहा है इसका दुख हमेशा होता रहता है। हम मानवों का स्वाभाविक धर्म मानवता धर्म है। सभी मनुष्य में आत्मा एक है, इस विचार से दुनिया के प्रत्येक मनुष्य को अपने-अपने सुख-दुख का एक दूसरे के साथ परामर्श कर उनका आस्थापूर्वक निवारण करना चाहिये। जिन सुखदुखों का निवारण मानवों के बाहर है, उनके निवारण के लिये भगवान अवतार लेकर इस दुनिया का भार उठा ही रहे हैं। इस परिस्थिति में अवतार रूप में ये जो सिद्धपुरूष कार्य के लिये आते हैं, उनको दुनिया के इस महान कार्य को करना पड़ता है। लेकिन इस दुनिया में हम मानव दुनिया के केवल एक इकाई है। इसलिये हम इस महान अवतार परंपरा का लाभ लेते समय केवल दुनिया के दुखी लोगों को सुखी करने के लिये यह अवतार परंपरा है, ऐसा संकुचित विचार करते हैं और प्राप्त जन्म में केवल हम स्वयं ही किस तरह सुखी होगे, इतना ही सोचते हैं। हमारे सुख का इन्तजाम करने के लिये भगवान को उपासक अवस्था से महाकारणिक अवस्था तक यानि अवतार कार्य तक अनेक जन्म तो लेने ही पड़ते हैं, लेकिन उसके साथ ही इस ऐहिक जगत के सुखों का त्याग भी करना पड़ता है। अब आप ऐसे सिद्ध सत्पुरूषों के दर्शन के लिये जाते हैं और अपेक्षित सुख की याचना करते हैं, उस समय कम से कम

ऐसा प्रश्न तो अपने मन को पूछिये कि जिन सिद्ध साधकों ने अनेक जन्मों तक प्राप्त जन्म को साधनमार्ग से पुनीत कर हमारे सामने ईश्वरी रूप का साक्षात्कार किया है, उनके सामने की गयी सुख की याचना का सुख का इस जन्म में कितने समय तक मैं उपभोग ले सकूंगा? इतना सीधा-साधा प्रश्न भी यदि आप अपने मन में पूछेंगे तो भी आपके सामने जो सिद्ध सत्पुरूष भगवान के विराट अवतार कार्य का सूत्र लेकर बैठे हैं, उनके कृपाशीर्वाद को आप सहजता से प्राप्त कर सकेंगे।

श्री गुरूपूर्णीमा का महत्व :

गुरूपूर्णिमा का त्यौहार हम हर साल मनाते हैं। आज जो जन्म प्राप्त हुआ है, वह जन्म पुन: प्राप्त होगा या नहीं इसकी शाश्वती नहीं है, अगर जन्म प्राप्त हुआ तो भी पुन: गुरूप्राप्ति होगी या नहीं और हुई तो आगे के किस जन्म में होगी, यह जानना कठिन होता है। गुरूप्राप्ति होने पर उनकी कृपा से जन्म का सार्थक होता है, यह निर्विवाद सत्य है। लेकिन वर्तमान जन्म में गुरूभेंट होने तक जीवन का जो समय फिजुल खर्च हुआ, उसके बारे में यद्यपि आज हमें पश्चाताप होता है, तो भी ऐसा पश्चाताप करने का प्रसंग भविष्य के जन्म में न आने देने कि खबरदारी कोई भी नहीं लेता। अनेक त्यौहार वर्षो तक जीवन में आते हैं, लेकिन उन त्यौहारों के दिनों का महत्व हम विचार में नहीं लेते। हर साल हम त्यौहार मनाते हैं, लेकिन उसका महत्व हमारे स्मरण में नही रहता है क्योंकि यह त्यौहार हर साल आते ही हैं। लेकिन जिस जीवन में ये त्यौहार मनाते हैं वह जन्म फिर कब आयेगा, इस पर यदि हमने विचार किया तो "क्या हमने दशहरा और दीवाली सच्चे अर्थ में प्राप्त जन्म मनायी?" यह सवाल अपने आप से करना पड़ेगा। इन त्यौहारों के समान ही गुरूपूर्णिमा भी हर साल आती है। यह गुरू के ऋणों को चुकता करने का दिन होता है। उस दिन हम गुरू की पूजा सिर्फ पैसों के माध्यम से करते है, लेकिन उससे गुरू का ऋण चुकता नहीं होता। जिनकी कृपा से हमें ज्ञान मिला, हमने नाम कमाया, इतना ही नहीं तो इस जन्म की सार्थकता कर सके, ऐसे गुरूऋण को चुकाना कदापि संभव नहीं है।

अगर हम अपने प्राप्त जीवन का थोड़ा हिस्सा दूसरों के कल्याण के लिये खर्च करेगें तो ही इस ऋण का थोड़ा अंश चुकता होगा।

मेरे जीवन के गत पचास वर्ष गुरूपूर्णिमा के दिन ही मैं दशहरा और दीवाली मनाता रहा हूँ। इस अवसर पर केवल बाल बच्चों को कपड़े गहने ही नहीं दिये, तो सच्चे रूप में त्यौहार को मनाया और इस समय अपने आपसे प्रश्न किया कि "अगर यद्यपि दशहरा मनाया जा रहा है लेकिन क्या जीवन में सीमा का उल्लंघन हुआ है? उसी प्रकार यद्यपि दिवाली मनायी गयी तो भी जिस दुनिया में हम रहते हैं, उसे क्या "प्रकाश" यानि ज्ञान दे सके? इस प्रकार से जीवन जी सके इसलिये श्रीसद्‌गुरू ने जो कृपा की है, वह दिन यानि गुरूपूर्णिमा है लेकिन यह अनुभव प्राप्त करने के लिये पचास वर्षो में गुरू को दक्षिणा के रूप मैंने क्या दिया? इसके लिये अपना तन-मन-धन देना होता है। यहां धन का अर्थ पैसा नहीं है। पैसों से जो खरीद ही नहीं सकते, वह सब गुरू को अर्पण करना है और जिस जगह मेरा मन जाता है वहां तेरा ही निजी रूप विद्यमान होता है यह प्रार्थना का संबोध जिस मन के प्रति हम कहते हैं वह मन भी गुरू चरणों में समर्पण करना होता है।

गत पचास वर्षों में मैंने एक ही गुरू का नाम लिया। उनका ही नाम स्मरण किया। जीवन में जो भी सुख दुख आये वह भी उनकी ही कृपा है। उनकी कृपा से जो कार्य आपके सामने रखा है वह कार्य करने की प्रेरणा उन्होंने ही दी। तदनुसार उनकी आज्ञा को मैंने कृपा समझकर स्वीकार किया। जीवन के प्रारंभ में ढाईसाल तक मधुकरी भिक्षा मांग कर सेवा की। दूसरों की नजरों में वह दुख है लेकिन आज जितने सुख मुझे मिले उससे भी अधिक सुखी मैं उस समय था। मैंने माधुकरी उनके लिये मांगी क्योंकि भगवान के लिये भीख मांगने में असीम स्वाभिमान भरा है इसकी कल्पना कीजिये।

पचास साल में गुरुपूर्णिमा का दिन मैंने नित्य रूप से मनाया। गुरु पूर्णिमा का त्यौहार अन्य त्यौहारों से मुझे महत्वपूर्ण लगा। हर साल के दशहरा और दीवाली का त्यौहार लोगों को प्रमुख लगते हैं। क्योंकि उस दिन खाने के लिये मिष्ठान्न मिलता है। इसके अलावा नये कपड़े और गहने भी लोग बनवाते हैं। दशहरा और दीवाली यह त्यौहार भी

मैंने मनायें, लेकिन वे गुरूपूर्णिमा के दिन आशीर्वाद लेकर मनाये। मेरे जगद्‌गुरू ने अपना नाम त्रिभुवन में अजरामर किया, वह दिन था दशहरा का। मैंने हर साल दशहरे के दिन परमपूज्य बाबा से यह मांगा कि दुनियां को सुखी बनाने का मुझे आशीर्वाद दो। सालों साल से समाज अंध विश्वास में जी रहा है। उनके जीवन में दशहरे के दिन सीमोल्लंघन कीजिये। यही मांग आपके चरणों में जन्मभर मांगूगा जिससे समाज जागृत होकर आपके नामस्मरण में धुंद होगा। उसी प्रकार दीवाली मनायी, और प्रार्थना की कि, भगवान ज्ञान दो। इस ज्ञान से अंध समाज की दृष्टि प्राप्त कराइये। संसार को ज्ञानी यानि प्रकाशमय कीजिये। इतना मांग करते करते आज पचास साल बीते, तो भी अभी भी दशहरा और दीवाली नहीं हो पायी है, ऐसा मैं कहता हूँ। तो गुरूपूर्णिमा कितनी दूर है इसका विचार करो।

इससे आगे सिर्फ गुरूपूर्णिमा ही मुझे नहीं मनानी है, बल्कि आने वाले दशहरा-दीवाली के त्यौहार मुझे गुरूकृपा से सारे संसार के लिये मनाने है। यदि अब आपको ध्यान में रखा तो ही सच्चे रूप में आपने गुरूपूर्णिमा मनाई ऐसा कहना सही होगा। गुरूकृपा का गुणगान और भाषण करते रहना, इसमें शताब्दियां बीत गयी। लेकिन गुरू की कृपा गुणगान और भाषणों से संपादन नहीं होती। यह जीवन अपने लिये नहीं है। अपने लिये इस जीवन का सिर्फ चौथा हिस्सा यानि चार आने ही है तथा उर्वरित तीन-चौथाई हिस्सा यानि बारह आने दूसरों के लिये हैं। यह बारह आने जीवन का विनियोजन संसार के लिये किस प्रकार किया जा सकेगा, इसका बोध आप भक्त सज्ञान होकर लें, ऐसी प्रार्थना मैं परमपूज्य बाबा के चरणों में करता आ रहा हूँ। इसका कारण जो सृष्टि का सृजन हुआ है इस सृष्टि का शोध हम मानवों को अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। प्राणियों की उत्क्रांति और मानव की उत्पत्ति, इस संबंध में शास्त्रज्ञों ने अनुसंधान किया है, लेकिन वे भी इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहते हैं। "कर्मवाद" विषय हिंदू धर्म में है। पुनर्जन्म को खिस्ती लोग नहीं मानते। मुसलमान, जैन, बुद्ध इन्होंने अपने-अपने विचारों से इसमें

विवाद निर्माण किया है तो भी निश्चित रूप से कोई भी कुछ नहीं कह सकता है या सिद्ध कर सकता है। पूर्व के युग में देवधर्म विषय अस्तित्व में आया लेकिन जिसे प्राप्त करना है, उसके लिये निश्चित रूप से क्या करना चाहिये? कौन से मार्ग को अपनाने से यह प्राप्ति होगी? या भगवान के नाना रूपों के संबंध में अंधश्रद्धा रख कर चुपचाप बैठे रहें? इस तरह के कठिन प्रश्न आज तक शास्त्रों के अनुसार सिद्ध करना किसी को भी संभव नहीं हुआ है। इसलिये पमरपूज्य साईनाथ महाराज की कृपा से "मानवता युग" को निर्माण करने की जिम्मेदारी आज हम सेवकों की है ऐसा कहना होगा। इसके लिये ऐसा शास्त्रशुद्ध मार्ग ढूंढ निकालना चाहिये कि जिससे किसी भी ध र्म का विरोध न हो। कौन सा धर्म श्रेष्ठ है, इस संबंध में विवाद नहीं होना चाहिये। ऐसा साधन समाज के सम्मुख रखना चाहिये कि जिससे समाज का कल्याण होगा। मानव जीवन के पुराने मतों और नयी विचारधाराएं इन दोनों को स्वीकार्य होगा ऐसे साधन की खोज लेना आवश्यक है।

"कर्मवाद" का विचार किया तो कर्म का प्रारंभ कहां से हुआ है। इसको ढूढंना यह एक कठिन प्रश्न खड़ा होता हैं। कर्मवाद और कर्म के फल यह विषय तत्वज्ञान के रूप में विचार में लेकर आज तक कई युग समाप्त हुये, तो भी कर्म का प्रारंभ कब और कहां से हुआ इसका निश्चय नहीं हो पाया है। इस तत्वज्ञान के वाद विवाद में पक्ष विपक्षों ने अपने-अपने मतों के समर्थन के लिये दलीलों की इतनी या अनगिनत टहनियां निकाली है कि क्या मानव की बुद्धि है भी या नहीं ऐसा विचार मन में आता है। इस खोजबीन का क्या कभी अन्त होगा या उसमें अपना ही अन्त होगा यही सवाल है।

सत्य है कि हरेक को अपने-अपने धर्म के अनुसार आचरण करना चाहिये, तो भी "धर्म" के अनुसार किस प्रकार आचरण होना चाहिये, इसका मार्गदर्शन करने वाली धर्मसंस्थाएं अपने स्वार्थ के परे विचार नहीं करती। दूसरी बाजु समाज की है। आज धर्माचरण करने की बात सोची भी जाए तो अपनी मातृभाषा हम नहीं जानते, अगर जानते भी है, तो उसका अर्थ न समझने से अधिक गुत्था हुआ है।

इस पर मन में यह विचार आता है कि समाज में धर्म के संबंध में इतना तत्वज्ञान किसलिये निर्माण हुआ है? क्या वह तत्वज्ञान एक दूसरे के प्रति द्वेष, विसंवाद आदि निर्माण करने के लिये सपन्न हुआ है? इसकी अपेक्षा प्राचीन युग के मानव जिन्हें हम जंगली, की संज्ञा से संबोधते हैं वे मन से तो भी सुसंस्कृत थे। इसका अर्थ यह है कि सुसंस्कृत कहलाने के लिये भी आज मानव जीवन अज्ञानी है, यह कहना होगा कि उस अज्ञान का शाप हम भुगत रहे हैं। आज के समाज की स्थिति ऐसी है कि एक नास्तिक है, तो दूसरा आस्तिक और तीसरा दोनों को माननेवाला, यानि कहने को आस्तिक भी और नास्तिक भी। इस स्थिति में समाज का संविधान जब तक बदला नहीं जाता तब तक यह विवाद चलता ही रहेगा, क्या इसका अन्त तो भी अच्छा होगा? आज समाज का एक हिस्सा इहजन्म का आस्थापूर्वक विचार भी नहीं करता है, और जो एक हिस्सा इहजन्म का विचार करता है, वह मुक्ति प्राप्त करने में व्यस्त है और अपने जन्म का कर्तव्य क्या है, यह सवाल अपने आप से नहीं करता है।

उपरोक्त विषय जिससे कि समाज इहलोक में सुख से रहे, इसलिये परमपूज्य साईनाथ महाराज ने अवतार कार्य किया। इस अवतार कार्य में भगवान सर्वव्यापी है, और सबसे प्रेम करना यही मानव का धर्म है, ये ही दो तत्व समाविष्ट है। इन दोनों तत्वों का विचार कर उन्हें आचरण में लाया जाये तो किसी भी धर्म का या तत्वज्ञान पर का अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक जन्म लेनेवाले मानव को इस "महामंत्र" से यह जागृति आयेगी कि, मेरे जन्म लेने का कत्तर्व्य मेरे जीवन में परमपूज्य बाबा की कृपा से घटित हो। आज तक साधकों ने और उपासकों ने "यह मंत्र श्रेष्ठ कि वह मंत्र श्रेष्ठ" यह विवाद चलाया परिणामवश जिनको सन्मार्ग की चाव थी, उनको योग्य दिशा की ओर जाने के लिये प्रकाश न दिखाते हुये जो जीवन पहले से ही अंधकारमय था, उनमें और एक मंत्र को ठूस दिया। प्रत्येक मंत्र का उच्चारण ॐकार से होता है। अगर यह ॐकार ही सिद्ध न हुआ, तो मंत्र का उच्चारण का कोई फायदा नहीं। इसलिये

परमपूज्य बाबा की कृपा से पहले ॐकार मंत्र सिद्ध कर दिया। क्योंकि विश्व की उत्पत्ति का सूत्र इस ॐकार में है। जब सृष्टि का निर्माण नहीं हुआ था, तब ॐकार यानि "ध्वनि और प्रकाश" अस्तित्व में थे और आज भी है।

आज भी प्राप्त जन्म दुर्लभ है, उसमें आने वाली अड़चनों के कारण हम गुरूमार्गी हुये। इसलिये इहजन्म में गुरू से भेंट होकर उनके उपदेश के अनुसार साधन सेवा करने का जो लाभ हो रहा है, वह सेवा अड़चनों को ध्यान में रख कर करना उचित नहीं। अनेक भक्त दीक्षा को स्वीकार करते हैं। अड़चनों का निवारण होकर सुख मिले इसलिये साधना करते हैं। इसमें साधना विषय यद्यपि ईश्वर प्राप्ति का है, तो भी साधना करने वाली व्यक्ति ऐहिक सुख की प्राप्ति का विचार करती है, इसलिये ईश्वर प्राप्ति भी नहीं होती और अपेक्षित सुख भी नहीं मिलता। अगर केवल साधना ही करने का विचार मन में हो तो न मांगते हुये भी सुख प्राप्त होगा।

जन्म लेने पर हमारा संबंध केवल हम तक ही सीमित न रहकर दुनिया के साथ भी होता है। हमारे जीवन में जो भली-बुरी घटनायें होती है केवल उनका ही जो विचार हम करते हैं, इतना संकुचित विचार नहीं करना चाहिये, अगर मैं अपना नुकसान करता हूँ तो मेरे जीवन में मेरा जो दुनिया से संबंध है उसका भी मैं भविष्य में नुकसान कर रहा हूँ। यह जिम्मेदारी हमें ध्यान में लेनी है। पूर्व में अपने अड़चनों का हल ढूंढ़ने के लिये आप मार्गदर्शनार्थ आते थे और अड़चनों को सुलझाने के लिये प्रयत्न करते थे। इन प्रयत्नों के लिये जो इष्ट सेवा आपको सूचित की जाती थी उसके कारण आपने साधनसेवा को स्वीकार किया था। लेकिन इसके बाद आपको अपेक्षित सुख प्राप्त हुआ या नहीं हुआ इसका विचार न कर "मैं जो सेवा कर रहा हूँ। उसका लाभ मुझे नहीं हो रहा है, लेकिन अगर अन्यों को उसका लाभ हो रहा है तो इस कर्तव्य के बारे में मुझे सतर्क रहना चाहिये। ऐसा विचार इसके आगे रखना आवश्यक है। आप भक्तों की जो ॐकार साधना सूचित की गयी है, उसमें केवल ईश्वर प्राप्ति इतना ही विषय नहीं है। यह विश्व हमने निर्माण नहीं किया है, वह भगवान ने निर्माण

किया है। उसके एक अंश के रूप में हमने जन्म लिया है। उसी प्रकार अनेक जीवों ने जन्म लिया है। इसलिये केवल एकाध साधन स्वीकारने से हमें ईश्वर प्राप्ति होनी चाहिये ऐसी अपेक्षा रखने के बजाय उसी तरह अन्यों को ईश्वर प्राप्ति क्यों नहीं होती? ऐसा प्रश्न मन में रखकर यदि साधना करेंगे तो वह अधिक फलदायी होगी।

यदि भूतकाल पर हम दृष्टिक्षेप करते हैं तो उसके अवलोकन में यह प्रश्न खड़ा होता है कि हम मानवों ने जीवन का उपयोग किस हेतु किया। उस काल में मानवों ने प्रचुर मात्रा में खाना-पीना, ऐश्वर्य और सुख में जीवन व्यतीत किया और समय बिताने के लिये धर्माचरण और देवतार्जन का मार्ग अपनाया। उसी प्रकार विज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्ग को भी स्वीकार किया। लेकिन विज्ञानमार्ग का अधिक अवलंब करने से आज सैकड़ों वर्षों में हम मानवों की जो प्रगति हुई है, उसके फलस्वरूप यद्यपि जीवन, गतिमान हुआ है, तो भी हम प्रगति के पथ पर न होकर, एक ना एक दिन इस विज्ञान की गति से केवल हमारे जीवन का ही नहीं सारे संसार का विनाश होने वाला है। वास्तव में ज्ञानमार्ग से दुनियां को संजाये रखकर संसार में शांति, सुख, समाधान सब को प्राप्त हो यह धारणा मूल विषय में थी। लेकिन आज प्रगति की प्रतियोगिता एक दूसरे में चल रहीं है, और विज्ञान में सारा विश्व व्याप्त है। यह प्रतियोगिता रात-दिन चल रही है, किसी को भी मानव जीवन के प्रति आस्था नहीं है। जन्म लेने से पहले ही उसकी मृत्यु किसमे है या कैसे होगी इसकी खोज की जा रही है। जन्म लेना कितना महत्वपूर्ण है, इस विषय का कोई भी अध्ययन नहीं करता। मानव जीवन की प्रगति का अर्थ यह है कि जीवन में आचार विचार, और उपचार का कार्य समान रूप से होना चाहिये। वैसे वह होने पर ही हमें सुख प्राप्त होगा। लेकिन आज सब दूर विचार और अतिविचार की ही क्रिया होने से, मानव के मन का अस्तित्व ही नहीं रहा है। परिणामस्वरूप मन के आविष्कार की जो क्रिया यानि दया, क्षमा शांति का अस्तित्व किसी भी मानव में दिखाई नहीं देता।

मनुष्य के जीवन में काया, वाचा, मन की अवस्थाओं का कार्य समान रूप से होता होगा तो मानवी जीवन सुख-शांति-समाधान का

लाभ लेता रहेगा। लेकिन विज्ञानशास्त्रधार से केवल यह अवस्था का विकास और उसकी गति इतनी हुई है कि उसके कारण आबालवृद्धों तक आज किसी में भी स्थिरता न होकर मन की एकाग्रता या शांति भी अनुभव नहीं होती है। संसार में शांति हो इसलिये ज्ञानी और अज्ञानी इन दोनों ही वर्गो का प्रयास चल रहे हैं, और अपनी ओर से दोनों प्रयत्नशील है।

दुनियां में शांति हो यद्यपि यही इन प्रयासों का एकमात्र विषय है, तो भी इस विषय के भिन्न भिन्न अंग, जिससे शांति निर्माण होगी वह तत्वज्ञान, आचार विचार और रूढ़ीपरंपराओं के द्वारा अपनाये गये होने से इस बीसवीं सदी में हम उनसे ग्रसित है, इसलिये केवल शांति हो, ऐसा शब्दों में व्यक्त किया जाने से वह नहीं होती। जब तक हम एक-दूसरे को विभिन्न स्तर पर रखकर, विभिन्न आचर-विचार और रूढ़ी परंपरा से व्यवहार करते हैं, जीते हैं, तब तक शांति देखने को नहीं मिलेगी। इसके लिये प्रथम परमपूज्य साईनाथ महाराज ने बताया है हम किसी भी धर्म के, किसी भी देवता के, किसी भी आचार-विचार के उपासक हो, उसकी कर्मठता का समाज में प्रचार न कर, अगर प्रथम हम इस संसार में एक-दूसरे को "विश्वबंधुता" के रिश्ते से नहीं पहचानेंगे, और तदनुसार विश्वबंधुता का प्रेम निर्माण नहीं करेगें, तो इस संसार में सुख-शांति का लाभ न होकर उसका अन्त अज्ञान के प्रलय में होगा यह निर्विवाद सत्य है।

जब से विश्व का निर्माण हुआ तब से मनुष्य के कल्याण के लिये अनेक अवतार भगवान ने लिये हैं। अगर उसमें से एक को हम मानते हैं, तो दूसरों का अनादर होता है, यह बात नहीं है। इस बीसवीं सदी में हमको ऐसा विचार करना चाहिये कि जो अनादि अनंत भगवान एक ही है, जनकल्याण के लिये वह बार-बार अवतार लेता है। यानि अवतार कार्य का सूत्र उत्पत्ति, स्थिति और लय या त्रिमूर्ति (Power of Trinity) के अधीन होकर, इसके अतिरिक्त कोई भी चौथी शक्ति अवतार के रूप में जन्मी नहीं है अनादि अनंत काल में हुये अवतारी पुरूषों के प्रति यद्यपि आदर है, तो भी बीसवीं सदी के ईश्वरी अवतार

ने इस संसार के वर्तमान परिस्थिति का विचार किया, ऐसे दिव्य अवतार का विचार हम ईश्वर भक्त बनने वाले भक्तभाविकों को करना चाहिये।

हे मेरे प्यारे भक्तों, उपरोक्त निवेदन में मैंने आपके अज्ञान संबंधी या आप अपना जीवन अज्ञान में व्यतीत कर रहे हैं, उसके बारे में आस्थापूर्वक जो चार शब्द सद्गुरूकृपाशीर्वाद से आपके सम्मुख रखें हैं, उसके पीछे जन्म-जन्म तक मुझ पर जिनकी अखंड कृपा हुई है, उनकी कृपा के कारण मैं आप सभी से ज्यादा ज्ञानी और सज्ञानी हुआ हूँ, यह मेरा कहने का हेतु नहीं है। मैं आजतक भगवान में अनन्य भक्तिभाव से यही मांगता रहा हूं कि "भगवान आपने मुझपर अखंड कृपादृष्टि रखकर जगत्कल्याण का कार्य करने का उचित मौका मुझे दिया है, वह कार्य निःस्वार्थ, निरपेक्ष बुद्धि से मुझसे करा लें। लेकिन की गयी सेवा का मुझ में थोड़ा सा भी अहंकार निर्माण न होने दें। छोटे से छोटा ऐसी अज्ञानी बालरूप मुझे देकर मुझ से की गयी सेवा का आनंद मुझे प्राप्त जन्म में अनुभव होने दें। "आज गत पच्चीस वर्ष, मेरा प्राप्त जीवन आप भक्तों के कल्याण के लिये जो व्यतीत किया है, उसकी इतिसार्थकता भगवान की कृपा से समय-समय पर तो हुई ही है, किन्तु इसके अलावा भगवान ने मुझे कृपाशीर्वाद देकर सार्थक किया है, उस कृपाशीर्वाद की साध्यसिद्धता करने का लाभ आपके जीवन की अड़चनों का निवारण करने के लिये आपने मेरे जीवन के साथ सहचार्य होकर मुझे दिया, उसके कारण ही मैंने आज इस दुनिया में नाम कमाया है यह मान लेने पर भी आपने अपने जीवन को सुखदुख का बहुमूल्य हिस्सा मेरे कल्याण के लिये दिया, इसलिये उदार मन से मैं आपका आभारी हूँ।

ऊपर लिखित निवेदन आप भक्तों के कल्याण के लिये और भावी जन्म का इन्तजाम करने के लिये गुरूकृपाशीर्वाद के प्रतीक के रूप में आपको सादर समर्पित कर रहा हूँ। इस कृपाशीर्वाद के प्रतीक में निराकरण, निवारण और आचरण का उल्लेख केवल शब्दिक रूप में न होकर, जो "निराकरण, निवारण और आचरण पद्धति" का उपचार सूचित किया गया है यह सब सर्वसिद्ध साधन मैंने अपने सिद्धसाधन

मार्ग की पुण्यविभूतियों को "औपचार" के रूप में अर्पण किया है। इसलिये स्वाभाविक रूप में ये सर्व निराकरण सर्वसिद्ध होकर सुलभ, सरल आचार विचारों से इस जन्म में और आगे जन्म-जन्म तक उनका लाभ सभी इच्छुकों को सहज रूप से मिलता रहे। ऐसी भक्तिभावपूर्ण इच्छा सभी विभूतियों के चरणों में आपादमस्तक रखकर व्यक्त कर रहा हूँ।

यह "गुरूप्रसाद" आज आपको गुरू कृपाशीर्वाद के रूप में भेंट किया गया है, उसे आप आस्थापूर्वक पढ़कर अपने परिवार के बाल बच्चों से लेकर बुजुर्गो तक सभी व्यक्तियों को निवेदन करें। इसके पीछे सद्हेतु यह है कि जिनकी बाल्यावस्था है उनके प्राप्त जन्म का विकास योग्य मार्ग से तो होगा ही, लेकिन जिनकी वृद्धावस्था है, उनको भी पारमार्थिक ज्ञान प्राप्त होने का समाधान इह जन्म में होगा। बाल अवस्था में तथा वृद्धावस्था में स्थित हम सभी मानवों का तारक यह गुरूप्रसाद जो आज गुरूआज्ञा से लिखने का सौभाग्य मुझे मिला है, यह गुरूप्रसाद में उन वरिष्ठ और श्रेष्ठ सभी सिद्धसत्पुरूषों के चरणों में सभी भक्तभाविकों के भक्तियुक्त श्रद्धाभाव के प्रतीक और आदर के रूप में अर्पण कर रहा हूँ।

आप भक्तों के साथ गत पच्चीस वर्ष इस सेवा में व्यतीत करने पर, आप भक्तों से भक्तिभाव से आखिरी एक ही मांग कर रहा हूँ कि यह जो कार्य गुरूआज्ञा से मैंने आप भक्तों के कल्याण के लिये खड़ा किया है, वह कार्य केवल मेरी इच्छा का विषय नहीं था, और उससे मुझे इस जन्म में आनंद या श्रेष्ठता कमाने का मेरा हेतु नहीं था। जन्म जन्म तक मेरे माध्यम को उपासना दीक्षा से लेकर सिद्धावस्था तक जिन्होंने समय समय पर मुझे साथ देकर सर्वसिद्ध किया, ऐसे मेरे गुरू के कृपाशीर्वाद का यह मंदिर है। इस मंदिर की यथोचित पवित्रता रखना और उसका उचित लाभ दुनिया के अन्य लोगों को करा देना यह जैसा आपका कर्तव्य है, उसी प्रकार इस कार्य के लिये मुझसे लेकर नियुक्त सेवकों तक, जिनकों इस कार्य में सहयोग करने के लिये भगवान ने नियुक्त किया है, ऐसे लोगों को इस कार्य संबंधी योग्य भूमिका और उस भूमिका के अनुसार आचरण और विचार, अगर

भूल से भी अयोग्य मार्ग पर जा रहे हो तो उनको इसका अहसास करा देने का इष्ट कर्तव्य, करना आप कदापि न भूले इतनी ही आप सब से मांग है, आप भक्तों के कल्याण के लिये यह कार्य जिन महान तथा अलौकिक पुण्य विभूतियों के कृपाशीर्वाद से चल रहा है, और जिनके कृपाशीर्वाद का लाभ आप भक्तों ने लेकर, प्राप्त जीवन में सुख-शांति समाधान जैसे ऐहिक सुख का लाभ किया है, साथ ही आप भक्तों को न मांगते हुये पारमार्थिक सुख का भी लाभ हुआ है, उन महान पुण्य विभूतियों का हम भक्तों पर अनंत उपकार हैं। आज उनके चरणों में यह प्रार्थना करेगें कि, "आज हम गुरूभक्त पुण्यविभूतियों के चरणों में विनम्र भाव से यह प्रार्थना कर रहे हैं कि हम मानवों को प्राप्त जन्म का ज्ञान हो और प्राप्त जन्म में सुख, शांति, समाधान और परोपकार करने का इष्ट कर्तव्य हम से होता रहे, ऐसी शिक्षा अनादि काल से आजतक समय-समय पर अवतार लेकर हम मानवों को आपने दी। किन्तु इहजन्म में जो कर्तव्य हम मानवों को करना आवश्यक है, उन्हें भूल जाने से आज दुनिया की स्थिति बहुत विकट बनी है। उसमें आवश्यक परिवर्तन लाने का काम आपके कृपाशीर्वाद के बगैर होना संभव नहीं है। तो भी आप विभूतियों ने कृपावंत होकर, सरल से सरल मार्ग हम मानवों को सूचित किया है। ऐसे मार्ग का अवलंब और कर्तव्य हम से निःसंकोच होता रहे और इस सुखशांति का लाभ हमारे जीवन में हो और ईश्वरप्रणीत मानव जीवन आदि का लाभ होता रहे, ऐसी आपके चरणों में प्रार्थना है।"

आज तक मानव कल्याण के लिये जो साधन परमपूज्य साईनाथ महाराज ने सिखाई हैं, उस संबंध में हम उनके जन्म-जन्म तक ऋणी रहेंगे। पुनश्च ऐसा अपराध और प्रमाद हम से न हो, ऐसी सुबुद्धि परमपूज्य सद्गुरू साईनाथ महाराज, श्रीनवनाथ आदि विभूतियाँ और देवताऐं हमें और हमारी भावी पीढ़ियों को दें ऐसी अनन्य भाव से प्रार्थना कर रहे हैं।"

उपसंहार

श्री सद्‌गुरू साईनाथ महाराज के चरणों में अनन्य भक्तिभाव से प्रणाम! आपके अनंत कृपाशीर्वाद का बोझ उठाने की शक्ति मुझमें नहीं है। प्रत्येक जन्म लेने वाले मानव को ईश्वररूप होना अवश्यक है और उसके लिये हरेक व्यक्ति प्रयास कर रहा है। लेकिन प्रयास की साधन है या देवतादर्शन की आस या व्याकुलता यानि साधन है? यह सवाल अभी हल नहीं हुआ है। तो भी आज जीवन में प्राप्त सुख आपकी कृपा का फल है, इसे हम कदापि न भूले ऐसी आपके चरणों में प्रार्थना है।

संसार अनंत है और भगवान अनंत अवतार रूप में सर्वत्र व्याप्त है, लेकिन उनके दर्शन होना इतना आसान नहीं है, कयोंकि हरेक अपने आपकी ही वंचना कर रहा है, तो भी हमारे पुण्य श्रेष्ठ होने के कारण संतों के सत्संग का लाभ हो रहा है। आत्म उद्धार और आत्म उन्नति की खुलकर चर्चा वर्षो से सुन रहे हैं, किन्तु इन शब्दों का इसका तो भी क्या अर्थ है? सूर्य की और देखना जैसा कठिन है, उसी प्रकार आत्मा का दर्शन कठिन है, क्योंकि वह हूबहू साक्षात्कारी इश्वरी अंश है। चंद्रमा स्वयं प्रकाशित नहीं है, सूर्य के प्रकाश से वह जैसा प्रकाशमान होता है, उसी प्रकार आत्मा के प्रकाश से देह में चैतन्य आता है सूर्य प्रकाश का सदुपयोग हम करते हैं। हमेशा सूर्य को नहीं देखते रहते हैं। उसी प्रकार देह जो चैतन्यमय है, उसके सद्‌गुणों को चंदन जैसा सुगंध होना चाहिये, केवल देह की राख करना ठीक नहीं है, ऐसा चिंतन यहीं आत्म उन्नति है।

जीवन के आरंभ में ही बोध और शोध लेना चाहिये। भगवान की शरण में किसी भी माध्यम से जा सकते हैं। वहां भक्ति श्रेष्ठ या ज्ञान श्रेष्ठ इसका विचार न कर अपनी भगवान के प्रति अपनी ही श्रद्धा श्रेष्ठ है यही एकमेव उत्तर मिलेगा। क्योंकि यद्यपि भक्ति या ज्ञान श्रेष्ठ है, तो भी हममें उनके प्रति प्रेम निर्माण होना चाहिये।

यही सच्चा "साक्षात्कार" है। भगवान के अस्तित्व या आभास होना यह अवस्था ही मूलत: एक आभास है। इस संसार में भगवान का अस्तित्व किसमें या कहां नहीं है, उसका अस्तित्व होकर भी हमें उसका अभाव लगता है, तो मूलत: जिसकी कार्ययोजना निराकार है, क्या वह हमारी इच्छा से साकार होगा? उसे साकार करना यह साधना का साध्य नहीं है। जो निराकार है लेकिन जिसकी लीला अगाध है, उस पर श्रद्धा रखना साध्य करना चाहिये, और उसके लिये ही साध ना है। ईश्वर का अस्तित्व न महसूस होना इसमें ही अपनी प्रगति है क्योंकि जब हम इष्ट अपेक्षापूर्ति के लिये प्रयास करते हैं, तब इष्ट फलप्राप्ति होने के बाद प्रयास बंद हो जाते हैं। प्राप्त जीवन में अगर कदाचित् ऐसी प्राप्ति हुई तो भावी जन्म की पूर्णता करने के प्रयत्न बंद हो जाते हैं यह माया बंधन की "माया" है। इसका अन्त होना असंभव है। जिस प्रकार क्षितिज को हम देखते हैं, इसके पास पहुंचते ही वह और दूर दिखाई देता है। अन्त में हम मूल स्थान पर ही पहुंचते हैं। इसलिये जो क्षितिज दिखाई देता है, उसके परिसर का विचार कर आसपास जो उपलब्ध है उसका लाभ लेने के लिये दृष्टि स्थिर करनी चाहिये। पानी के लहरों से नाव हिलने पर हम नहीं हिलते, उसी प्रकार जीवन में जो सुखदुख की लहरें देह को हिलाती है, उस समय भगवान के बारे में विचार हिलने नहीं चाहिये। भगवान प्राप्त जन्म को तारनेवाला चप्पू (पतवार) हैं अगर वही हाथ से छूटा तो हमारी यह जीवन नैय्या किस तरह पार लगेगी। हमारे पास दूध है, इसका मतलब मक्खन भी है, यह सोचना गलत है। दूध को जामन लगाये बिना मक्खन कैसे मिलेगी? उसी प्रकार प्राप्त जीवन में भक्ति का जामन ऐहिक जीवन को लगाये बगैर पारमार्थिक जीवन का लाभ नहीं होगा।

इस प्रकार भक्ति की भूख लगने पर ही साधना की मिठास अनुभव होती है। सामने पड़े पदार्थो को खाने की इच्छा की लालसा है, लेकिन पदार्थ सामने न होते हुये जो भूख लगती है, वह निभाने से देह को भाति है। यह देहधर्म सर्व परिचित है। भगवान को देखते

ही भक्ति की भूख लगती है, वह लालसा है, भगवान के प्रति शुद्ध भाव नहीं। तो आपके साध्य-असाध्य साधनों से आप इस भक्ति को आत्मसात करने का प्रयास करेंगे और अगर यदाकदा उसमें आप असफल हुये तो जन्म बंधन को पार करने का सामर्थ्य किस तरह प्राप्त होगा? इसलिये जिस तरह मिलाहार लाभदायक होता है, उसी प्रकार अल्प मात्रा में ही सही किन्तु नित्य से थोड़ी सी भक्ति कर वह आत्मसात करने का साधन प्राप्त करना चाहिये। इसी को ही "कृपाशीर्वाद" कह सकते हैं। जो हमारी आवश्यकतायें हैं, उनकी प्राप्ति ईश्वर के लिये आसान लीला है, तो भी वह कृपा नहीं कहलायेगी, क्योंकि कृपापात्र होने पर कुछ मांगना शेष ही नहीं रहता। जब तक भगवान से कुछ मांगे ऐसी इच्छा हममें है उसका अर्थ स्पष्ट है कि भगवान की हम पर कृपा है, लेकिन हम स्वयं अभी तक कृपापात्र नहीं बन पाये हैं। यह न्यूनता की पहचान हमेशा मन में रहे और उसे पूरा करने के लिये नित्य साधना करनी चाहिये।

हरेक मनुष्य का जन्म चौरासी लाख योनियों का बहुमूल्य धरोहर है। यानी मानव को चौरासी लाख योनियां पार करने पर मनुष्य का जन्म मिलता है। यह शास्त्रों ने सूचित किया है, यदि अपनी स्वयं की प्रगति इस योनी अवस्थाओं में से हमने की तो ही प्राप्त जन्म को पूर्णत्व प्राप्त होता है। लेकिन यह पूर्णत्व का भी क्या अर्थ है? क्या केवल शास्त्राधार पर हदश्रद्धा यानि पूर्णत्व ऐसा मानना ठीक होगा। शास्त्र पर पूर्ण श्रद्धा शास्त्र का पूर्णत्व दर्शाती है लेकिन जिस मानव जन्म के कारण इस शास्त्र का उदय हुआ है वह मानव जन्म अभी अपूर्ण अवस्था में कार्य कर रहा है। यद्यपि जीवन का साध्य प्राप्त करना कठिन है, तो भी उसके लिये करने के साधन कठिन नहीं होने चाहिये। ठीक इसके विपरीत आज तक मार्गदर्शन पाकर, साध्य दुर्लभ बना और साधन भी कठिन हुआ। मानव जन्म में साधन एक जीवन जीने की क्रिया है। लेकिन अगर वहीं क्रियाशील न हो तो इष्टध्येय प्राप्ति जीवन में एक अवरोध बन कर हमारे मार्ग में रहेगी। इसके लिये जो साधन हम अपनायेगें उसकी सामग्री क्या है? यानी

जिस साध्य के लिये हम साधन अपनायेगें उस साध्य ध्येय में किन बातों का अंतर्भाव है, उसका बोध पहले होना चाहिये। नहीं तो साधना का लक्ष्य यानी "क्रिया से कुछ जानना" यह अनुभव न होकर, केवल जीवन जीना इसके अलावा शेष अनुभव शून्य होता है। इसके कारण साधना करने पर भी निराशा ही हाथ लगती है। साधन लक्ष्य जानकर जब क्रियाशील होता है, तब उस साधना का धर्म केवल आशावादी बनाने का ही है। लेकिन अगर साधना क्रियाशील नहीं होगी तो निराशा यह जीवनधर्म बन जाता है। इस प्रकार के इस जीवनधर्म का अनुभव मनुष्य को पूर्णत्व प्राप्ति में अवरोध निर्माण करता है। लेकिन इसका दोष हम भगवान के या पूर्वकर्म के माथे पर लगाकर उससे अपने आप को मुक्त रखते हैं। इसका अर्थ जीवन के मूल कार्य के साथ हम एकरूप न होकर जीवन परिसर में जिसका अस्तित्व महसूस होता है, उसके साथ एकरूप होते हैं।

देव या देवत्व (देवतापन) मानवी कल्पना नहीं है। वह वस्तुस्थिति है, इसका अहसास वस्तुनिष्ठ भक्त को ही हो सकता है। बहुत बार भक्ति करते समय, अपनी हुई प्रगति तो निश्चित निदान करने का माध्यम भक्तिमार्ग में नहीं है, "ऐसा कहा जाता है। लेकिन साधारणतया पचास प्रतिशत प्रगति हरेक की हुई होती ही है"। इस कथन का उत्तर हम इस तरह दे सकते हैं कि "परमेश्वरी तत्व निराकार हैं सुलभता से उसका लाभ हो, इसलिये तत्व ने आकार लिया"। इस आकार की भक्ति कर हमने उसे साकार किया। इस साकार परमेश्वर का अस्तित्व हममें है, तभी तो नित्याचरण में भगवान के प्रति आदर और भक्ति हम व्यक्त करते हैं। अब यह जो भक्त की अवस्था है, वह भक्तिमार्ग की पचास प्रतिशत प्रगति है, ऐसा हम मानेंगें तो गलत नहीं होगा। लेकिन भक्त की इसके आगे की प्रगति अधिक दृढ़ निष्ठा के बिना संभव नहीं है क्योंकि जो तत्व आप में साकार हुआ है, इस साकार हुये तत्व के कारण जब आपको पुनः भक्ति करने का अहसास यह साकार हुआ तत्व करा देता है, तब जिस आकार को हम ने साकार किया है, उसी आकार को लक्ष्य रख

कर हम भक्ति करते हैं। वास्तविक निराकार की आकार यह भगवान ने हमारे लिये धारण की हुई अवस्था और आकार को साकार की हुई भक्त की अवस्था, इनमें से भक्त ने बारंबार इन्हीं अवस्थाओं का लाभ भक्ति के रूप में नहीं लेना चाहिये। आगे की प्रगति के लिये साकार हुये निराकार तत्व को आकार में न देख कर निराकार में देखने का साधन प्राप्त करना चाहिये। इस अवस्था में भगवान का अस्तित्व सीमित रूप में अनुभव न होकर असीमित अनुभव होता है उदाहरणार्थ, जब तक नाव नदी के जलप्रवाह में विहार करती है तब नदी का आकार दो किनारों से महसूस होता है लेकिन वही नदी जब समुद्र के साथ मिल जाती है, तब हमें अपने सामने सब दूर पानी और आकाश अथाह नजर आते है।

भले ही पहली अवस्था में हम भगवान को लक्ष्य कर भक्ति करते हैं, तो भी साकारित ईश्वरी तत्व में हम अपने आपको समाहित नहीं पाते हैं। लेकिन भगवान तो भक्त में समाहित हुआ होता है, इसलिये साधक को ईश्वर का पूरा ज्ञान न होकर, अपने ही जीवन का यानि जन्मकर्म ऋणानुबंधों का अहसास होता है। इस अहसास के कारण कर्म के अनुसार करने का कर्तव्य और उसमें आने वाली अड़चनें, इसका ही विचार बार-बार होकर, साकारित ईश्वरी तत्व के बारे में आवश्यक निष्ठा में वृद्धि नहीं होती। इसलिये पहली अवस्था में हुई प्रगति आगे स्थिर रूप में देह से सुलभता से कार्य नहीं कर सकती। पग-पग पर इस तरह का अनुभव आने से, देहधर्म का जो कार्य है और जिनका विचार वास्तविक कर्तव्य के रूप में करना चाहिये, वह न होकर देहधर्म यानि उपभोग की और अपने विचार अधिक साकार करने के लिये, साकारित ईश्वरी तत्व का हम उपयोग करते हैं। इस प्रकार के विचारों के कार्य को साकार करने के लिये जो ईश्वरी तत्व उपयोगी हुआ, उसे ही "कृपाशीर्वाद" समझ कर आगे की दैहिक प्रगति के लिये अपने आवश्यक प्रयास क्रियाशील नहीं रह पाते।

वास्तव में कृपाशीर्वाद तथा उसका लाभ हमें मिला, तो कृपाशीर्वाद में अपूर्णता कुछ भी नहीं होती है। कृपाशीर्वाद यानि भगवान का पूरा

अस्तित्व यदि ऐसा है तो भक्ति करते समय कृपाशीर्वाद की बार-बार याचना क्यों करनी पड़ती है। इसका उतर यह है कि यद्यपि कृपाशीर्वाद भगवान की पूरी अवस्था है, तो भी भगवान के बारे में अपूर्णावस्था हममें विद्यमान है, इसका अहसास हमेशा होना चाहिये। कृपाशीर्वाद का पूर्णत्व यानि भक्ति की प्रगति की दूसरी अवस्था है। दूसरी अवस्था में करने की भक्ति या कर्म यानि आकार से साकार हुआ निराकार ऐसा जो ईश्वरी तत्व है, उस तत्व के साथ एकरूप होना। अब इस निराकार तत्व से एकरूप होने पर, इस अवस्था में अपने स्वंय का एहसास यानि जन्मजन्मांतर के जन्मकर्म से अपना एहसास न होकर, निराकार यानि भगवान का ही अहसास होता है। यही कृपाशीर्वाद है। नदी और उसका पानी हमेशा नित्य रूप से नहीं मिलता। लेकिन सागर कभी भी सूखता नहीं, उसका लाभ लेने पर भी वह बरकरार रहता है। यही स्थिति निराकार अवस्था में अनुभव होती है।

ऐसी अवस्था में जन्मजन्मांतर के अस्तित्व का लय होता है। इसी अवस्था को "मुक्ति" कहा जा सकता है। इस अवस्था का गुणगान करते करते वेद भी थक चुके तो हमने इसका अधिकाधिक गहन विचार न कर, प्राप्त जन्म में भगवान के प्रति जो इष्ट कर्तव्य है, उसी का ही विचार करना श्रेयस्कर होगा।

दूसरी अवस्था ईश्वराधीन है और उसका लाभ मनुष्य को सुलभता से होता है, इसके लिये हमेशा भगवान का चिंतन करना आवश्यक है लेकिन पहली अवस्था मानव के अधीन होने से उसका विचार अधिक सूझबूझ से करना चाहिये। पहली अवस्था के जो दैहिक बंधन है, उसका कारण प्राप्त जन्म चौरासी लाख योनी से होता है, ऐसा पढ़ने में और सुनने में आता है। तो क्या चौरासी लाख "शब्द का प्रयोग इस कथन में संख्यावाचक अर्थ में किया है? मानव जन्म तक इस पंचभौतिक देह को मानव देह प्राप्त होने के लिये चौरासी स्थित्यंतरों से गुजरना पड़ता है, हरेक स्थित्यतंर के अंतर्गत पूर्णता यानि एक योनी इस प्रकार अस्सी बार पंचतत्वों का स्थित्यंतर होता है और

उसके पुनश्च मानव जन्म प्राप्त होता है। यह मानव देह पंचकोशों से यानि अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय कोशों से परिपूर्ण है। प्रारंभ में अस्सी योनी से स्थित्यंतर होते समय प्रत्येक योनी में अन्नमय कोश प्रधान था, लेकिन अब मानव जन्म प्राप्त होने पर हरेक योनी में जन्मा पंचभौतिक देह जब विकास की क्रिया से गुजरता है उस समय उसने इन पांचों कोशों का पूर्णत्व अपने में प्राप्त कर लिया। इसके कारण जिन योनियों का स्थित्यंतर हुआ वे अस्सी पेशियां आज मानव जन्म में इन पांचों कोशों से संबंधित है। ऐसी प्रत्येक कोश से जुड़ी हुई सोलह पेशियां यानि पंचमहाभूतत्व, पंचकर्मेन्द्रिय, पंचज्ञानेन्द्रिय और बुद्धि इन सबका जो कार्य है, उसे ही मानवजीवन" कहा जाता है। ऐसे इस मानव जीवन में विचार और विकार का हमेशा जो कार्य हो रहा है, इसका कारण है, इन अस्सी अवस्थाओं के स्थित्यंतर के अनुसार कोशों की अपूर्णता। विकास, जो शरीरधर्म है, वह इन अस्सी अवस्थाओं में भी कार्य कर रहा था। इसलिये जीवन में आज भी विचार करने से पहले विकार का प्राबल्य अधिक दिखाई देता है। विचार व्यक्त करने की या साकार करने की अवस्था मानव जन्म में प्राप्त करने की या साकार करने की अवस्था, मानव जन्म में प्राप्त होने के कारण विचारों को दृढ़ रखना कठिन होता है। प्राप्त जन्म व्यतीत करते समय अन्नमय कोश, प्राणमय कोश और मनोमय कोश का धर्म विकार और मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनंदमय कोश इनका धर्म "सुविचार" निर्माण करना है, ऐसा होते हुए भी सिर्फ "विचार करना" इतना ही कार्य मनोमय कोश करता है। इसलिये साधक अवस्था की जिन दो अवस्थाओं को हमने ऊपर किये निवेदन में विचार में किया, उसमें से पहली अवस्था मानव के अधीन है, ऐसा कहा, इसका अर्थ अस्सी योनीयों का स्थित्यंतर के अनुसार शेष रहे अंशमात्र तत्व मानव रूप नहीं हुये हैं। इसलिये साकारित ईश्वर तत्व निराकार तत्व के साथ एकरूप होने में बाधा निर्माण करती है। ऊपर उल्लेखित पचास प्रतिशत प्रगति होकर भी, शेष पचास प्रतिशत प्रगति में जो विलंब हो रहा है, उसका कारण इस योनी अवस्था के शेष

अशंमात्र तत्व अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोशों से एकरूप हुये हैं। इसलिए पचास प्रतिशत प्रगति होकर भी जिस ईश्वरी तत्व को हमने साकार किया है, उसका लाभ लेकर, अस्सी योनीयों के जो अंशमात्र तत्व है, उनको भी ईश्वर रूप करना चाहिये क्योंकि हरेक मानव को जन्मप्राप्ति के बाद जो मुक्ति अवस्था कही गयी है, वह केवल प्राप्त पंचभौतिक देह को न होकर, जो चौरासी योनी अवस्थाओं से हमने जन्म लिया, अगर उस अशंमात्र तत्व को भी मुक्ति अवस्था प्राप्त करा दी, तो ही दूसरी अवस्था में हम सुलभता से प्रवेश कर सकेंगे।

देह माध्यम में आचार विचारों का आदान प्रदान होने से आचार विचारों को स्थिरता प्राप्त नहीं होती। इसलिये प्राप्त जीवन में सुख के बारे में भी असमाधान और अशांति रहती है। यानि हम सच्चे अर्थ में दुखी न होकर, पग-पग पर दुख का आभास यानि जीवन में खोखलापन निर्माण कर रहे हैं। यही खोखलापन हमारे जीवन की अशांति है। अब जिस देह के आचार-विचारों को स्थिरता देकर कार्य करने का मौका देने का साधन विचार में लेना है, उन्हीं विचारों के उपरान्त निश्चित किये गये मार्ग को "गुरूमार्ग" कहा गया है। लेकिन गुरूमार्ग के बारे में हमारी श्रद्धा यह है कि, हमारे सामने स्थित जो व्यक्ति जिसे हम गुरू कहते हैं वहां हमारे गुरू हैं इसी जगह हम गुरूमार्ग की हमारी भूमिका गलत अपनाते है, इसका विचार करना चाहिये।

ऐसे गुरूमार्ग की खोज आज हम जीवन को सुख की दिशा प्राप्त कर देने के लिये कर रहे हैं। लेकिन गुरूमार्ग का लाभ होने पर, हमें क्या सीख लेना आवश्यक है, इस पर विचार न कर, अन्यों का अनावश्यक आचरण और उनका अनुकरण ही गुरूमार्ग है और उसी प्रकार हम अपने जीवन की दिशा निश्चित करते हैं। परिणामतः जिस सुख शांति समाधान की खोज में हम निकले हैं; उनकी भी प्राप्ति नहीं होती, और प्राप्त सुख का अनुभव भी नहीं ले सकते। वास्तव में गुरूमार्ग में एक ही प्रश्न अपने आपसे और गुरू से पूछना है कि "प्राप्त सुख-समाधान का अनुभव लेने के लिये किस प्रकार

के आचार-विचार मेरे लिये पोषक होंगे? इन आचार विचारों की निश्चितता नित्य आदत डालकर प्राप्त कर, प्राप्त सुख में आनंद मानने को ही "गुरूदीक्षा" या "अनुग्रह दीक्षा" कहते हैं। इस प्रकार का इतना सुलभ गुरू शिष्यों का सुखसंवाद होते हुये भी जिनको गुरूपद की जिम्मेदारी की समझ नहीं है। ऐसे व्यक्तियों ने गुरूमार्ग को अधिक विकट बनाया है ऐसे लोगों ने ही समाज में देवधर्म का आडंबर रचाया है। अपने ऐहिक जीवन के नित्यकर्तव्य का ज्ञान करा देकर, देवधर्म का आवश्यक बोध करा देना गुरू का कर्तव्य है। लेकिन अगर गुरू को ही अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं होगा तो बाहरी तौर पर गुरूमार्ग का दिखावा ही परमार्थ प्राप्ति का मार्ग है, ऐसा आभास निर्माण करना पड़ता है, वास्तव में यह सब दिखावा भावनाशून्य तथा कर्तव्यशून्य है क्योंकि भावना और उसे व्यक्त करने के लिये किये जाने वाले कर्त्तव्य अन्यों के अनुकरण से करने की जरूरत नहीं है। ये दोनों अवस्थायें मानव का सहजधर्म है। ऐसा यह सहजधर्म कार्य के लिये योग्य तरह से और योग्य जगह इस्तेमाल हो, इसी कर्तव्य को "सत्कर्म" कहते हैं। आरती, पारायण, नामस्मरण, पूजा-अर्चना आदि जो हम करते हैं, और जिसे हम पारमार्थिक कर्तव्य कहते हैं, यह कर्तव्य पारमार्थिक न होकर, यह अपनी इच्छा न होते हुये भी दूसरे किसी की इच्छा के खातिर आत्मारोपित बंधन है। आचारविचारों का धर्म बंधन में न रहने का है। इसका अनुभव बार-बार हमें आता है। ऐसा होते हुये भगवान के बारे में जो पूज्य भावनाएं हैं, उन्हें वैचारिक रूप में कार्य करने का मौका देना, यानि नित्याचरण है, ऐसा होने लगे यदि माना जाये, तो इस नित्याचरण को ऊपरी बंधन से क्या हम पारमार्थिक कर सकेंगे? यह विचार प्रत्येक भक्त को करना आवश्यक है। भक्ति के भाव साकार होने की प्रक्रिया जिस देहमाध्यम से होती है, उसे "भक्त" कहा जाता हैं। लेकिन अगर उसी देह माध्यम से विचार या विकार साकार मार्ग होने लगे तो भक्ति का साक्षात्कार होना कितना दुर्लभ है, यह अनुभव होगा। इसलिये सुलभ आचार-विचारों का बोध लेकर उसके अनुसार अपना नित्याचरण करने को ही "गुरूभक्ति" कहते हैं।

लेकिन आज हम इसकी आदत न ड़ालकर, व्यक्तिपूजन का महत्व अधिक मानते हैं इसलिये जो आचार विचार गुरूरूप होना आवश्यक है, उसका मूल्य कम होता है। इस कारण स्वाभाविक रूप से अपने नित्य कर्तव्य की ओर दुर्लक्ष होकर, अपने परिवार के अन्य व्यक्तियों को उस संबंध में त्रासदी सहन करनी पड़ने से, इस मार्ग के प्रति अनादर निर्माण होता हैं।

प्राप्त जीवन में गुरूकृपाशीर्वाद का हमें जो लाभ होता है, उसका हमारे जीवन के साथ क्या संबंध है और उस संबंध में हमारा क्या कर्तव्य है, यह जानना ही सच्चा "परमार्थ" है। प्राप्त जीवन जन्मजन्मांतर और जन्मकर्म की धरोहर है, यह हमने अनेक बार हमारे पढ़ने में आने के कारण नित्य कर्तव्य करते समय ऋणानुबंध का बेतुका तत्वज्ञान हमारे दिमाग में अविचार निर्माण कर कर्तव्य की दिशा बदलने के लिये हमें विवश करता है। लेकिन एक बार जीवन में गुरूमाध्यम के ऋणानुबंध यानि मार्गदर्शन के अनुसार आचरण यह निश्चित हुआ कि अनेक जन्मजन्मांतर के ऋणानुबंध प्रतिकूल होकर भी अनुकूल कराये जा सकते हैं। इसी सुलभ कार्यपद्धति को "विमोचन" कहा जाता है। वास्तव में विमोचन कहने पर तीर्थयात्रा, देवधर्म, दानधर्म, व्रत आदि विषय हमारे सामने आते हैं। यह सब करना इसी का अर्थ सत्कर्म करने की सहज प्रवृत्ति निर्माण करना और उसके अनुसार आचरण करना ऐसा लगता जाता है। तो भी निश्चित रूप से इस मार्ग का अवलंब कर हम आवश्यक सुख प्राप्त नहीं कर सकते। इसके लिये जिस कृपाशीर्वाद को प्राप्त करने का मार्गदर्शन हुआ है, उस मार्ग से अपने आचार विचार पोषक करना, यह अपना कर्तव्य अगर हम भूल गये तो कृपाशीर्वाद का लाभ यानि इसका ज्ञान नहीं होता।

उपरोक्त विवेचन से सूज्ञ भक्तों की समझ में आया होगा कि पारमार्थिक मार्ग और पारमार्थिक आचरण ऐहिक मार्ग से भिन्न नहीं है। ऐहिक मार्ग या ऐहिक कर्तव्य पूर्वजन्म के अनेक कर्तव्यों की पूर्तता करने के लिये प्राप्त हुआ जीवन है। ऐसे यह ऐहिक जीवन के इष्ट कर्तव्यों की पूर्तता पूरे रूप से करना ही पारमार्थिक कर्तव्य है। ऐसा कर्तव्य पूरा करने के लिये हमारे आचार विचारों को निश्चितता

और सुदृढता प्राप्त हो इसलिये गुरूमार्ग का अवलंब करना अतिआवश्यक है। लेकिन ऐसे कर्तव्य की पहचान आपको यथोचित न होने से विभिन्न देवता, भिन्न-भिन्न पूजाअर्चना आदि को जीवन में शामिल कर, हम बहुमूल्य जीवन का अपव्यय करते हैं। वास्तव में ऐहिक कर्तव्य की पूर्तता करने के लिये जिस पारमार्थिक जीवन का या कृपाशीर्वाद का लाभ हमें जोड़ना है, उसका साधन अत्यंत सुलभ है और उसे करने में ज्यादा समय खर्च नहीं होगा। यह विचार अच्छी तरह ध्यान में रखकर ही आप सच्ची भावना अपने मन में निर्माण कर सकते हैं। अन्यथा अधिक समय तक अपनाया कर्तव्य भक्ति की दृष्टि से भावना शून्य होती है। इसलिये हरेक ने दूसरों का अनुकरण कर, उस अनुकरण से भगवान की खोज न कर, कर रहे भक्ति की भावना में भगवान का बोध लेना चाहिये। इससे भगवान और भक्त भिन्न स्तर पर न होकर, जो भक्तिभावनाएं हैं, उनका पूर्ण साक्षात्कार ही भगवान है, यह निश्चित है। अन्यथा भगवान के बारे में जो भावनाएं है, वे भावनाएं भी तो ईश्वर शून्य है। इससे एक ही अनुमान हम निकाल सकते है कि भगवान के बारे में, धर्म के बारे में, कर्म के बारे में, कुछ भी पढ़ा, सुना, तो भी जब तक हमारे आचार विचार भावना के साथ एकरूप नहीं हो सकते हैं, तब तक मन की एकाग्रता होना और मन तदाकार होना असंभव है। अगर यह सत्य है तो नित्य जीवन में अपनाये गये परमार्थिक कर्तव्य खुद को दिशाहीन करने के लिये किस तरह जिम्मेदार है, इसका बोध होगा। भक्ति केवल ईश्वर प्रणीत ही होती है ऐसा नहीं जीवन में किसी भी विषय के बारे में लगाव और उसका निरंतर स्मरण भी भक्ति ही है यानि भावनात्मक आचार विचारों का पूर्णत्व जिस क्रियात्मक भावना से होता है उसे ही "भक्ति" कहा जाता है। अन्यथा वह खुद पर और दूसरों पर लादी गयी सख्ती होगी।

जिस भक्तिमार्ग की और हम आस्थापूर्वक और सद्भावना से देखते हैं, वह भी तो क्या है? या जिसके संबंध में हमें पूज्य भावना है, उसके लिये देह द्वारा कुछ कर्म करना ही क्या "भक्तिमार्ग" है? भक्तिमार्ग देह धर्म का ही एक हिस्सा है। किन्तु उसके बारे में देह को स्वाभाविक रूप में आदत न होने से भक्तिमार्ग की भूख का ज्ञान

देह को नहीं होता है। वास्तव में भक्ति क्रिया का भाव भक्ति में न होकर देह में है। देह के यह भाव, भावनात्मक क्रिया द्वारा जब व्यक्त होते हैं तब भक्ति का पूर्णत्व साकार होता है! यह क्रिया प्राप्त होने के लिये लंबे अर्से तक भक्ति करनी पड़ी तो भी अपनी भक्तिमार्ग की श्रद्धा ढ़लनी नहीं चाहिये। भक्तिमार्ग का पूर्णत्व प्राप्त होने के लिये भक्ति क्रिया में और देह में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आती और अगर बाधा आती है तो वह भक्तिमार्ग के प्रति अपने आसपास देखने और सुनने में आने वाली अफवाह या असत्य बातें है। उदाहरणार्थ अनेक लोग चमत्कार या सिद्धि यह भक्तिमार्ग की पूर्णावस्था या श्रेष्ठपद मानते हैं। भक्तिमार्ग चमत्कार पर आधारित नहीं है। लेकिन यह हमारे ध्यान में नहीं आता। क्योंकि हमारा मन और विचार भक्तिमार्ग के साथ एकरूप नहीं हुये होते हैं। इसलिये भक्ति द्वारा साकार होने वाला भगवान का अस्तित्व हमें दिखाई नहीं देता। बाहरी दुनिया में चमत्कार, संचार या अन्य गूढ़विद्याओं के प्रभाव का हमें अनुभव होता है। उसमें से किसी एकाध अवस्था को अपने में निर्माण कर, दूसरों से हम श्रेष्ठ हैं ऐसा आभास निर्माण नहीं करना चाहिये। इससे अच्छा है कि "विद्या विनयेन शोभते" इस शुभवचन के अनुसार अपने आचार-विचार रखकर लोकप्रिय होना चाहिये। इसी में सच्चा आनंद हमें मिल सकेगा। अज्ञानरूपी जो अंधकार है, वह दूर होने पर चैतन्यरूपी प्रकाश दिखाई देगा। यह समय आने तक निष्ठा और संयम रखना चाहिये। यही गुरूमार्ग का साधन है। ऐसे समय यदि अधिक आशंकायें होंगी भी तो वह इस मार्ग का कच्चापन समझा जाता है। भक्ति विषय के साथ विचार एकरूप होने पर कच्चापन नहीं रहेगा। फल कच्चा होने से खट्टा लगता है, लेकिन पकने पर वही खट्टापन मिठास में बदल जाता है। फल पकने पर वह पेड़ से अलग हो जाता है। फल पकने पर पेड़ उसका उपभोग नहीं लेता। इसी प्रकार अपने में जो आनंद है वह दूसरों को भी मिले यह भावना ही "स्वानंद" है।

आज के संसार के प्रत्येक मनुष्य को सुख, शांति, समाधान आदि का अभाव महसूस रहा है। जीवन के ऐसे अमोल मूल्य प्राप्त करने के लिये पारिवारिक स्तर से अंतरराष्ट्रीय स्तर तक सहयोग के निरंतर प्रयास हरेक कर रहा है तो भी अनुभव यह बताता है कि

जीवन की यह अहम समस्या सुलभता से हल नहीं हुई है। जिसकी मानवीय जीवन को आज बहुत आवश्यकता है, उसकी नये से खोज लेने की आवश्यकता नहीं है। इतना ही नहीं तो उसकी आवश्यकता नित्य रूप से तथा उसका मूल्य भी ज्यादा नहीं है। ऐसा होने पर भी सत्य वस्तुस्थिति का बोध अन्य मार्ग से अनुभव करने की प्रवृत्ति दिन-ब-दिन बढ़ रही है। यह जीवनांतर्गत संघर्ष और समाज में इसका संघर्ष इनके बीच एक प्रतिस्पर्धा के रूप में खेला जा रहा है, यह कहना गलत न होगा।

आज कई वर्षो से उसी विषय और उसी तत्वज्ञान की पुनरावृत्ति पढ़ने में या विवेचन में यद्यपि हो रही है, तो भी मानव जीवन के उद्धार के लिये जो तत्वज्ञान है या विवेचन है, उनमें से किसी का भी पुनर्जीवन नहीं हो रहा है। पुनरावृत्ति होने से कदाचित् मूल विषय के तत्वज्ञान से हमारे आाचर-विचार भिन्न हो रहे हों, इसलिये सत्य वस्तुस्थिति की प्रचीति का अनुभव करने में विलंब होगा या अनुभव ही नहीं होगा। इस बात से हम सब परिचित हैं, तो भी जीवन में जिन नई बातों से हम परिचय कर सुख-शांति प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, ऐसे सुखप्राप्ति के कारण परंपरा की ओर हम सज्ञान होकर नहीं देखते। केवल अनुकरण और उसके अनुसार आचरण ही सुख शांति का मार्ग है, यही एक भूमिका हम अपनी और दूसरों की करने की इच्छा रखते हैं। इस प्रकार की भूमिका से किसी भी मार्ग का अवलंब करने की दिशा भी अगर अवगत हुई, तो भी इष्टध्येय प्राप्ति की दिशा से हम भिन्न मार्ग पर जाते हैं। ऐसे भिन्न-भिन्न आचार-विचारों की जीवन सुविचार से, सुलभ ऐसे मार्ग की खोज करने में व्यतीत होगा तो "गुरूमार्ग विकट है" यह भय सहज रूप में निवारण होकर गुरूमार्ग के प्रति हमारी निष्ठा पूर्णत्व को प्राप्त करेगी। इस निष्ठा का पूर्णत्व ही "गुरूप्रसाद" है।

।। शुभं भवतु ।।

आपका सेवक :

दादा भगवत

श्री गुरूपूर्णिमा

शनिवार ता0 11 जुलाई 1987

श्री साई शक 5